Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य

अंक 173
मूल्य 25 रुपये

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका
मई-जून 2014

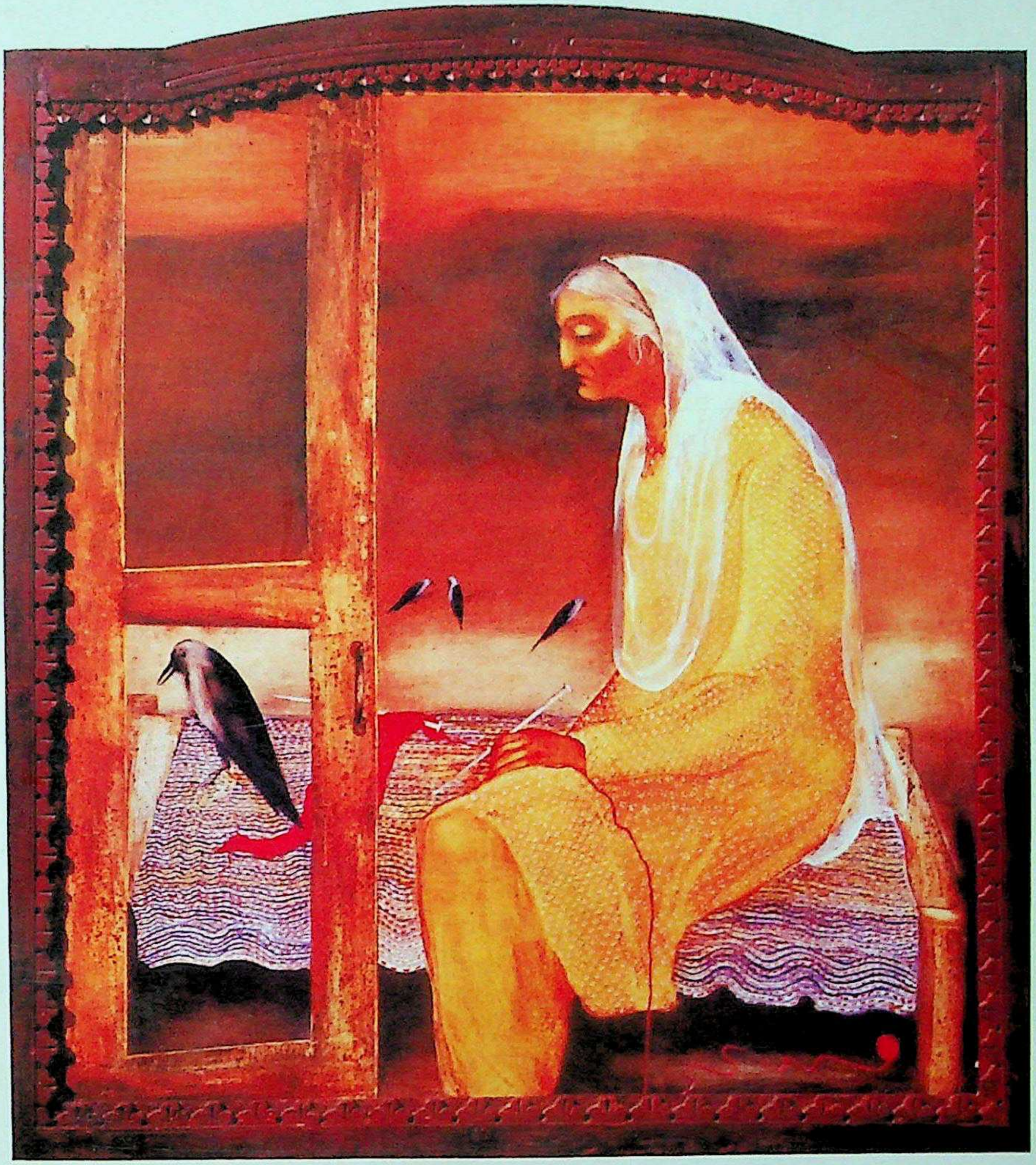

अली सरदार जाफ़री (26 नवंबर 1913-1 अगस्त 2000) पर विशेष सामग्री

आलेख : क़मर रईस, सादिक़, ख़ुर्शीद आलम

जाफ़री साहब से राही मासूम रज़ा की लंबी बातचीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

साथ ही, जाफ़री साहब की चुनी हुई नज़्में और ग़ज़लें

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित कृतियाँ

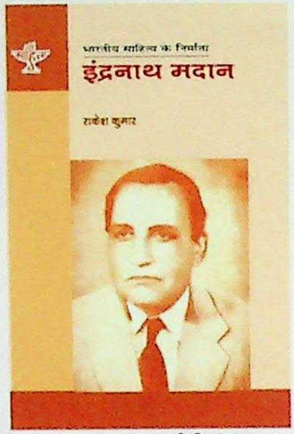

इंद्रनाथ मदान (विनिबंध)

राकेश कुमार

पृ.128, मूल्य रु. 50, ISBN 978-81-260-4297-5

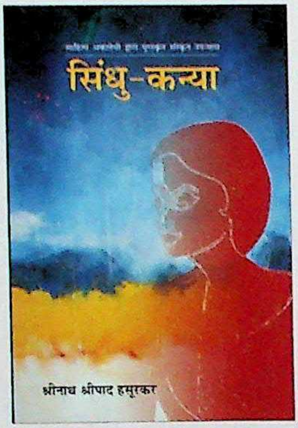

सिंधु कन्या (पुरस्कृत संस्कृत उपन्यास)

श्रीनाथ एस. हसूरकर

पृ. 248, मूल्य रु. 150, ISBN 978-81-260-4316-3

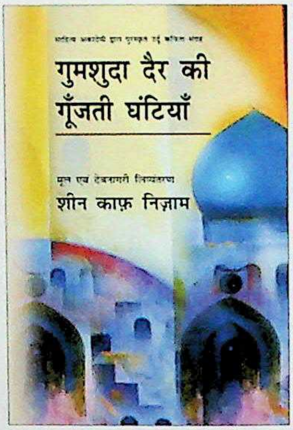

गुमशुदा दैर की गूँजती घंटियाँ (पुरस्कृत कविता-संग्रह)

अनु. शीन.काफ.निज़ाम

पृ.116, मूल्य रु. 80, ISBN 978-81-260-4312-5

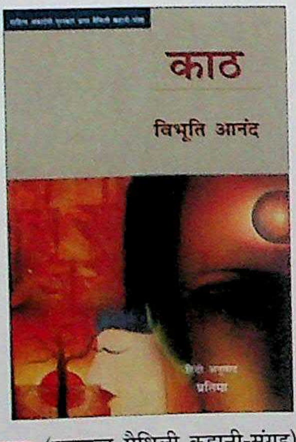

काठ (पुरस्कृत मैथिली कहानी-संग्रह)

विभूति आनंद अनु. प्रतिमा

पृ. 144, मूल्य रु. 100, ISBN 978-81-260-4303-2

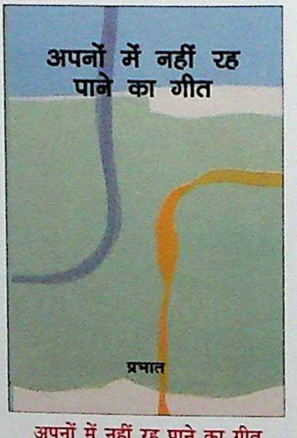

अपनों में नहीं रह पाने का गीत

(नवोदय योजना के अंतर्गत कविता-संग्रह)

प्रभात

पृ. 154, मूल्य रु. 100, ISBN 978-81-260-4301-9

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वर्ष 34 अंक 173 (मई-जून 2014)

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc No....4982
28/12/2023

संपादक मंडल

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी

चंद्रशेखर कंबार

के. श्रीनिवास राव

अतिथि संपादक

रणजीत साहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उप-संपादक : **मधुमालती जैन**

आवरण चित्र : अंजलि एला मेनॅन, राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय के सौजन्य से

आवरण संयोजन : राजीव शर्मा

संपादकीय कार्यालय :
साहित्य अकादेमी
रवींद्र भवन, 35 फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली-110001
फ़ोन : 2307 3312 (सीधा नंबर)
23386626, 23386627
(पी.बी. एक्स) विस्तार 207/255
फ़ैक्स : 091-11-23382428

E-mail : sbseditor@gmail.com
Visit our Website at : http://www.sahitya-akademi.gov.in

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक, अनुवादक एवं साहित्य अकादेमी की स्वीकृति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से साहित्य अकादेमी, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है।

मूल्य : 25 रुपये

शुल्क-दर : एक वर्ष (6अंक) 125 रुपये
तीन वर्ष (18अंक) 350 रुपये

विदेश में :

हवाई डाक : एक प्रति 10 अमेरिकी डॉलर/6ब्रिटिश पाउंड,
एक वर्ष 50 डॉलर/30 पाउंड,
तीन वर्ष 135 डॉलर/85 पाउंड

समुद्री डाक : एक प्रति 5 डॉलर/3 पाउंड,
एक वर्ष 25 डॉलर/15 पाउंड
तीन वर्ष 70 डॉलर/44 पाउंड

शुल्क 'सचिव, साहित्य अकादेमी' के नाम पर भेजें।

वितरण : विक्रय विभाग,
साहित्य अकादेमी,
स्वाति, मंदिर मार्ग, नई दिल्ली-110 001
फ़ोन : 011-23364207, 23745297

Samakālin Bhāratiya Sāhitya :
A Bi-monthly journal of Indian literature from 24 languages, in Hindi, published by Sahitya Akademi, Rabindra Bhavan, 35 Ferozeshah Road, New Delhi-110001, INDIA

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन भारतीय साहित्य

वर्ष 34 : अंक 173 (मई-जून 2014)

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

5 *संपादकीय*

अली सरदार जाफ़री पर विशेष सामग्री

9 **क़मर रईस :** अवध की मिट्टी का बेटा

18 **क़मर रईस :** सर्जनात्मक कौशल : शायरी (लंबी नज़्में)

39 **सादिक़ :** सरदार कहाँ है महफ़िल में

52 **ख़ुर्शीद आलम :** बात से बात चले

59 **अली सरदार जाफ़री से राही मासूम रज़ा की बातचीत :** गुफ़्तगू बंद न हो

80 **अली सरदार जाफ़री** की नज़्में और ग़ज़लें : अवध की ख़ाके हसीं / मेरा सफ़र / ग़ज़लें / हाथों का तराना

93 और अंत में...

रचना भूमि

96 **गोविंद मिश्र :** कशिश (कहानी)

111 **गोविंद मिश्र से उर्मिला शिरीष** की बातचीत

कविता

119 **पद्मा सचदेव :** बहती धारा / सुबह का पहर (डोगरी)

121 **रवींद्र स्वप्निल प्रजापति :** तो फिर युद्ध कौन करता है (हिंदी)

123 **प्रेम रंजन अनिमेष :** मोरनाच / हिंदी कोश / शेष (हिंदी)

126 **मैना थापा 'आशा' :** वे हाथ / गाँव में शहर (नेपाली)

128 **मनमोहन :** अफ़ग़ानिस्तान 1-5 (पंजाबी)

131 **सतीश कुलकर्णी :** चेहरे (कन्नड)

134 **मोहन हिमथानी :** यूँ ही कहीं थोड़ा रुककर...(सिंधी)

135 **प्रकाश किनगावकर :** उत्तर / वंश बेल / खूँटी पर टँगी लालटेन / उद्धार (मराठी)

कहानी

140 **लक्ष्मण गायकवाड :** म्हसणजोगी की पंचफुली (मराठी)

145 **कुसुम अंसल :** ये हमारा मकान (हिंदी)

155 **दीप्ति पटनायक :** निस्संग (ओड़िया)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

163 **देव भंडारी :** सौदा (नेपाली)

167 **शीरीं नियाज़ी :** छोटी मछली बड़ी मछली (उर्दू)

नाटक

171 **सुनीता तारापुरे :** अनसुनी चीख़ें

निबंध

184 **अवतारकृष्ण राजदान :** शारदा लिपि, देश एवं शिलालेख

192 **जयदेव तनेजा :** वाचिक का वर्चस्व : सत्यदेव दुबे का रंगकर्म

समीक्षा

203 **हीरालाल नागर :** गपशप के बीच काशीनाथ सिंह

206 **सत्यकाम :** नए कलेवर में परोसी गई कहानियाँ

208 **मुकेश कुमार :** ख़बरों की ख़बर लेने का कौशल

210 **व्यास मणि त्रिपाठी :** आसक्ति और अस्मिता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संपादकीय

बहुरूप और बहुमुख होने के बावजूद

हिंदी के सृजनधर्मी और व्यवहारपरक रूप—वाचिक हो या लिखित—की महिमा एवं व्याख्या से संबद्ध इतिहास इतना भारी हो चुका है कि इसे ढोनेवाले कंधे अब झुकने लगे हैं। लेकिन इसके कार्य-दायित्व में कोई कमी नहीं आई है और न इससे जुड़ी अपेक्षा में। नवजागरण काल से लेकर आज तक, यानी मोटे तौर पर पिछले एक सौ सत्तर वर्षों में, 'स्वभाषा' से लेकर जनभाषा और विश्वभाषा तक की बहुधा बाधित इस यात्रा में, हिंदी को विभिन्न बोलियों, उपभाषाओं और बहिरागत भाषा, धर्म एवं संस्कृति से जुड़े शब्द, मुहावरे और पदबंध समृद्ध करते रहे हैं लेकिन फिर भी यह 'गरीबन', 'बेचारी' और 'अभागिन' की अभिशप्त संज्ञा से आज तक मुक्त नहीं हो पाई है।

संभवत: जो सहज सुलभ हो, वह 'घर की मुर्ग़ी दाल बराबर' हो जाती है। यह बात दीगर है कि मुर्ग़ी और दाल आज दोनों ही महँगी हो गई हैं। यू.एन.ए. की ड्योढ़ी पर खड़ी उसके मुख्य दरवाज़े पर दस्तक दे रही हिंदी अभी भी पैदल पार-पथ के इस ओर खड़ी है। उसे लाल-पीली-हरी बत्ती का संकेत तो समझ में आता है लेकिन फ़्लाई ऑवर, लिफ़्ट, एस्केलेटर, पैन्ट्री, टॉप वग़ैरह की जानकारी नहीं है। उसे राशन कार्ड, आधार कार्ड और बी.पी.एल. कार्ड की पूरी समझ है, लेकिन डेबिट, क्रेडिट और स्मार्ट कार्ड के लिए निश्चय ही थोड़ा-बहुत समय और साधन चाहिए। 'आगे रास्ता बंद है' और 'यह आम सड़क नहीं है'—यह तो वह समझ लेती है लेकिन 'एक्सिडेंट-प्रोन ज़ोन' और 'रोड मर्जेज एहीड' वाली ज़ुबान, उसकी समझ में नहीं आती है।

यह भाषा का व्यवहार पक्ष है और ऐसी अबूझ और आरोपित-सी जान पड़नेवाली भाषा (जो निस्संदेह अंग्रेज़ी ही है) हिंदी की देह (और गेह) की आत्मा में प्रत्यारोपित की जा रही है। यहाँ बात भले ही हिंदी के बहाने की जा रही है लेकिन सभी भारतीय भाषाओं की कमोबेश यही दुरावस्था या असहायता है। स्थिति यह होती जा रही है कि अगर हिंदी वाक्यों से क्रिया और इनके विविध रूप हटा दिए जाएँ तो कमोबेश जो भाषा अनजाने ही सही, लेकिन शान से परोसी जा रही है—वह है अंग्रेज़ी। हिंदी फ़िल्मों के फूहड़ गानों में अंग्रेज़ी और हिंदी के 'गुरु चंडाली' रूप-भेद या रेशम टाट की थिगलियों के बीच पता ही नहीं चलता कि गायक किस भाषा में यह अझेल गाना गा रहा है। बोलचाल की भाषा में 'बाज़ारू इंग्लिश' शब्दों का व्यवहार सरकारी दफ़्तरों के साथ कॉरपोरेट कारोबार का अनिवार्य हिस्सा बन गया है। सर्जनात्मक स्तर पर भी भाषा का सत्यानाश समाज में कितनी तेज़ी से और कैसे हो रहा है, इसका एक सटीक उदाहरण विनायक बंद्योपाध्याय की कविता है, जिसमें एक 'तथाकथित' आधुनिका जिस भाषा को पागुर करने के बाद उगल रही है, वह किसी भी भारतीय भाषा की कविता के लिए निश्चय ही एक चिन्त्य विषय है—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ई-आकाश, ई-बातास, ई-मेल समृद्ध विश्व में—
तुम सिर्फ़ एक बटन दबाओ और तुम्हारी प्रेमिका
अपनी किसी बांधवी के साथ बात पलटती सुनाई देगी—
'यू नो राधा, कल जब उसने फ़ोन किया था,
आई हैड जस्ट पुट द रोटी ऑन द तवा।'

कोई भी भाषा मोमबत्ती सरीखी तिल-तिलकर जलती हुई समाज में रोशनी फैलाती है। लेकिन अगर संबद्ध सामाजिक या उसका विद्वेषी मोमबत्ती को ही फूँक-तोप दे तो उसका हश्र क्या होगा? हम आज अपनी ही भाषा की लौ या मशाल पर अंग्रेज़ी की रेत फेंककर उसे बुझाने का काम कर रहे हैं। हमारी पाठ्य पुस्तकों एवं बौद्धिक विमर्शों में तथा पाश्चात्य अवधारणाओं से संबंधित लेखन में हिंदी में शब्दों के पर्याप्त विकल्प एवं पारिभाषिक पदबंधों से जुड़ी समस्याओं का कोई समाधान ढूँढ़े नहीं मिलता। कुछ गिने-चुने प्रबुद्ध विद्वान स्व-स्व भाषा में उन अपरिचित शब्दों या पदबंधों के अनुरूप पांडित्यपूर्ण, लद्धड़ और बोझिल शब्द निर्मित करने का पराक्रम दिखाते रहे हैं। परिणाम यह होता है कि उसका रहा-सहा प्रभाव भी विनष्ट हो जाता है।

कभी आचार्य रघुवीर के *बृहत् पारिभाषिक अंग्रेज़ी हिंदी कोश* को लेकर साठ के दशक में भयंकर विवाद उठा था और रामवृक्ष बेनीपुरी ने उसे देखकर गुस्से में डॉ. रघुवीर को 'हिंदी का दुश्मन नंबर वन' कहा था। आज कुछ उसी स्वर-तेवर में *वर्धा हिंदी शब्दकोश* के बहाने संस्थागत एवं व्यक्तिगत प्रहार किए जा रहे हैं। लेकिन कुल मिलाकर अधिकतम क्षति हो रही है—हिंदी की। इस वितंडावाद के विस्तार में न जाकर कोशविदों और विज्ञजनों को बैठकर यह विचार करना चाहिए कि आगे के लिए कोई प्रभावी और सार्थक भाषा नीति के साथ रचनात्मक, व्यावहारिक तथा समावेशी शब्द कोश योजना बने ताकि हिंदी ही नहीं, समस्त भारतीय भाषाओं एवं बोलियों में कोश निर्माण की गुणवत्ता न तो बाधित हो और न इसका निर्माता लांछित। निस्संदेह, ऐसे संभावित शब्दकोशों में स्थानीय एवं क्षेत्रीय आकांक्षाओं के साथ इस बात की भी पर्याप्त गुंजाइश होनी चाहिए कि वे मानविकी के साथ विभिन्न अनुशासनों की आकांक्षाओं पर खरे उतरें। साथ ही, भविष्य की आवश्यकताओं के अनुरूप जिन्हें निरंतर परिमार्जित एवं संशोधित भी किया जा सके। किसी भी शब्दकोश की महत्ता उसके शब्द-संख्या बल से नहीं बल्कि उसकी गुणवत्ता और सटीकता से ही निर्धारित होती है। शब्दकोशों (विशेषकर हिंदी) की त्रासदी अभी हाल में संपन्न विश्व पुस्तक मेले में भी प्रदर्शित थी, जिसमें लगभग हर प्रमुख हिंदी प्रकाशक 'आदर्श', 'अद्यतन', 'प्रामाणिक', 'सर्वथा उपयोगी'-जैसे विशेषण लगाकर उन्हें बेच रहे थे। वस्तुत: शब्दकोश निर्माण या इसकी प्रकाशन परिकल्पना का अपरिहार्य अंग है—इसमें निरंतर संशोधन और अनिवार्य परिमार्जन। इसे किसी संस्था या उपक्रम के वित्तीय वर्ष के आय-व्यय पत्रक या कैलेंडर की तरह प्रकाशित नहीं किया जाना चाहिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी के विद्वानों एवं कोशविदों का एक वर्ग जहाँ संस्कृतबहुल या तत्समनिष्ठ पदावली से परहेज़ करते हुए तद्भव, देशज और बोलियों के अधिकाधिक शब्द उपयोग में लाना चाहता है, वहाँ दूसरी ओर से यह सवाल उठाया जा रहा है कि विभिन्न अनुशासनों में प्रयुक्त, स्वीकृत, अद्यतन एवं नवाचार से जुड़ी बहिरागत भाषाओं की अवधारणा-सम्मत शब्दावली को अपनी भाषा में कैसे स्वीकार्य बनाया जाए? क्या हिंदी या भारतीय भाषा-भाषाएँ इतनी सक्षम हैं कि वे इस चुनौती का सामना कर पाएँगी? इस अक्षमता और अपर्याप्तता के कारण हमारी भाषाएँ स्नातक पाठ्यक्रमों तक जाकर ठहर जाती हैं। इनके आगे स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों की पाठ्य पुस्तकें और शोध विषयों से जुड़े संदर्भ ग्रंथ पाठकों या अध्येताओं के साथ न तो न्याय करते हैं और न उन्हें आश्वस्त करते हैं। अगर वे ग्रंथ अंग्रेज़ी या अन्य भाषाओं से अनूदित हैं तो विद्यार्थी ही नहीं, विशेषज्ञों में भी झुँझल पैदा करते हैं। ऐसे में स्रोत और संबोध्य भाषाएँ और इनके पाठक एक-दूसरे के लिए अपरिचित बने रहते हैं और विभिन्न अनुशासनों या विषयों पर प्राप्त पुस्तकें भी सर्वथा अनुपयोगी और 'असूर्यंपश्या' बनी रहती हैं।

सर्जनात्मक स्तर पर—यानी मौलिक लेखन के स्तर पर—हिंदी आज विश्व की कई अग्रणी भाषाओं से टक्कर ले सकती है, साहित्यिक विधाओं के तथा विमर्शों के नाते और विविधताओं के स्तर पर भी। लेकिन कुल मिलाकर यह सब घरेलू 'पिच' पर ही संभव हुआ है। हिंदी में प्रकाशित असंख्य पत्र-पत्रिकाएँ और दैनिक या साप्ताहिक अख़बार अपनी-अपनी स्थानीयता के साथ इन्हें सफलतापूर्वक ताल-स्वर दे रहे हैं। लेकिन टनों में प्राप्त या मुद्रित सामग्री का बहुलांश कुछ ही घंटों बाद कबाड़ी की राह देखने लगता है। पाठक मुद्रित पुस्तकों से निराश हैं तो प्रकाशक पाठकों से। दैनंदिन अख़बारों के पृष्ठ विज्ञापन (बाज़ार) से पटे होते हैं और यही हाल टी.वी. पर प्रसारित होनेवाले ऊटपटांग कार्यक्रमों के बीच ऊलजुलूल ढंग से परोसे जानेवाले विज्ञापनों का है। वैश्विक स्तर पर हमारी यानी हिंदी समेत भारतीय भाषाओं की आवाज़ सशक्त ढंग से कोई अनुगूँज पैदा नहीं कर पा रही है। भौगोलिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी बृहत्तर भारत की सीमाएँ स्वतंत्रता के बाद वैसे ही सिकुड़ गई हैं। प्राच्यवाद या 'ओरियंटलिज़्म' के बहाने 'भारत' पर जितनी प्रमुखता से पहले बात की जाती थी, वह अब 'दक्षिण-एशियाई देश' (साउथ एशियन कंट्रीज़) के बैनर तले अपनी केंद्रीयता खो चुकी है। सार्क (SAARC) संगठन की कार्य सूची (Agenda) और कार्यवृत्त (Minutes) के बीच साहित्य की भूमिका नाममात्र की ही है। ऐसे में साहित्य और संस्कृति के माध्यम से भारतीय भाषाओं का सम्मिलित स्वर प्रभावी ढंग से विश्व मंच पर कैसे पहुँचाया जाए, इस प्रश्न पर हमारे बुद्धिजीवियों और लेखकों को गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए।

साहित्य अकादेमी ने अभी हाल में 21 से 24 मार्च (2014 ई.) तक विश्व कविता उत्सव *सबद* द्वारा विभिन्न देशों के प्रतिनिधि कवियों—आंतोनिओ कोलिनास (स्पेन), बिलाल चौधुरी (बांग्लादेश), जॉर्ज सिर्तेस (इंग्लैंड), ज्येरार नोआरे (फ्रांस), इंग्रिद स्तोरहोलमेन (नॉर्वे), जीन अरसनायकम (श्रीलंका), लेस विक्स (ऑस्ट्रेलिया), लोर्ना शौगनेस्सी, मोया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कैनन (आयरलैंड), मार्रा पीएल. लैनॉट (फ़िलीपींस), मराम अल-मासरी (सीरिया), मिलोस्लाव तोपिंका (चेक गणराज्य), नजवान दरवेश (फ़िलस्तीन), निकोला माज़िरोव (मेसीडोनिया), तानुरे ओजाइदे (नाइजीरिया), तीत्सियाना सेरा रोस्सो (इटली), तुलसी दिवस (नेपाल), ऑस्कर क्रूज़ (क्यूबा) के साथ कई भारतीय कवियों—कुँवर नारायण, भालचंद्र नेमाडे, चंद्रकांत देवताले, के. शिवा रेड्डी, केकी एन. दारुवाला, शफ़ी शौक़ और शीन काफ़ निज़ाम आदि को आमंत्रित कर उपस्थित श्रोताओं के लिए उनकी कविताओं को सुनने का अनूठा अवसर प्रदान किया। आमंत्रित कविताओं से संबंधित एक द्विभाषिक कविता पुस्तिका (हिंदी और अंग्रेज़ी में) *सबद* भी जारी की गई। देश-विदेश में ऐसे ही कविता उत्सवों और साहित्यिक आयोजनों की निरंतरता से और आयोजन-विशेष पर अनिवार्य तौर पर प्रकाशित की जानेवाली कृतियों से उस रिक्तता को, जो परिचय के बावजूद परस्पर संवाद के अभाव में निरंतर बढ़ती जा रही है, पाटा जा सकता है। साथ ही, उन अदृष्ट शक्तियों के वर्चस्व को चुनौती दी जा सकती है जो भाषा और भूगोल की आड़ में या कोई अदृश्य दीवार खड़ी कर हमारी मानवीयता और संवेदनशीलता को साझा करने से रोकती है।

इसी वर्ष मार्च-अप्रैल बीतते-न-बीतते कई दशकों से उपस्थित रचनारत एवं संघर्षव्रती आधुनिक पोलिश कविता के अप्रतिम हस्ताक्षर तादेऊष रूजेविच (1921-2014 ई.)और लैटिन अमरीका के अनन्य कथाकार गार्बियल गार्सिया मार्ख़ेज (1927-2014 ई.)—इन दो सृजनशील व्यक्तित्व का अवसान हो गया। संपूर्ण विश्व साहित्य के लिए यह अपूरणीय क्षति है। सृजनशीलता के पर्याय और विश्व रचनाकाश के इन दो उज्ज्वल नक्षत्रों को साहित्य अकादेमी और आप पाठकों की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि!

प्रस्तुत अंक में हम *अली सरदार जाफ़री* (1913-2000 ई.) की जन्मशती के अवसर पर उनसे संबंधित कुछ आलेख और उनकी कुछ रचनाएँ प्रकाशित कर रहे हैं। जाफ़री साहब ने उर्दू साहित्य के सर्वांगीण विकास के लिए विभिन्न विधाओं—कविता, कहानी, आलोचना, यात्रा वृत्तांत, नाटक आदि में लेखन के साथ उर्दू पत्र-पत्रिकाओं का संपादन भी किया। उनके साहित्यिक योगदान के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है और आगे भी लिखा जाता रहेगा। विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित जाफ़री साहब साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत और भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा भी सम्मानित थे। उनकी रचनाओं के अनुवाद विभिन्न भाषाओं में भी हुए हैं। हमने साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित, डॉ. क़मर रईस साहब द्वारा लिखित विनिबंध *अली सरदार जाफ़री* (हिंदी अनुवाद : जानकी प्रसाद शर्मा) से कुछ चुने हुए अंश यहाँ प्रकाशित किए हैं। साथ ही, उनकी कुछ नज़्में और ग़ज़लें भी।

आशा है, हमारे पाठक इन्हें न केवल पसंद करेंगे बल्कि सराहेंगे।

—रणजीत साहा
9811262257

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

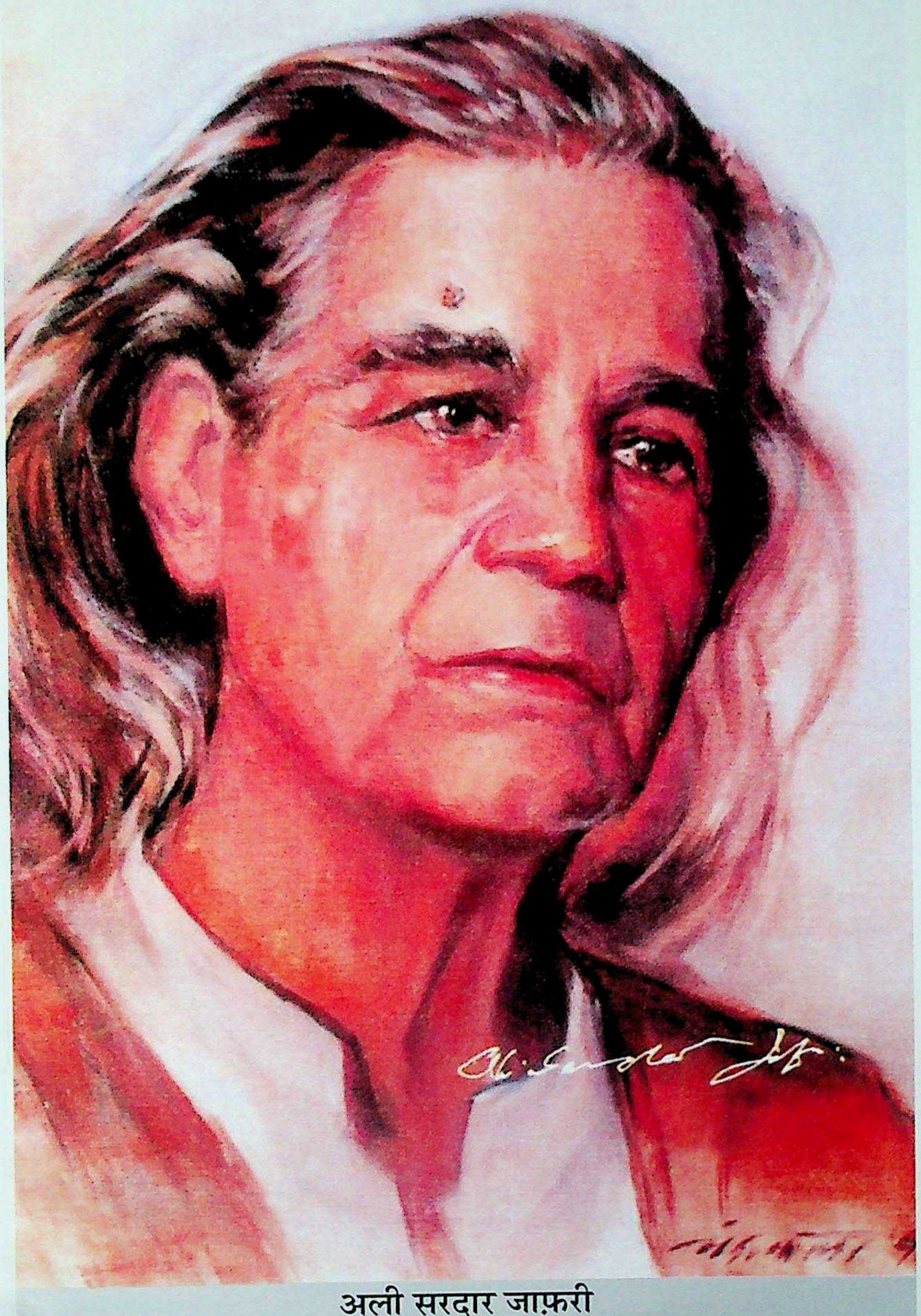

अली सरदार जाफ़री

जन्म : 16 नवंबर 1913; निधन : 1 अगस्त 2000

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़मर रईस

अवध की मिट्टी का बेटा

अली सरदार जाफ़री का जन्म सर ज़मीने-अवध के ऐतिहासिक शहर बलरामपुर में 26 नवंबर, 1913 को हुआ। बचपन और लड़कपन का बड़ा हिस्सा इसी शहर में गुज़रा। इसलिए इस क्षेत्र की मिली-जुली संस्कृति, रंगारंग प्राकृतिक दृश्य, शे'रोअदब की परंपराओं और शांतिपूर्ण वातावरण से उनका भावनात्मक संबंध हमेशा बना रहा। अपनी कई नज़्मों और दूसरी रचनाओं में वे दयारे-अवध की गोद में गुज़ारे हुए पलों को बड़ी अक़ीदत से याद करते रहे। ऐसा लगता है कि उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व के निर्माण में इस क्षेत्र के सुहाने वातावरण का ख़ासा हिस्सा रहा है। अपनी मशहूर नज़्म 'अवध की ख़ाके-हसीं' में लिखते हैं :

मैं रात के वक़्त अपने ख़्वाबों में चौंक पड़ता हूँ
जैसे मुझको अवध की मिट्टी बुला रही है
हसीन झीलें कँवल के फूलों की चादरों में ढँकी हुई हैं
फ़ज़ाओं में मेघदूत परवाज़[1] कर रहे हैं
न जाने कितनी मुहब्बतों के पयाम लेकर
घटाओं की अप्सराएँ अपनी
घनेरी ज़ुल्फ़ों में आख़िरी बार मुस्कुराकर,
ख़लीजे बंगाल[2] और बहरे-अरब[3] के मोती पिरो रही हैं
हरे परों और नीले फूलों के मोर ख़ुश होके नाचते हैं
क़दीम गंगा का पानी ज़मीं के दामन को धो रहा है
वो खेतियाँ धान से भरी हैं

सरदार जाफ़री की एक जीवनीकार डॉ. रफ़िया शबनम आबिदी ने लिखा है कि उनके पूर्वजों का संबंध ईरान के एक नामी शहर शीराज़ से था। उनके एक पूर्वज हिज्रत करके पहरसर (भरतपुर) में आबाद हुए। बाद में प्रतिकूल परिस्थितियों के पेशेनज़र उनका कुनबा रियासत बलरामपुर स्थानांतरित हो गया, जिसे उन्होंने अपना वतन बना लिया।

1932-2009। उर्दू साहित्य में पंद्रह से अधिक कृतियों के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर। दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन के अलावा वे ताशकंद विश्वविद्यालय तथा वहाँ स्थित 'इंडियन कल्चर सेंटर' के निदेशक रहे। मौलाना आज़ाद इम्तियाज़-ए-मीर और ग़ालिब पुरस्कारों से सम्मानित।

---

1. उड़ान, 2. बंगाल की खाड़ी, 3. अरब सागर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उनके दादा का नाम सैयद मेहदी हसन जाफ़री और पिता का नाम सैयद जाफ़र तैयार उर्फ़ बड़े भैया था। उनके बड़े भाई का नाम सैयद ज़फ़र अब्बास था। सरदार जाफ़री की सात बहनें थीं, उनमें से दो बहनें—रबाब बानो और शहर बानो (सितारा) सरदार जाफ़री के संरक्षण में उनके साथ रहीं। बलरामपुर में अपनी ख़ानदानी ज़िंदगी के बारे में सरदार जाफ़री अपनी कृति *लखनऊ की पाँच रातें* में लिखते हैं :

> ''बलरामपुर से बाहर की दुनिया हमारे लिए कोई मानी नहीं रखती थी। यहीं बच्चे पैदा होते थे, जवान होते थे, बलरामपुर के स्कूल के बाद अलीगढ़ में तालीम हासिल करते थे। फिर शादी हो जाती थी और रियासत में मुलाज़मत मिल जाती थी।
>
> ख़ानदान की छोटी-छोटी लड़ाइयाँ कभी-कभी होती थीं, वरना दिन हँसी-ख़ुशी गुज़र जाता था और रात को भाई-बहन बिस्तरों पर लेट जाते थे। कोई एक बहन शर्लाक होम्ज़ की कहानियाँ, राशिदुल ख़ैरी के नॉविल या अज़ीम बेग चुग़ताई की कोई किताब पढ़कर सुनाती। इससे थक जाने के बाद जिन्नातों के क़िस्से शुरू होते जो इंतिहाई दिलचस्प होने के बाद भी दिल में दहशत पैदा कर देते।''[1]

सांस्कृतिक वातावरण

अवध की संस्कृति में शिया संप्रदाय और उसकी प्रथाओं की ख़ास अहमियत रही है। मर्सियाख़्वानी, सोज़ख़्वानी, ताज़ियादारी और दूसरी रस्मों को क़स्बों से लेकर लखनऊ और बलरामपुर जैसे शहरों तक बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता था। सरदार जाफ़री आत्मकथ्य में अपने बचपन के सांस्कृतिक वातावरण का ज़िक्र करते हुए लिखते हैं :

> ''12 रजब और ईदे-ग़दीर बड़ी शान से मनाते थे। शाबान के महीने में बारहवें इमाम का जन्मदिन मनाते और अरीज़े डाले जाते थे। और मुहर्रम बड़े जोशो-ख़रोश से मनाते थे।
>
> चाँद रात को औरतें चूड़ियाँ तोड़ देती थीं और ज़ेवर उतारकर रख देती थीं। सब लोग काले कपड़े पहन लेते थे। बाहर कोठी के सबसे बड़े कमरे में ज़रीह[2] रखी जाती थी और अलम खड़े किए जाते थे। छतों में झाड़-फ़ानूस लगाए जाते थे। चाँदी और सोने के अलम के पंजे और सुनहरी काम के हरे, पीले और सिंदूरी पटके मुझे बहुत अच्छे लगते थे। मुहर्रम की सातवीं तारीख़ को मेंहदी उठती थी और मुझे अलीबंद पहनाया जाता था। आठवीं को हज़रत अब्बास का अलम निकलता था और शबे आशूरा[3] अज़ाख़ाना[4] सजा दिया जाता था।
>
> औरतें टोलियाँ बनाकर देहाती मर्सिए गाती हुई आती थीं और जवान लड़के हज़रत सुग़रा के क़ासिद के नाम पर चिट्ठी रसा बनकर आते थे। उनकी कमर में एक पटके के साथ घंटा बँधा होता था। चिट्ठी रसाओं की टोलियाँ अपने घंटे बजाती हुई आतीं

1. *अली सरदार जाफ़री नंबर 'अफ़्कार'*, कराची, पृ. 641, 2. ताज़िया, क़ब्र, 3. नवीं और दसवीं मुहर्रम की दरमियानी रात, 4. मातमख़ाना, इमामबाड़ा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और अज़ाख़ाने में मर्सिए गा-गाकर नाचती थीं। दस दिन तक मुसलसल मजलिसें होती थीं।

साल के और महीनों में मजलिसें और महफ़िलें होती थीं जिनकी बदौलत मैंने उस दौर के तमाम बड़े ज़ाकिरों[1] को सुना है और बड़े-बड़े धर्मज्ञानियों के हाथों को चुंबन दिए हैं। अनीस के मर्सियों की बड़ी चर्चा थी। यह कहना कोई ज़्यादती न होगी कि कलमा और तकबीर के बाद शायद मेरे कानों ने पहली आवाज़ अनीस की सुनी है। मैं शायद पाँच-छह बरस की उम्र से मिम्बर[2] पर बैठकर सलाम और मर्सिए पढ़ने लगा था। सलाम और मर्सिए के अलावा भी मुझे बेशुमार अशआर याद थे। शायद इसी का असर था कि मैंने पंद्रह-सोलह बरस की उम्र में ख़ुद मर्सिए कहने शुरू कर दिए थे और मर्सियों का असर आज भी मेरी शाइरी पर बाक़ी है।[3]

सरदार जाफ़री की बहन सितारा जाफ़री ने लिखा है कि स्कूल के बाद फ़ुरसत के वक़्त में घोड़ा दौड़ाना, पेड़ों पर चढ़ना और शिकार खेलना उनका बेहतरीन मशग़ला था। अपने लिखने-पढ़ने के लिए उन्होंने एक अलग कमरा बना लिया था। वे नफ़ीस और ख़ूबसूरत चीज़ों के शौक़ीन थे। हर चीज़ तरतीब और सलीक़े से रखते थे। कमरे की दीवारों का रंग हल्का फ़िरोजी था। दीवारों पर इक़बाल और उनके पसंदीदा शाइरों की नज़्में और ग़ज़लें लिखी होती थीं। खिड़की के पास उनके लिखने-पढ़ने की मेज़ और कुर्सी रखी होती थी। स्कूल जाते तो कमरे के दरवाज़े पर ताला लगाकर जाते थे ताकि कमरे की सजावट कोई बिगाड़ न दे।

शिक्षा-दीक्षा

उनकी आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। एक मौलवी साहब क़ुरआन के अलावा उर्दू और फ़ारसी की तालीम देते थे। मास्टर बशीर से अंग्रेज़ी पढ़ी। बलरामपुर के अंग्रेज़ी स्कूल लायल कॉलिजिएट में वे दाख़िल थे। तीसरी कक्षा से छठी कक्षा तक उन्हें मुंशी बदरी प्रसाद ने गणित की शिक्षा दी। लेकिन ऐसा लगता है कि सरदार जाफ़री स्कूल की पढ़ाई में ज़्यादा गंभीर नहीं थे। कई साल बेकार गए। आख़िर 1933 में हाई स्कूल पास करके उच्च शिक्षा के लिए अलीगढ़ गए। लेकिन 1936 में अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ छात्रों की हड़ताल में शरीक होने की बिना पर यूनिवर्सिटी से निकाल दिए गए। इसके बाद उन्होंने ऐंग्लो अरेबिक कॉलेज देहली में दाख़िला लेकर यहीं से बी.ए. किया।

आले अहमद सुरूर ने अपने एक आलेख में अलीगढ़ में सरदार जाफ़री के निवास के बारे में अपने तास्सुरात बड़े दिलचस्प अंदाज़ में बयान किए हैं। लिखते हैं :

''लगभग 1933 में सरदार जाफ़री अलीगढ़ आए और फ़र्स्ट इयर में दाख़िला लिया। अलीगढ़ के अदबी हल्क़ों में उस वक़्त मजाज़ बड़े मशहूर थे और उनकी नज़्म

1. हसन और हुसैन की तकलीफ़ों का बयान करनेवाले, 2. वह लकड़ी का ज़ीना, जिस पर बैठकर मर्सिया पढ़ते हैं,

3. अली सरदार जाफ़री नंबर, 'अफ़्कार', कराची, पृ. 641-642;

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'इंक़िलाब' की ख़ास चर्चा थी। इसी नज़्म से प्रभावित होकर एक युवा शाइर सरदार जाफ़री ने 'आग' शीर्षक से एक नज़्म पढ़ी। शायद यह नज़्म सरदार के किसी संग्रह में नहीं है। 1935 में मैंने और रशीद अहमद सिद्दीक़ी ने मिलकर रिसाला 'सुहेल' के लिए लेख इकट्ठा करना शुरू किए। यह रिसाला 1936 में छपकर आया। लेख ज़्यादातर रशीद साहब के पास आते थे। मैं उनको देखकर बड़ी सावधानी से मुक़्तदा ख़ाँ शेरवानी को छपने के लिए यूनिवर्सिटी प्रेस में भेज दिया करता था। एक बार रशीद साहब ने अपनी डेस्क में से, जिसमें उनके काग़ज़ात रखे रहते थे, एक ड्रामा निकालकर दिया और कहा कि ज़रा देखिए। मुझे तो इसका अंदाज़े-बयाँ बहुत जानदार लगता है और इसकी उपमाएँ बहुत मुतास्सिर करती हैं। यह अलीगढ़ के एक नौजवान विद्यार्थी का लिखा हुआ है। रशीद साहब ने आगे और कहा कि जब मैंने पहली दफ़ा यह ड्रामा पढ़ा तो यक़ीन नहीं आया कि यह इस तालिबे इल्म का ही लिखा हुआ है। मैंने उसको बुलवाया और उससे पूछा, 'यह तुमने लिखा है?' उसने मुझे सबूत में इस क़िस्म की अपनी रचनाएँ लाकर दीं और मुझे यक़ीन हो गया कि यह ड्रामा इसी की रचना है। ग़ालिबन ड्रामे का शीर्षक 'दो दीवाने' था। जहाँ तक मुझे इल्म है, यह सरदार जाफ़री का पहला प्रयास था जो 'सुहेल' पत्रिका के माध्यम से मंज़रे आम पर आया।

1936 में सरदार जाफ़री यूनिवर्सिटी से निष्कासित कर दिए गए। उन्होंने एक छात्र आंदोलन में खुलकर हिस्सा लिया था, जो शुरू तो बी.एम. हॉल में एक हड़ताल से हुआ था लेकिन बाद में यूनिवर्सिटी प्रशासन के ख़िलाफ़ प्रतिरोध में बदल गया। इसके बाद उन्होंने ऐंग्लो अरेबिक कॉलेज दिल्ली में दाख़िला ले लिया।''

कुछ दिन बाद सरदार जाफ़री ने पहले एल.एल.बी. और फिर एम.ए. अंग्रेज़ी में दाख़िला लिया। उस ज़माने में वामपंथी सोच के विद्यार्थी राजनीतिक सरगर्मियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। सरदार जाफ़री भी इसी युवा समुदाय से जुड़ गए थे और ख़ासे सरगर्म थे। नतीजा यह हुआ कि 1939-40 में युद्ध विरोधी आंदोलन में हिस्सा लेने के आरोप में उन्हें क़ैद कर लिया गया। लगभग आठ महीने जेल में रहे।

प्रगतिशील आंदोलन से संबद्धता

1938 का लखनऊ राजनीतिक सरगर्मियों का केंद्र बन गया था। वामपंथी सोच के कई प्रगतिशील साहित्यकार भी इस शहर में जमा हो गए थे। उनमें सज्जाद ज़हीर, डॉ. अब्दुल अलीम, सिब्ते हसन, अली सरदार जाफ़री, असरारुल हक़ 'मजाज़' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

सिब्ते हसन अपने एक आलेख 'सरदार जाफ़री : चंद यादें' में लिखते हैं :

''दूसरी जंगे अज़ीम सर पर खड़ी थी जिस वक़्त मजाज, सरदार जाफ़री और मैंने मिलकर मासिक 'नया अदब' और साप्ताहिक 'परचम' लखनऊ से जारी किए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

> स्पेन में लोकतंत्र का परचम झुक चुका था...ब्रिटेन और फ्रांस की फ़ासिज़्म समर्थक हुकूमतों ने चेकोस्लोवाकिया को हिटलर के हवाले कर दिया था।...
> 'नया अदब' के कर्ताधर्ता दरअसल सरदार जाफ़री थे। उन्हीं की लगन और अनथक मेहनत से यह पर्चा चलता था।''[1]

'नया अदब' का पहला अंक 1939 में प्रकाशित हुआ। इसके प्रवेशांक में ही सरदार जाफ़री का 'तरक़्क़ी पसंद अदब' शीर्षक लेख छपकर आया। इसके संपादकीय और इस लेख में प्रगतिशील साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट किया गया। इसमें अतीत की साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपराओं के ख़िलाफ़ बाग़ियाना तेवर की कड़ी नींदा की गई थी।

'नया अदब' युवा लेखकों में बेहद लोकप्रिय हो रहा था। जोश मलीहाबादी ने अपनी पत्रिका 'कलीम' को भी इसी में विलीन कर दिया और अगस्त 1939 से यह पर्चा 'नया अदब' और 'कलीम' नाम से प्रकाशित होने लगा।

तब दूसरा विश्व युद्ध जारी था। सोवियत यूनियन पर नाज़ी ताक़तों का हमला हो चुका था। कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबंध लगा हुआ था लेकिन 1942 के बीच में अंग्रेज़ी हुकूमत ने पार्टी पर से प्रतिबंध हटा लिया। अब पार्टी का केंद्र बंबई हो गई। सरदार जाफ़री भी पार्टी के होल टाइमर मेंबर बनकर बंबई चले गए। प्रगतिशील आंदोलन की सरगर्मियाँ भी तेज़ हो गईं। 1943 में प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अखिल भारतीय अधिवेशन बंबई में संपन्न हुआ। देश के विभिन्न भाषाओं के लेखकों ने इसमें हिस्सा लिया। सरदार जाफ़री भी संगठन के कामों के लिए बहुत समर्पित रहे।

सरदार जाफ़री अपने लिखने-पढ़ने की व्यस्तताओं और पार्टी के कामों के अलावा प्रगतिशील साहित्य पर गंभीरता से सोच रहे थे। बंबई में प्रगतिशील लेखक संघ की साप्ताहिक गोष्ठियों में वे जोशो-ख़रोश से हिस्सा लेते और बेबाकी से अपनी बात कहते थे। इसी गहन सोच-विचार का नतीजा थी उनकी किताब *तरक़्क़ी पसंद अदब,* जिसका प्रथम संस्करण 1951 में अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू (हिंद) से प्रकाशित हुआ। इसमें उन्होंने इस आंदोलन की प्रेरक परिस्थितियों, इसके मूल उद्देश्यों और साहित्य में इसके प्रतिबिंब पर बड़ी आज़ादी और खुले ज़ेहन से लिखा। उनके कुछ विचारों को लेकर विवाद भी खड़े हो गए। इस किताब में वे लिखते हैं :

> ''इस आंदोलन का कारनामा यह है कि इसने साहित्य के सामंती ढाँचे को तोड़ दिया और इस झूठी धारणा को ख़त्म कर दिया कि साहित्य का प्रयोजन केवल मनोरंजन है जो मुट्ठी भर पेटभरे लोगों के मन बहलाव के लिए लिखा जाता है। इसी ने इस सिद्धांत का प्रवर्तन किया और इसे मनवा भी लिया कि अदब अवाम का तर्जुमान होता है, उन्हीं के जीवन की तस्वीरकशी करता है और उसकी आज़ादी के संघर्ष में शरीक होकर उसे आगे बढ़ाता है।''[2]

---

1. *सरदार जाफ़री : शख़्स, शाइर और अदीब* : सं. अब्दुल सत्तार दलवी, पृ. 67-68
2. *तरक़्क़ी पसंद अदब,* 1957, पृ. 231

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सरदार जाफ़री की शादी सुल्ताना मिन्हाज से 30 जनवरी, 1948 को बंबई में हुई। वे भी कम्युनिस्ट पार्टी की सक्रिय कार्यकर्ता थीं। उन्होंने दो बेटों—नाज़िम और हिकमत और एक बेटी दुर्दाना को जन्म दिया। अपने पारिवारिक जीवन के बारे में सुल्ताना जाफ़री ने एक आलेख में लिखा है :

> ''हम लोग अँधेरी में स्थित पार्टी कम्यून में रहते थे। यह वह कम्यून था जिसमें किसी ज़माने में युद्ध बंदियों को रखा जाता था। सरदार बहुत उम्दा आदमी थे। बहुत खुले विचारों वाले थे। मुझे कभी कहीं जाने से नहीं रोका। मेरे लिए कभी लफ़्ज़ 'ना' का इस्तेमाल नहीं किया। हालाँकि उनकी मुस्तक़िल आमदनी का कोई ज़रिया नहीं था...मैंने उनके साथ बहुत भरपूर ज़िंदगी गुज़ारी। ऐसी भरपूर कि इससे बेहतर कोई ज़िंदगी हो नहीं सकती।
>
> सरदार रात ही को लिखते थे। उस वक़्त जब घर के सारे लोग सो जाते, सरदार लिखने बैठते थे, अंदर के कमरे में जहाँ उनकी तमाम किताबें रखी हुई थीं। वे रात भर सोच-विचार करते, कुछ पढ़ते, कुछ लिखते और ख़ूब सिगरेटें पीते थे। मैं कभी रात में जाग जाती तो कहती, 'तुम कितनी सिगरेट पी रहे हो' लेकिन वे बुरा नहीं मानते थे। सिर्फ़ इतना कहते कि जब तक सिगरेट न हो, मेरी क़लम नहीं चलती।''[1]

बंबई में निवास के दौरान वे दो बार गिरफ़्तार भी हुए। उस ज़माने में कम्युनिस्ट दुश्मन नेता मोरारजी देसाई मुख्यमंत्री थे। पहली बार वे 20 जनवरी, 1949 को गिरफ़्तार किए गए और दूसरी गिरफ़्तारी 19 अप्रैल 1949 को हुई। इस बार वे आर्थर रोड जेल और सेंट्रल जेल, नासिक में बंद रहे और लगभग सवा साल के बाद जुलाई, 1950 में रिहा हुए। उनका बड़ा बेटा नाज़िम भी इसी दौरान पैदा हुआ। उनकी कई नज़्में इसी जेल जीवन की यादगार हैं।

सरदार जाफ़री ने कभी कोई स्थायी नौकरी नहीं की, न सरकारी न ग़ैर सरकारी। उनकी बेगम सुलताना जाफ़री अलबत्ता सोवियत हाउस ऑफ़ कल्चर में मुलाज़िम थीं। सरदार जाफ़री ने शुरू में साहिर और मजरूह की तरह फ़िल्मों में गीत और पटकथा लिखने की कोशिश की लेकिन उनका मिज़ाज ऐसा था कि उसे वे आमदनी का ज़रिया न बना सके। एक ख़त में लिखते हैं :

> ''1963 के बाद मैं फ़िल्मों से दूर होता गया और अब क़तई कोई संबंध नहीं है। मेरी आमदनी का ज़रिया सिर्फ़ मेरा क़लम है। आजकल नेहरू फ़ेलौशिप के तहत उर्दू शाइरी की इमेजरी पर काम कर रहा हूँ। अब तक इक्कीस हज़ार शब्दों और पदों का चयन कर चुका हूँ।''[2]

साहित्यिक एवं शैक्षिक गतिविधियाँ

धीरे-धीरे सरदार जाफ़री कम्युनिस्ट पार्टी की सरगर्मियों से दूर और सदस्यता से मुक्त हो गए। पत्रकारिता और साहित्यिक कार्यों में उनकी दिलचस्पी और व्यस्तता बढ़ने लगी। 1967 में

1. *अली सरदार जाफ़री* : सं. अब्दुस्सत्तार दलवी, पृ. 50-52
2. *सरदार जाफ़री के ख़ुतूत* : *अंजुमन तरक़्क़ी उर्दू हिंद*, दिल्ली, पृ. 50

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्होंने बंबई से त्रैमासिक पत्रिका 'गुफ़्तगू' का प्रकाशन शुरू किया। यह पत्रिका भी 'नया अदब' की तरह प्रगतिशील साहित्य की मुखपत्रिका थी। इसके प्रवेशांक के संपादकीय में लिखते हैं :

> "अदब और अदीब इस वक़्त एक भ्रामक दौर से गुज़र रहे हैं। विश्वास आहत हैं और आस्थाओं की साँस उखड़ी-उखड़ी-सी है। हमारी नज़रों के सामने आदर्शों के चेहरे विरूपित हुए हैं और सपनों को क़त्लगाहों से गुज़रना पड़ा है। मूल्यों की सन्निपात-जैसी कैफ़ीयत ने दिलों को दहला दिया है। इसके फैले हुए रेगिस्तानों में कहीं-कहीं नई सोच और नई सर्जनात्मकता की हरियाली दिखाई देती है लेकिन इनकी छाँव इतनी घनी नहीं कि उर्दू अदब हड्डियों को पिघला देनेवाली तपती हुई धूप से बच सके।"[1]

'गुफ़्तगू' में नई और पुरानी पीढ़ी के रचनाकारों की रचनाओं के अलावा 'पेशगुफ़्तार' शीर्षक से सरदार जाफ़री के विचारोत्तेजक संपादकीय भी प्रकाशित होते थे। इनमें उस समय की वैचारिक और साहित्यिक समस्याओं पर बेबाकी से टिप्पणी की जाती थी। 1968 तक 'गुफ़्तगू' निकलता रहा, लेकिन फिर हृदय रोग के कारण वे कुछ साल तक इसे जारी न रख सके। बाद में फिर एक दोस्त रोशनलाल वढेरा की मदद से 'गुफ़्तगू' के नये दौर का आग़ाज़ हुआ और तरक़्क़ीपसंद नंबर के रूप में इसका एक वृहत् अंक प्रकाशित किया गया। उनके संपादन में प्रकाशित होनेवाला 'गुफ़्तगू' का यह आख़िरी अंक साबित हुआ।

इस दौरान सरदार जाफ़री नेहरू फ़ेलौशिप के अकादमिक काम के अलावा इक़बाल शताब्दी समारोह के महासचिव की हैसियत से इसकी व्यापक तैयारियों में जुटे रहे।

सरदार जाफ़री बेहद मेहनती और जुझारू इंसान थे। वे महाराष्ट्र उर्दू अकादमी के डायरेक्टर, प्रगतिशील लेखक संघ (उर्दू) के अध्यक्ष, नेशनल बुक ट्रस्ट और दूसरी कई संस्थाओं के मानद सदस्य रहे। मुहम्मद इक़बाल, संत कबीर, जंगे आज़ादी के सौ साल और उर्दू के मुम्ताज़ शुअरा के बारे में 'हल्क़ए-याराँ' के नाम से दस्तावेज़ी (डॉक्यूमेंट्री) फ़िल्में बनाईं। ये सारे काम उनकी संगठनात्मक और सर्जनात्मक क्षमताओं के आईनादार थे।

सरदार जाफ़री एक व्यापक विज़न से संपन्न रचनाकार थे। उनके चिंतन की बुनियाद मार्क्सवाद पर थी, लेकिन प्राच्य चिंतनधारा पर उनकी गहरी नज़र थी। वे फ़ारसी और उर्दू की क्लासिकी शाइरी और सूफ़ी परंपरा के प्रवक्ता थे। बाद में भक्ति आंदोलन के संबद्ध भारतीय कवियों का भी उन्होंने गहरा अध्ययन किया। इसी तरह के वामपंथी सोच के सुविख्यात कवियों मायकोव्स्की, पाब्लो नेरुदा और नाज़िम हिकमत-जैसे क़द्दावर कलाकारों की कलात्मक बारीकियों पर भी गहरी नज़र रखते थे।

1954 में उन्होंने सोवियत लेखकों की दूसरी कॉन्फ्रेंस में शिरकत की थी। बाद में भी वे सोवियत यूनियन के सेमिनारों और जलसों में जाते रहे। कई सोवियत भाषाओं में उनकी रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित हुए। ताशकंद के ओरियंटल इंस्टीट्यूट के एक स्कॉलर नवी मुहम्मदोफ़ ने 1965 में उनकी शाइरी पर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की।

---

1. अली सरदार जाफ़री : सं. अब्दुस्सत्तार दलवी, पृ. 423

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सिर्फ़ सोवियत यूनियन और समाजवादी देशों ही नहीं इंग्लैंड, कनाडा, अमरीका और पाकिस्तान के साहित्यिक आयोजनों में भी वे शिरकत करते थे। सफ़र के मुआमले में वे अपनी कमज़ोर और गिरती हुई सेहत की क़तई परवाह नहीं करते थे। अगस्त 1985 में लंदन में प्रगतिशील लेखक संघ की स्वर्ण जयंती शानदार पैमाने पर मनाई गई। सरदार जाफ़री ने मुल्कराज आनंद के साथ इसमें बड़ी सरगर्मी से हिस्सा लिया। 1986 में लखनऊ और दिल्ली में भी प्रगतिशील आंदोलन और प्रलेस की स्वर्ण जयंती मनाई गई तो इनकी परिचर्चाओं में उनकी सक्रिय भागीदारी रही। इन पंक्तियों का लेखक जब उर्दू विभागाध्यक्ष था, तब दिल्ली विश्वविद्यालय के आमंत्रण पर उन्होंने 1987 में 'तरक़्क़ीपसंद तहरीक की आधी सदी' विषय पर वार्षिक व्याख्यान किया।

वास्तविकता यह है कि 1970 के बाद सरदार जाफ़री लेखन और साहित्यिक गतिविधियों में ज़्यादा समय गुज़ारने लगे। यह उनके वैचारिक क्षितिज के विस्तार का ज़माना था। शे'रगोई तो उनके व्यक्तित्व की बुनियादी पहचान थी लेकिन वे अपने विस्तृत अध्ययन की बिना पर चिंतन की नई दिशाओं की ओर आगे बढ़ रहे थे। मीर तक़ी 'मीर' और मिर्ज़ा ग़ालिब के दीवानों को उन्होंने बड़े व्यवस्थित रूप से संपादित किया और उर्दू तथा देवनागरी लिपि—दोनों में प्रकाशित किया। उनका विचार था कि संत कबीर की कविता में एकेश्वरवादी दर्शन के जो प्रभाव हैं या मीराबाई की कविता में कृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम है, कमोबेश आध्यात्मिक चिंतन का यही रूप सूफ़ी संतों के काव्य में दृष्टिगत होता है। इसके मूल में मनुष्य मात्र की एकता और पारस्परिक प्रेम की भावना विद्यमान है। इसलिए उन्होंने कबीर और मीराबाई के काव्य-संचयन अपनी सारगर्भित भूमिकाओं के साथ हिंदी तथा उर्दू दोनों में प्रकाशित किए। शहर बनारस के बारे में मिर्ज़ा ग़ालिब की फ़ारसी मस्नवी 'चिराग़े दैर' के उर्दू अनुवाद 'सोमनात ख़याल' के पीछे भी उनकी यही भावना ज़ाहिर होती है। उनकी मान्यता थी कि जिस तरह प्रगतिशील अदबी तहरीक के असर में भारतीय साहित्य की एक नई अवधारणा सामने आई, उसी तरह प्राचीन भारतीय चिंतन में निहित शांति, भाईचारे और मानव-मैत्री के मूल्यों पर ज़ोर देकर उन्हें एक राष्ट्रीय पहचान दी जा सकती है।

इसका आशय यह नहीं कि वे प्रगतिशील आंदोलन से दूर हो गए थे। मार्च 1995 में जब प्रगतिशील लेखक संघ (उर्दू) की एक याद कॉन्फ्रेंस हैदराबाद में आयोजित हुई, बावजूद इसके कि वे अस्सी पार कर चुके थे, उन्होंने बड़ी सरगर्मी से कॉन्फ्रेंस में हिस्सा लिया। सोवियत यूनियन का विघटन हो चुका था। इस वाक़ये का उन्हें दिली सदमा था। कॉन्फ्रेंस में उन्होंने वही बातें कहीं, जो एक आलेख में पहले लिख चुके थे। उन्होंने कहा कि "कम्यूनिज़्म रूस से ख़त्म हुआ है, हमारे यहाँ नहीं। कम्यूनिज़्म दरअसल एक तसव्वुर है, बेहतर ज़िंदगी का। जो कुछ सोवियत यूनियन में था, वह कम्यूनिज़्म की तरफ़ जाने का सिर्फ़ एक रास्ता था।" उन्होंने कॉन्फ्रेंस के एक सत्र में रूस की अक्टूबर क्रांति के वैश्विक प्रभावों का जायज़ा लिया। लेकिन सच्चाई यह है कि सोवियत यूनियन के चुपचाप हुए विघटन की दुःखद घटना ने अन्य प्रतिबद्ध लेखकों की तरह उन्हें भी हिलाकर रख दिया था। उनकी नज़्म 'अलविदा' में इस पीड़ा को महसूस किया जा सकता है। इसके कुछ शे'र देखिए :

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अलविदा ऐ सुर्ख़ परचम, सुर्ख़ परचम अलविदा
ऐ निशाने-अम्न मज़लूमाने-आलम अलविदा
ऐ लिबासे-आबरूए-इब्ने-आदम अस्सलाम
ऐ रिदाए-सर बरहना [1] बिन्ते-मरियम [2] अलविदा
ऐ जलाले-कावा-ए-आहन गर [3] ज़ह्हाक कुश
ऐ ज़वाले-नख़वते-असकंदरो-जम अलविदा [4]
आफ़ताबे-बत्न गीती की शुआएँ-शब शिकन
ऐ मताए-इनक़िलाबे-दौरे-आलम अलविदा
ऐ ग़ुरूरे-दस्ते-मेहनत ऐ शिकोहे बेनवा
हश्र तक दुनिया करेगी तेरा मातम अलविदा
दीदए-पुरनम से कल दिल ने कहा था 'मरहबा' [5]
कह रही है आज लेकिन चश्मे पुरनम अलविदा

सरदार जाफ़री के व्यक्तित्व का ताना-बाना वैविध्य एवं विरोधाभास पूर्ण तत्त्वों से बुना हुआ था। उनके बचपन के माहौल में एक ओर जागीरदारा तहज़ीब के मूल्य घुले-मिले थे तो दूसरी ओर उसमें धार्मिक शिक्षा, रीति-रिवाजों, विशेष रूप से विद्या-व्यसनी लोगों के प्रति श्रद्धा का भाव भी रचा-बसा था। युवावस्था में ही हालाँकि अपने तर्कशील स्वभाव के कारण वे बहुत-सी अतार्किक, हवाई और रूढ़िवादी धारणाओं से स्वयं को मुक्त कर चुके थे लेकिन धार्मिक आस्था और इस्लाम की तारीख़ के ऐसे पहलू हमेशा उनके किरदार का हिस्सा बने रहे जो अन्याय, उत्पीड़न, मूल्यहीनता, और सामाजिक विषमता के ख़िलाफ़ जिहाद में उन्हें शक्ति और साहस प्रदान करते थे।

एक लेखक और शाइर की हैसियत से यों तो वे भावों और विचारों की दुनिया में खोये रहते थे और एक बेहतर ज़िंदगी के सपनों से उनका सरोकार था। लेकिन ज़िंदगी की बेरंग और कारोबारी सच्चाइयों से भी वे मायूस नहीं थे। फिर यह कि सांगठनिक कार्यों में भी उनकी सोच बहुत निर्णायक होती थी। प्रगतिशील आंदोलन के वैचारिक परिप्रेक्ष्य के निर्माण के साथ-साथ इसकी कार्यवाहियों में भी वे सक्रिय भागीदारी करते थे। अलबत्ता वे अपने विचारों और रचनादर्शों का इज़हार करते हुए एक कठोर समझ को अपना लेते थे। इसके चलते संवाद कभी-कभी विवाद की सूरत अख़्तियार कर लेता था। सज्जाद ज़हीर ने भी इस बात को स्वीकार किया है और उनके दूसरे साथियों ने भी उनके व्यक्तित्व के इस पहलू की तरफ़ इशारा किया है और यह भी स्वीकार किया साहित्यिक संगोष्ठियों में सरदार इतने प्रामाणिक और तर्कसंगत ढंग से अपनी बात कहते थे कि अकसर उनके विरोधी मुँह की खाते थे।

1. निर्वस्त्र की चादर, 2. मरियम की बेटी, 3. फ़िरदौसी के *शाहनामा* का एक पात्र जो लोहार था और जिसके पैर में बँधे चमड़े से बना परचम उस फ़ौज ने इस्तेमाल किया, जिसने ख़ूँख़ार बादशाह ज़ह्हाक का क़त्ल किया, 4. सिकंदर और जमशेद-जैसे बादशाहों का ग़ुरूर, 5. शाबाश, वाह-वाह।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़मर रईस

सर्जनात्मक कौशल : शायरी (लंबी नज़्में)

सरदार जाफ़री ने अपने कई संग्रहों और नज़्मों की भूमिकाओं में अपनी शे'रगोई से संबंधित मान्यताओं को प्रस्तुत किया है। 'परवाज़' के बाद अपनी नज़्मनिगारी में उन्होंने जो प्रयोग किए, उन्हें समझने के लिए निम्नांकित वक्तव्यों पर दृष्टिपात करना होगा :

(क) मैं अपने मक़सद को हासिल करने के लिए मुख़्तलिफ़ क़िस्म और मुख़्तलिफ़ सतह की शाइरी करता हूँ। मेरी तमामतर कोशिश यह है कि ज़्यादा-से-ज़्यादा आदमियों के लिए अपनी शाइरी को आसान बना सकूँ। इस कोशिश में उन हदों को तोड़ देना चाहता हूँ जो बोलचाल की ज़बान के बीच खड़ी हुई हैं।

(ख) चूँकि मैं शाइरी को बुनियादी तौर पर गाने या बुलंद आवाज़ से पढ़कर सुनाने की चीज़ समझता हूँ और उससे चेतना को जाग्रत करने और जज़्बात को उभारने का काम लेता हूँ, इसलिए मैंने अपनी आज़ाद नज़्मों में भी यह कोशिश की है कि वे महज़ काग़ज़ पर पढ़ने की चीज़ें बनकर न रह जाएँ।

(ग) पाबंद नज़्म में ज़्यादातर मिसरों और शे'रों के गठन पर ज़ोर दिया जाता है लेकिन मैं इसके बरअक्स आज़ाद नज़्म में अलग-अलग मिसरों के बजाय बंदों के गठन को अहम समझता हूँ। चूँकि आज़ाद नज़्म में रदीफ़ और क़ाफ़िए की झनकार नहीं होती इसलिए इसमें आंतरिक संगीत का जादू बहुत ज़रूरी है...जो शब्द-चयन के अलावा मिसरों के आपसी रब्त से भी पैदा होता है।

1950 तक 'परवाज़' के बाद सरदार जाफ़री की जो नज़्में पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं, वे हैं : *नई दुनिया को सलाम,* (1946), *जम्हूर,* (1946), *ख़ून की लकीर,* (1949), *अम्न का सितारा* (तीन तवील नज़्में, 1950)

उपर्युक्त वक्तव्यों की रोशनी में सरदार जाफ़री की तवील या अपेक्षाकृत तवील नज़्मों की प्रेरक स्थितियों का अंदाज़ा लगाया जा सकता है। दरअसल ये नज़्में एक ओर पाश्चात्य या अंग्रेज़ी काव्य की लंबी कविता की धारणा से मेल नहीं खातीं। दूसरी ओर ये उर्दू की क्लासिकी शाइरी की तवील नज़्मों, मसलन मस्नवी, क़सीदा, शहरे-आशोब से भी संगति नहीं रखतीं जिनका एक निश्चित फ़ॉर्म होता है और अकसर जो किसी क़िस्से या विषय तक सीमित होती हैं। मौलाना हाली और अल्लामा इक़बाल की कुछ नज़्में अलबत्ता तवील नज़्म की एक उज्ज्वल और नई परिकल्पना पेश करती हैं। सोवियत दौर के एक अहम लिथोनियाई कवि मार्केनकेवियस (Marcenkevius) ने लंबी कविता की संभावनाओं पर विचार करते हुए लिखा है :

''लंबी कविता में मनुष्य के संघर्षशील चरित्र की विद्यमानता होती है। इसमें दुनिया को नए ढंग से बनाने की क्रिया भी झलकती है। बेशक आज की दुनिया बड़ी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पेचीदा, अस्त-व्यस्त, विसंगतिपूर्ण और त्वरित गति से परिवर्तनशील है। मनुष्य के पास अपनी दुनिया के बारे में जानने के लिए ज्ञान का जितना बड़ा भंडार है, इस ज्ञान को एक कविता के कलेवर में समाहित करना उतना ही कठिन है। लंबी कविता सामाजिक ज़िंदगी और सोच के एक ख़ास स्टेज को समावेशी रूप में पेश करती है। संपूर्ण सामाजिक परिस्थिति का जायज़ा लेते हुए लंबी कविता मूल्यों की एक कसौटी भी सामने रखती है और इस तरह दर्शन के ज़्यादा क़रीब आ जाती है।''[1]

यह धारणा सरदार जाफ़री की कुछ लंबी नज़्मों की अंत:प्रकृति पर रोशनी डालती है। यानी उनकी नज़्में उनके युग के इंसान की ज़िंदगी के संघर्षशील चरित्र का अहाता करती हैं। इतना ही नहीं, ये नज़्में उस दौर के सामाजिक जीवन में व्याप्त विचारों के द्वंद्व का ब्योरा भी देती हैं और अंतत: यह सारी प्रक्रिया एक दार्शनिक दिशा अख़्तियार कर लेती है। *नई दुनिया को सलाम* में यह अहसास ज़्यादा शिद्दत से होता है, जो बक़ौल शाइर एक रूपक काव्य है। इसके केंद्रीय चरित्र जावेद और मरियम उपनिवेशवाद ग़ुलामी के ख़िलाफ़ बलिदानपूर्ण संघर्ष के सशक्त प्रतीक बन जाते हैं, और एक मासूम और हसीन अजन्मा बच्चा है जो इस नई दुनिया, नई व्यवस्था का प्रतीक है, जो जल्द ही अस्तित्व में आनेवाली है। अदम्य आशावाद और दृढ़विश्वास इस कविता की मूल आत्मा है।

शाइर ने नज़्म को छह हिस्सों (तसवीरों) में बाँटा है। संरचना की दृष्टि से भी यह नज़्म एक प्रयोग है। जाफ़र अली ख़ाँ 'असर' ने इस नज़्म पर तब्सिरा करते हुए लिखा है :

''जाफ़री साहब ने नज़्म का जो रूपविधान निश्चित किया है, वह बहुत दिलकश और संगीतात्मक है। बावजूद इसके कि काफ़ी हिस्से का रूप आज़ाद नज़्म का है। इससे उनकी उरुज़ (छंद) से वाक़िफ़यत और ज़ुबान पर क़ुदरत का पता चलता है।''

नज़्म के संरचनागत ताने-बाने में बड़ा संतुलन है। इसमें मानवीय जीवन के सातत्य और स्वाधीनता के अधिकार को केंद्रीय स्थिति प्राप्त है। रूप और अंतर्वस्तु की अनुरूपता ने नज़्म को एक सौंदर्यात्मक इकाई में ढाल दिया है। नज़्म की समूची व्यवस्था में जीवन और संसार के प्रति शाइर के दृढ़ आशावादी सरोकार प्रभावी रहते हैं। सरदार जाफ़री ने अपनी काव्य-रचना संबंधी जिन मान्यताओं की ओर संकेत किया है, उनके चिह्न और प्रभाव भी इस नज़्म में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं। जावेद और मरियम के संवादों की भाषा शाइराना लालित्य के बावजूद बोलचाल की ज़बान है। आज़ाद नज़्म के फ़ॉर्म में संवाद क़ाफ़ियों से मुक्त होते हुए भी आंतरिक संगीत से परिपूर्ण होते हैं, जो पाठक को गिरफ़्त में रखते हैं। आज़ादी का दीवाना जावेद, जिसे फाँसी की सज़ा मिलती है, कहता है :

कल के दिन हम न होंगे मगर
ज़िंदगी मुस्कुराती रहेगी
अपनी शम्एँ जलाती रहेगी
आसमानों का फ़ीरोज़ी रंग उतना ही दिलकश रहेगा

---

1. *तनक़ीदी तनाज़ुर :* क़मर रईस, पृ. 99

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और उ.फ़क़ की ज़बीं रोशनी से चमकती रहेगी
आज की तरह कल भी ज़मीं
अपने महवर[1] पर घूमा करेगी
और .फ़ज़ाओं की लाइंतिहा पहनाइयों[2] में
कल भी झूमा करेगी
आरती बज़्मे अंजुम उतारा करेगी
आज की तरह कल भी जमीं
चश्मए-नूर में ग़ुस्ल करके
सुर्ख़ सूरज के आईने में
अपनी ज़ुल्फ़ें सँवारा करेगी

समूची नज़्म में कायनात की गतिशीलता का भाव आद्योपांत विद्यमान है, इससे संवाद भी गतिशील बने रहते हैं और इस तरह जीवन और संसार की सुंदरता और नित्यता के प्रति शाइर का विज़न पूरी नज़्म के रूपक-विधान में रचा-बसा महसूस होता है।

दूसरी लंबी नज़्म जो आज़ादी से पहले मार्च, 1946 में प्रकाशित हुई, लगभग दो सौ शे'रों की मस्नवी है। जाफ़री इस नज़्म के प्राक्कथन में लिखते हैं :

> ''हैरत है कि इस मुफ़ीद विधा (मस्नवी) से प्रगतिशील शाइरों ने अब तक कोई काम नहीं लिया है। मेरा अनुभव यह है कि हम इससे बहुत-कुछ फ़ायदा उठा सकते हैं। जब मैं हिंदुस्तान और दुनिया के मौजूदा हालात, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय जद्दोजहद व कशमकश और उससे उत्पन्न होनेवाली मानवीय भावनाओं के विस्तार और फैलाव को देखता हूँ तो महसूस करता हूँ कि मस्नवी के सिवा और कोई काव्य विधा इन्हें अपने दामन में समेट नहीं सकती।''[3]

जैसा कि शाइर ने स्वीकार किया है, इस नज़्म के हीरो मेहनतकश अवाम हैं। जिनके हाथों में ज़िंदगी की बाग़ें हैं, वे सारी पृथ्वी को अपनी गिरफ़्त में लिए हुए हैं। ये वे अवाम हैं जो इतिहास के गलियारों और समाज के हर कोने में ताज़ा ख़ून की तरह दौड़ रहे हैं।

यह वह ज़माना है जब हिंदुस्तान और उसके अवाम विदेशी ग़ुलामी से आज़ाद होने वाले हैं। जल्द ही लोकतांत्रिक व्यवस्था में हुकूमत की बागडोर उनके हाथों में होगी। शाइर नज़्म के आरंभ में उन्हीं को संदेश देता है :

उठो हिंद के बाग़बानो उठो
उठो इन्क़िलाबी जवानो उठो
उठो जैसे दरिया में उठती है मौज
उठो जैसे आँधी की बढ़ती है .फ़ौज

---

1. धुरी, 2. अनंत विस्तार
3. कुल्लियाते जाफ़री : संपादक अली अहमद फ़ातमी, पृ. 276

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग़ुलामी की ज़ंजीर को तोड़ दो
ज़माने की रफ़्तार को मोड़ दो

इस नज़्म पर इक़बाल की शाहकार नज़्म 'साक़ी नामा' का गहरा प्रभाव दिखाई देता है। जाफ़री ने मस्नवी के लिए 'साक़ी नामा' की बहर का चुनाव किया है। अलबत्ता शब्द-चयन में वे अवामी मुहावरे और लहजे के ज़्यादा क़रीब आ गए हैं। यह उनकी रचना-यात्रा का एक मोड़ था। एक प्रयोग भी था। इसका विषय निस्संदेह महान आदर्शों से युक्त है। घोर परिश्रमी अवाम की ताक़त, रचनात्मक सामर्थ्य और पराक्रम का ऐसा रज़्मिया[1] अभी तक उर्दू में लिखा नहीं गया था। इसके बावजूद इस नज़्म में वर्णनात्मक शैली को अपनाया गया है। इसमें प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का वह सौंदर्य समाहित नहीं हो सका है जो *परवाज़* संग्रह की बेशतर नज़्मों की सबसे बड़ी विशेषता है। इसलिए इसे पत्रकारिता के अंदाज़ की नज़्म समझा गया। कुछ शे'र देखिए :

यहाँ से जो उठती है लेके गुहर
घटा वो बरसती है इंग्लैंड पर
हमारे मुक़द्दर में अफ़लास[2] है
ग़ुलामी की हर जिस्म में बास है
जिसे देखो मुफ़लिस है कंगाल है
हर इक शहर, हर गाँव-बंगाल है।

यहाँ अभिव्यक्ति की सादगी में सपाटपन पैदा हो गया है।

इसके कुछ वर्ष बाद ही 1950 में *अम्न का सितारा* नाम से उनकी एक कृति प्रकाशित हुई जिसमें 'सोवियत यूनियन और जंगबाज़', 'स्टालिन कथा' और 'अम्न का सितारा' शीर्षक तीन नज़्में संगृहीत हैं।

यह वह ज़माना था जब सोवियत अवाम और लाल सेना हिटलर की नाज़ी फ़ौजों को शिकस्त देकर अपने वतन और साम्यवादी समाज के निर्माण कार्य में तन-मन से जुटे हुए थे। दुनिया के सबसे बड़े देश चीन में साम्यवादी क्रांति कामयाब हो चुकी थी। वियतनाम, हिंद-चीन, कोरिया और तीसरी दुनिया के दूसरे देशों में क्रांतिकारी शक्तियाँ बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रही थीं। हिंदुस्तान में तेलंगाना के किसानों का क्रांतिकारी आंदोलन उभर रहा था। इस उत्साहजनक माहौल में कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध हिंदुस्तानी शाइर और लेखकों के इरादे बहुत बुलंद थे। सारी दुनिया में सामराजी ताक़तों के मुक़ाबले में वे अवाम की क्रांतिकारी कामयाबियों पर नज़रें जमाए हुए थे। मख़्दूम मुहीउद्दीन, कैफ़ी आज़मी, वामिक़ जौनपुरी, नियाज़ हैदर और परवेज़ शाहिदी की तरह सरदार जाफ़री भी साम्यवादी व्यवस्था और विश्वशांति की स्थापना का परचम उठाये हुए थे। इसलिए यहाँ चर्चित तीनों नज़्मों में जन-जागरण का क्रांतिकारी वातावरण साफ़ झलकता है।

---

1. वह कविता जिसमें युद्धों और संघर्षों का वर्णन हो।

2. अभाव, गरीबी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'स्टालिन कथा' में जाफ़री ने हिंदी-उर्दू की एक लोकप्रिय रज़्मिया बहर का चुनाव किया है जिसका आरंभ इस तरह होता है :

आज़ादी के लड़ने वालो सुनो कथा स्टालिन की
सारे जग में जिसके दम से उजियारी है लेनिन की
जिसने निर्बल निर्धनजन को मुक्ति मार्ग दिखाया है
जिसने जनता की शक्ति से जनता राज बनाया है

नज़्म में नाज़ी हमलों की हार पर लाल सेना के बेमिसाल बलिदान और पराक्रम को श्रद्धांजलि दी गई है। लेकिन नज़्म में अतिरंजनापूर्ण प्रशंसा और उपदेशपरकता का समावेश हो गया है। विशेष रूप से उस हिस्से में जहाँ सोवियत अवाम की साधन संपन्नता और आर्थिक ख़ुशहाली का ज़िक्र है। मसलन यह बंद :

थिरक रही है ज़िंदगी फ़राग़तों की छाँव में
हसीन गीत तैरते हैं नीलगूँ फ़ज़ाओं में
यहाँ ग़मों की बेड़ियाँ नहीं किसी के पाँव में
न कोई अश्कबार है, न कोई सोगवार है

हालाँकि इस युद्ध में एक-एक मोर्चे पर लाखों नौजवान मारे गए थे। लाखों औरतें विधवा और करोड़ों बच्चे अनाथ होने का दुःख झेल रहे थे। हज़ारों कारख़ाने तबाह हो चुके थे। पूरा देश दारिद्र्य और आर्थिक संकट की गिरफ़्त में था। दूसरी नज़्म के बारे में सरदार जाफ़री ने प्राक्कथन लिखा :

> "सोवियत यूनियन सरमायादारी, सामराजी अत्याचार और आधिपत्य को मुद्दत हुई ख़त्म कर चुका...उन्होंने ज़हनी और जिस्मानी मेहनत का फ़र्क़ मिटा दिया है और इस तरह एक ऐसी तख़्लीफ़ की है, जिसे सही मा'नों में इंसान कहते हैं।
> स्टालिन इसी इंसान को बनानेवाला है। वह देवता, पयम्बर और अवतार नहीं है, बल्कि इस इंसान की मुकम्मल तसवीर है इसलिए हमारे दिल स्टालिन की मुहब्बत और अक़ीदत से सरशार हैं।"[1]

यहाँ भी सरदार जाफ़री ने बेजा अतिशयोक्ति से काम लिया है। स्टालिन न कोई आदर्श इंसान था, न नेता। न ही वह अपने प्रभुत्व में अतिचार और बलप्रयोग से एकदम मुक्त एक बेहतर इंसान को जन्म दे सका।

जाफ़री ने लिखा है कि 'स्टालिन कथा' में हिंदी और उर्दू की एक लोकप्रिय बहर को अपनाया गया है। उनका संबंध अवध से था और अवधी बोली की मशहूर दंतकथा वीर गाथा 'आल्हा' से यक़ीनन वे परिचित थे! अपनी नज़्म में उन्होंने इसी 'आल्हा' की बहर अख़्तियार की है। सज्जाद ज़हीर ने भी इसी वज़न में लेनिन के बारे में एक गीत लिखा था जो एक ज़माने

---

1. *कुल्लियाते जाफ़री,* भाग एक, पृ. 448

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में काफ़ी लोकप्रिय था और इप्टा (IPTA) और प्रगतिशील लेखकों के जलसों में गाया जाता था। सरदार जाफ़री की यह नज़्म भी इप्टा के स्टेज पर बार-बार पेश की गई। जाफ़री ने अवधी बोली की देशज अभिव्यक्तियों और ऐसे मुहावरों का प्रयोग भी किया है जिनको बाज़ारी कहा जाता है। इसके बावजूद पूरी नज़्म में शाइर के भावावेग, इतिहासदृष्टि, साम्यवादी आस्था, अंतरराष्ट्रीय हालात का आकलन और रचनात्मक विज़न बहुत साफ़ नज़र आते हैं। कुल मिलाकर नज़्म में उर्दू के अवामी मुहावरे को प्रमुखता से बरता गया है। उपमाओं और प्रतीकों का बेसाख़्ता प्रयोग नज़्म की धार बढ़ा देता है। सोवियत रूस पर नाज़ी फ़ौजों के तूफ़ानी हमलों का यह दृश्य देखिए :

नाज़ी फ़ौजें रूस पे झपटी जैसे काली आँधी आए
हरे-भरे खेतों पर जैसे टिड्डी दल आकर छा जाए
टैंक चलें धड़ धड़ करते, लोहे के हाथी झूमें
रूसी खेलों और शहरों में तोपें मुँह खोले घूमें
उड़ती है बारूद, लहू के धरती पर फ़व्वारे हैं
लोहे और फ़ौलाद के गिध आकाश पे पंख पसारे हैं
नभ को आग के गोले चाटें लंबी-लंबी जीभ निकाले
रन में धुएँ के अजगर नाचें मोटे-मोटे काले-काले

पूरी नज़्म में प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति की इसी कैफ़ीयत का एहसास होता है। विनाशकारी हथियारों के साथ युद्ध के विषय को शाइराना हुस्न के साथ एक नज़्म में ढालना आसान काम नहीं था।

तीसरी नज़्म 'अम्न का सितारा' है। यह उन आरंभिक नज़्मों में से एक है, जिनमें सरदार जाफ़री ने आज़ाद नज़्म के फ़ॉर्म में महारत हासिल करने की कोशिश की है। यह नज़्म भी पिछली दो नज़्मों की तरह सोवियत साम्यवादी व्यवस्था, उसके अवाम और नेताओं के प्रति आदर भाव से परिपूर्ण है। इसमें नौ बंद हैं और इसे सरदार जाफ़री ने 'एक शाइराना तक़रीर' का नाम दिया है और लिखा है कि नज़्म में अपने जोशे अक़ीदत और ख़िराजे मुहब्बत को लेकर चला हूँ।

मुश्किल यह थी कि शाइर की विचारधारात्मक सख़्ती और सोवियत निज़ाम के आसपास खड़ी लोहे की दीवारों के चलते इस निज़ाम की कमज़ोरियों तक उसकी नज़र नहीं पहुँच सकी, और अगर पहुँचती भी तो उस युग में पार्टी का एक सक्रिय सदस्य इन कमज़ोरियों को बयान करने का साहस नहीं कर सकता था। इसलिए इन नज़्मों में उपदेशात्मकता और तथ्यात्मकता का रंग हावी रहा है। इस सिलसिले की कुछ अन्य नज़्में भी हैं जैसे 'इन्क़िलाबे रूस', 'लेनिन' और 'आख़िरी ख़त' वग़ैरह। 1978 में *तराना-ए-जम्हूर* नाम से एक संग्रह प्रकाशित हुआ था। इसमें भी सोवियत शासन की प्रशंसा में नज़्में शामिल थीं। ऐसी बात नहीं कि ये नज़्में काव्य-सौंदर्यविहीन हैं। सरदार जाफ़री की वैचारिक कट्टरता और साम्यवादी व्यवस्था की अतिरेकपूर्ण प्रशंसा श्लाघा के बावजूद इनमें शाइर की सर्जनात्मक प्रतिभा का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जलवा देखा जा सकता है। सिर्फ़ यही नहीं, उन्होंने अपनी इन रचनाओं में साम्यवादी दर्शन की व्यापकता, मानव-मैत्री, जन सरोकार और विश्वशांति के भावों को बहुत स्पष्टता के साथ पेश किया है। इनके माध्यम से उर्दू शाइरी के कैनवस पर व्यापक मानवीय सरोकारों के बीज बो दिए गए हैं। भावनाओं और अनुभूतियों के नए रंग उभरे हैं। मसलन 'अम्न का सितारा' के छठे बंद का यह हिस्सा देखिए :

रूस की सरहदों की कोई हद नहीं
मुल्क और सल्तनत की हदें
वादियों, नदियों और पहाड़ों तलक
क़ौम की सरहदें सिर्फ़ तारीख़ों-नफ़सो-मआशो-ज़बानो-तमद्दुन [1] तलक
लेकिन इंसान की कोई सरहद नहीं
सोवियत यूनियन की हदें
वादिओ-दश्तो-कुहसार [2] को तोड़कर
ख़ुद दिलों से गुज़र जाती हैं...

पूरी नज़्म सीख और उपदेश के बावजूद कलात्मक अभिव्यक्ति का सुंदर नमूना है।

इस दौर में सरदार जाफ़री का एक और संग्रह *ख़ून की लकीर* 1949 में प्रकाशित हुआ। इसमें शामिल बेहतर नज़्में वे हैं जो *परवाज़* में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। संग्रह में उनचास क़त्ओं के अलावा 'मल्लाहों की बग़ावत', 'गर्दे-कारवाँ', 'ख़्वाब', 'सैलाबे चीन', 'आँसुओं के चिराग़' और 'फ़रेब' जैसी महत्त्वपूर्ण नज़्में शामिल हैं। इनमें से कामयाब नज़्में वे हैं जो आज़ाद फ़ॉर्म में लिखी गई हैं। 'ख़्वाब' जश्ने आज़ादी के फ़ौरन बाद ज़ब्त 'तहरीर' में आई थी। शाइर इसमें लंबे धैर्य और संघर्ष के बाद बड़े उत्साह के साथ आज़ादी का स्वागत करता है :

जाग हिंदोस्ताँ अपने ख़्वाबे गिराँ से
देख आज़ादी की सुबह का नूर फैला हुआ है
तेरे बरसों के बिछड़े हुए लाल घर आ रहे हैं
ये ग़ुलामी की ज़ंजीर को तोड़ आए
क़ैदख़ानों के दर खोल आए
अपनी आग़ोश में उनको बढ़कर उठा ले
अपने दिल में बिठा ले

नज़्म में देश-प्रेम की पवित्र भावना के ताप का एहसास होता है। आख़िरी बंद में शाइर करोड़ों बरस से अपनी आग में जलनेवाले सूरज को आवाज़ देता है :

---

1. इतिहास, अस्तित्व, आजीविका, भाषा-संस्कृति
2. जंगल और पहाड़
3. [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐ हज़ारों बरस के थके-माँदे बूढ़े मुसाफ़िर
हमारी ज़मीन पर उतर आ
दो घड़ी हिंद के सब्ज़ाज़ारों में आराम कर ले
अपनी झोली को फूलों से भर ले
और अपने सफ़र पर चला जा

संग्रह में इसके बाद ही एक और नज़्म है 'फ़रेब' जो शायद कुछ अर्से बाद ही लिखी गई थी, जब कम्युनिस्ट पार्टी ने आज़ादी को फ़रेब क़रार दिया और मेहनतकश इंसानों को पूँजीवादी व्यवस्था और बुर्जुआ शासन से मुक्ति दिलाने के लिए क्रांतिकारी जद्दोजहद जारी रखने का ऐलान किया :

ख़्वाब ज़ख़्मी हैं उम्मीदों के कलेजे छलनी
मेरे दामन में हैं ज़ख़्मों के महकते हुए फूल
मैं जिन्हें कूचओ-बाज़ार से चुन लाया हूँ
क़ौम के राहबरो, राहज़नो!
तुमने फ़िरदौस के बदले में जहन्नुम लेकर
कह दिया हमसे गुलिस्ताँ में बहार आई है
चंद सिक्कों के इवज़ चंद मिलों की ख़ातिर
तुमने नामूस [1] शहीदाने वतन बेच दिया
बाग़बाँ बन के उठे और चमन बेच दिया।

आज़ादी के बाद के दौर में सरदार जाफ़री और दूसरे प्रगतिशील शाइरों के दिलो-दिमाग़ पर ख़ूनी दंगों और हिजरत के हृदय विदारक दृश्य प्रेतबाधा की तरह छाए हुए थे जिसका एक अक्स उनकी नज़्म 'आँसुओं के चिराग़' में मिलता है। लिखते हैं :

ये रात है किस क़दर भयानक
ये ख़्वाब है किस क़दर परीशाँ
हज़ारों सहमी हुई निगाहें
बिलखती आँखें सिसकती पलकें
अँधेरी शब में
करोड़ों अश्कों के झिलमिलाते चिराग़ लेकर
हुजूम में क़ातिलों के
इंसाफ़ के फ़रिश्तों को ढूँढ़ती हैं।

इस युग की दूसरी महत्त्वपूर्ण नज़्मों मसलन 'कशमकश' में यह एहसास फिर एक क्रांतिकारी स्वर में ढलता नज़र आता है कि पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियाद पर क़ायम लोकतांत्रिक शासन प्रणाली हिंदोस्तान के करोड़ों अवाम को दरिद्रता, बदहाली, अन्याय और

---

1. आबरू, शर्म

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उत्पीड़न के दलदल से बाहर नहीं निकाल सकेगी। लेकिन इन नज़्मों में सरदार जाफ़री का सर्जनात्मक लहजा और अपनी आवाज़ उभरती दिखाई देती है :

कैसे समझाऊँ बहारों का गुलाबी जोड़ा
आज तक रूह ख़िज़ाँ ज़ेब बदन कर न सकी
तिश्नगी खेतों की शबनम से बुझी है न बुझे
चाँदनी ज़ख़्मों में काफ़ूर कभी भर न सकी
मौजें जब बढ़ती हैं दरियाओं में तूफ़ान बदोश
अपनी हर मौज को शमशीर बना लेती हैं
जब उतरती हैं फ़ज़ाओं से ज़मीं पर किरनें
सुर्ख़ नेज़ों पे अँधेरों को उठा लेती हैं

इन नज़्मों में कैसे अछूते, जानदार और मनोहारी बिंब बिखरे पड़े हैं। नए सामाजिक बोध से संपन्न प्रतीकात्मक रचनाशैली का यह रूप सच तो यह है कि उस युग के किसी कमिटेड शाइर के कलाम में प्राप्त नहीं होता।

अभिव्यक्ति की नई करवटें

इसी सर्जनात्मक अभिव्यंजना शैली के साथ सरदार जाफ़री की शाइरी दूसरे दौर में दाख़िल होती है। अब उनका मानसिक क्षितिज ज़्यादा विस्तृत, उनका भावबोध ज़्यादा जाग्रत, उनकी दृष्टि ज़्यादा दूर-रस और उनके सरोकार ज़्यादा व्यापक हो जाते हैं। जिनके चिह्न 1950 में प्रकाशित होनेवाली उनकी लंबी कविता 'एशिया जाग उठा' में आसानी से देखे जा सकते हैं।

इसके अलावा उनके चार कविता-संग्रह और हैं : *पत्थर की दीवार* (1953), *एक ख़्वाब और* (1964), *पैराहने शरर* (1965) और *लहू पुकारता है* (1968)

इन संग्रहों के अलावा उनके अंतिम दिनों की कुछ शाहकार नज़्में मसलन 'नवंबर मेरा गहवारा' और 'दिल और शिकस्ते दिल' किसी संग्रह में नहीं, लेकिन उनके कुल्लियात में शामिल हैं।

सरदार जाफ़री ने जब 'एशिया जाग उठा' लिखी तो उस समय सचमुच सारे एशिया में जागृति की एक लहर दौड़ रही थी। हिंदुस्तान आज़ाद हो चुका था। चीन में माओ त्से तुंग के नेतृत्व में साम्यवादी क्रांति कामयाब होकर आगे क़दम बढ़ा रही थी। इंडोनेशिया और वियतनाम से लेकर मलाया तक और तेलंगाना, बंगाल और केरल तक क्रांतिकारी शक्तियाँ संगठित हो रही थीं। मध्य एशिया में पहले ही पाँच सोशलिस्ट रियासतें साम्यवादी निर्माण के मार्ग पर अग्रसर थीं। यह ऐसा उत्साहवर्धक माहौल था जिसने साम्यवादी विचारधारा के युवा साहित्यकारों के दिलों को नए सपनों और उमंगों से भर दिया था।

नज़्म 'एशिया जाग उठा' उस युग में अवाम की जागृति और क्रांतिकारी जद्दोजहद का जीवंत चित्र प्रस्तुत करती है। हालाँकि इस जोशीले वातावरण ने नज़्म के भूमिका भाग 'हर्फ़े अव्वल' को अख़बारी नारेबाज़ी के रंग में रंग दिया है। इस हिस्से में ऐसे मिसरे भी मिलते हैं :

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ज़िंदगी बदली है बदला है ज़माने का मिज़ाज
फोड़ देंगे हम ये आँखें, हमको आँखें मत दिखाओ
एशिया से भाग जाओ
हम भी देंगे तुम्हें अब जूते से जूते का जवाब
हाँ बड़े आए कहीं के लाट साहब जाओ, जाओ
एशिया से भाग जाओ

लेकिन इस भावुकतापूर्ण भूमिका के बाद पूरी नज़्म की संवेदना में गंभीरता पैदा होती जाती है और नज़्म कला का एक श्रेष्ठ नमूना बन जाती है। इसमें प्राचीन एशियाई संस्कृतियों के इतिहास और ज्ञान एवं ललित कलाओं की उपलब्धियों की सारी दास्तान इस तरह सिमट जाती है, जो किसी अन्य नज़्म में नहीं मिलती। कृश्नचंदर ने इसे पढ़कर लिखा था :

> "'एशिया जाग उठा' एक ही साथ संघर्ष-गाथा और गेय कविता—दोनों है, जिसमें एपिक का प्रबंधात्मक सांगीतिक सौंदर्य है, नज़्म में एशिया का सारा सजल रूप सिमटकर समा गया है। यह नज़्म चार हज़ार वर्षीय संस्कृति की तसवीर है।"

ऊँचे स्वरों के बावजूद नज़्म का हर दृश्य बोलता है, क्रियाशील है और पाठक को अपने साथ बाँधे रहता है। इसमें युद्ध-काव्य के वैभव के साथ-साथ लोककथाओं की रोचकता और गीतों की मधुर रवानी है। देखिए :

ये एशिया की ज़मीं, तमद्दुन की कोख, तहज़ीब का वतन है
जबीं पे तारों का ताज, पैरों में झाग की झाँजनों का नग़मा
ज़मीन—सदियों पुराना चेहरा
किसान—सदियों पुराने हाथों में
अपने लकड़ी के हल सँभाले
ग़रीब मज़दूर—जलती आँखें
उचाट नींदों की तल्ख़ रातें
जहाज़, मल्लाह, गीत, तूफ़ान
कुम्हार, लोहार, चाक, बर्तन
ग्वालिनें दूध में नहाईं
अलाव के गिर्द बूढ़े अफ़सानागो—कहानी
फ़ज़ाओं में बाँसुरी का लहरा
हरी-भरी खेतों में शीशे की चूड़ियाँ
खनखना रही हैं...

नज़्म में इसी तरह एक के बाद एक स्वाभाविक रूप से आकृतियाँ उभरती चली जाती हैं। कहीं अतिरिक्त प्रयास का एहसास नहीं होता। वर्णन की सरलता में कला-शिल्प की सुंदरता है। निस्संदेह, इस तवील रज़्मिया नज़्म से सरदार जाफ़री की नज़्मिया शाइरी का नया दौर शुरू होता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्थर की दीवार जाफ़री की जेल में कही हुई नज़्मों का संग्रह है। संग्रह की अनेक नज़्में अल्पकालिक महत्त्व के विषयों पर आधारित हैं। जाफ़री ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है लेकिन प्राक्कथन में यह भी विश्वास के साथ कहा है, 'नज़्मों की ताज़गी और अहमियत उस वक़्त तक बाक़ी रहेगी जब तक हिंसा और अत्याचार पर आधारित मौजूदा निज़ाम ज़िंदा है और जब तक अवाम के दिलों में हिम्मत और एक नए बेहतर निज़ाम को क़ायम करने की उमंग बाक़ी है। संग्रह में पाबंद नज़्में भी हैं, मुअर्रा[1] भी और आज़ाद भी। लेकिन ऐसा लगता है जैसे जाफ़री आज़ाद नज़्म के फ़ॉर्म को अब ज़्यादा कामयाबी और हुनरमंदी के साथ बरतना चाहते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'अवध की ख़ाके हसीं', 'तुम्हारी आँखें' और 'नींद' जैसी शाहकार नज़्में हैं, जिनकी प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति सामर्थ्य प्रगतिशील शाइरी के बीच सरदार जाफ़री को एक अलग मुक़ाम दिलाती है। 'अवध की ख़ाके-हसीं' में उस क्षेत्र विशेष के भूख, ग़रीबी और पिछड़ेपन के कारुणिक दृश्यों को उभारा गया है जो शाइर के मन को द्रवित कर देते हैं। लेकिन इसके साथ ही साथ शाइर अवध के ऐतिहासिक गौरव, सांस्कृतिक संपन्नता और प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रांकन भी करता जाता है। यह बंद देखिए :

मैं रात के वक़्त अपने ख़्वाबों में चौंक पड़ता हूँ
जैसे मुझको अवध की मिट्टी बुला रही है
हसीन झीलें कँवल के फूलों की चादरों में ढँकी हुई हैं
फ़ज़ाओं में मेघदूत परवाज़[2] कर रहे हैं।
न जाने कितनी मुहब्बतों के पयाम लेकर
घटाओं की अप्सराएँ अपनी
घनेरी ज़ुल्फ़ों में आख़िरी बार मुस्कराकर
ख़लीजे-बंगाल और बहरे-अरब के मोती पिरो रही हैं
हरे परों और नीले फूलों के मोर ख़ुश होके नाचते हैं
क़दीम गंगा का पाक पानी ज़मीं के दामन को धो रहा है
वो खेतियाँ धान से भरी हैं
जहाँ हवाएँ अज़ल के दिन से सितार अपना बजा रही हैं
हिमाला की बुलंदियाँ बर्फ़ से ढँकी हैं
उन आसमान बोस चोटियों को
सहर के सूरज ने सात रंगों की कलग़ियों से सजा दिया है

पत्थर की दीवार संग्रह में शामिल अधिकांश नज़्में जाफ़री ने जेल जीवन के दौर में कही थीं। इसलिए वे घर और बाहर के आज़ाद जीवन की मोहक स्मृतियों से ओत-प्रोत हैं। यह 'पत्थर की दीवार' हो, 'नींद' हो या 'तुम्हारी आँखें'—अधिकांश नज़्में शाइर के पीड़ादायक एकांत के बोझ को उठाने का साधन बन जाती हैं। यह बंद देखिए :

1. वह नज़्म जिसमें रदीफ़-क़ाफ़िए का प्रयोग लाज़िम न हो।
2. उड़ान

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं लिख रहा हूँ
तुम्हारी आँखें सफ़ेद काग़ज़ पे अपनी पलकों से चल रही हैं
मैं पढ़ रहा हूँ
तुम्हारी आँखें हर इक सतर की भौहों के नीचे लरज़ रही हैं
मैं सो रहा हूँ
तुम्हारी आँखें, तुम्हारी पलकें कहानियाँ-सी सुना रही हैं
मैं दोस्तों और साथियों में घिरा हुआ हूँ
मसर्रतों के गुलाब हर सिम्त खिल रहे हैं
तुम्हारी आँखों के फूल गोया महक रहे हैं

ऐसी अनगिनत मिसालें यहाँ दी जा सकती हैं। बेशक इस संग्रह में 'यलग़ार', 'कोरिया', 'सज्जाद ज़हीर के नाम' और दूसरी नज़्में भी शामिल हैं, जो शाइर की वैचारिक और राजनीतिक संबद्धता की कहानी सुनाती हैं। लेकिन इस सच्चाई से इंकार मुश्किल है कि भावों और विचारों की प्रौढ़ता और प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति में निखार की दृष्टि से सरदार जाफ़री इन नज़्मों में अपनी सृजन-यात्रा की एक नई मंज़िल पर खड़े नज़र आते हैं। ये विशेषताएँ बाद के संग्रहों *एक ख़्वाब और* तथा *पैराहने शरर* में और ज़्यादा निखरे हुए रूप में फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और मख़्दूम की शैली से अलग उनकी पहचान बनाती हैं।

दरअसल इन दो संग्रहों में जिस ज़माने की नज़्में शामिल हैं, वह कम्युनिस्ट आंदोलन में विघटन और बिखराव तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर काफ़ी उथल-पुथल और परिवर्तनों का ज़माना था। चीन का आक्रमण, पार्टी का विभाजन, पार्टी कांग्रेस में खुशचेव के तहलकाख़ेज रहस्योद्घाटन, क्यूबा का विवाद, पंडित नेहरू की मृत्यु के बाद देश में सोशलिस्ट समाज की रचना के सपनों का बिखरना, सोवियत यूनियन पर संशोधनवाद के आरोप, उपमहाद्वीप में भारत-पाक युद्ध और इसके विनाशकारी परिणाम, हिंदुस्तान के अल्पसंख्यकों, विशेषतः उर्दू भाषा-भाषी समाज में भय और संदेह का वातावरण—इन परिस्थितियों के द्वंद्व से सरदार जाफ़री भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। *एक ख़्वाब और* के प्राक्कथन में लिखते हैं :

> ''ख़्वाब और शिकस्ते ख़्वाब इस दौर का मुक़द्दर है और नए ख़्वाब देखना इंसान का एक ऐसा हक़ है, जिसे कोई ताक़त कोई प्रभुत्व उसे वंचित नहीं कर सकता और शायद यही इंसान और इंसानियत के मुस्तक़बिल की ज़मानत है।''[1]

इसी शीर्षक की नज़्म में लिखते हैं :

दरबदर ठोकरें खाते हुए फिरते हैं सवाल
और मुजरिम की उनसे गुरेज़ाँ है जवाब
सरकशी[2] *फिर मैं तुझे आज सदा देता हूँ*
मैं तिरा शाइरे-आवरा-ओ-बेबाको-ख़राब

---

1. *कुल्लियाते-जाफ़री :* भाग दो, पृ. 183
2. उद्दंडता, दुस्साहस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

.फ़ैंक कर जज़्बए बेताब की आलम पे कमंद[1]
एक ख़्वाब और भी ऐ हिम्मते-दुश्वार पसंद

इन संग्रहों में सरदार जाफ़री की 1965-66 में लिखी हुई दस से ज़्यादा ऐसी नज़्में मिलती हैं जो आस-पास के हालात को लेकर उनके मानसिक द्वंद्व और दुविधा से बोझिल हैं। भारत-पाक युद्ध और मानव-रक्त के अपमान ने उन्हें विचलित कर दिया था। 'अमानते-ग़म', 'लहू पुकारता है', 'गुफ़्तगू', 'आरजूए-तिश्नालबी', 'तुम्हारा असीर', 'फूल चाँद' और 'परचम' इस सिलसिले की प्रभावशाली नज़्में हैं। एक शीर्षकहीन नज़्म का यह अंश देखिए :

उँगलियाँ बादे-सबा की भी लहू से तर हैं
चाक होते हुए देखा है चमन का सीना
तारे-पैराहने-गुल, उड़ते हुए देखा है
कोई बतलाओ कि इस दौरे-सियह-ओ-वहशत[2] *में*
हुस्ने-मासूमों-दिल आरा की अदा क्या होगी
इश्क़े-बर्बाद के आदाबे-जुनूँ क्या होंगे

यहाँ संकेतों के माध्यम से शाइर की रूहानी तकलीफ़ एकदम सामने आ जाती है। लेकिन इसी युग की दूसरी रचनाओं में शाइर इस आशा और यक़ीन को ज़ाहिर करता है कि दोनों पड़ोसी देशों के अवाम और आपस में जुड़े लोग फिर से प्रेम और भाई-चारे के दीये जलाएँगे। शांति की वार्ताएँ ज़रूर फलीभूत होंगी :

सुबह तक ढल के कोई हर्फ़े वफ़ा आएगा
इश्क़ आएगा, बसद लग़ज़िशे पा जाएगा
नज़रें झुक जाएँगी, दिल धड़केंगे लब काँपेंगे
ख़ामुशी बोसाए-लब बनके महक जाएगी
सिर्फ़ ग़ुंचों के चटकने की सदा आएगी

इनके अलावा भी इस संग्रह में 'हाथों का तराना', 'मिरे अज़ीज़ो मिरे रफ़ीको' 'हसीनतर', 'तुम नहीं आए थे जब', 'सरे तूर-निवाला' और 'मेरा सफ़र'-जैसी सशक्त रचनाएँ शामिल हैं।

लालित्यपूर्ण प्रतीकात्मक भाषिक अभिव्यक्ति में रची-बसी जाफ़री की उस दौर की नज़्मों के बारे में यह भी कहा गया कि ये फ़ैज़ के रूमानवी रवैये से प्रभावित होकर लिखी गई हैं। यह सही है कि दोनों प्रगतिशील शाइरों की अनगिनत रचनाओं में उपमाओं और प्रतीकों के सार्थक प्रयोग पाठकों को प्रभावित करते हैं। लेकिन यह भी सच है कि जाफ़री का बिंब-विधान ज़िंदा सच्चाइयों का एहसास कराता है। इसमें ऐतिहासिक विवेक और सांस्कृतिक

1. फंदा, जाल
2. दीवानगी, घबराहट

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चेतना भी प्रभावी रहती है। प्रो. रफ़िया शबनम आबदी ने दोनों शाइरों की रूमानवी अभिव्यक्ति की सांगीतिक विशेषताओं की तुलना करते हुए लिखा है :

> ''सरदार जाफ़री के यहाँ दुहरी तसवीर मिलती है। कभी घन गरज वाला खनकता हुआ लहजा, जैसे दूर किसी जंगल में आग लगी हो या बस्ती में आँधी आ गई हो कभी ठहरा-ठहरा, सँभला-सँभला सुलझा हुआ अंदाज़, अल्फ़ाज़ नपे-तुले संजीदगी में नहाये हुए, फ़िक्र में डूबे हुए, ख़ाको-ख़ून में लिथड़े हुए, जैसे कोई सेनापति मैदाने जंग में हारे-थके सिपाहियों को दुश्मन पर हमले करने के लिए उकसा रहा हो। या फिर कोई बुद्ध अँधेरी गुफ़ाओं की ख़ामोशी में अपने शिष्यों को जीवन और मृत्यु का दर्शन समझा रहा हो। ऐसी शाइरी रूह में उतरे न उतरे, दिलो-दिमाग़ को रोशन कर देती है और इंसान के सामने सृष्टि के रहस्यों को खोलकर रख देती है...जब यही सरदार जाफ़री मूर्त बिंबों के करिश्मे दिखाते हैं तो ऐसे मोहक और अलबेले नमूने नज़र के सामने से गुज़रते हैं कि तबीयत ख़ुश हो जाती है।''[1]

पैराहने शरर 1965 और *ख़ून की लकीर* संग्रह 1968 में प्रकाशित हुए। इन संग्रहों में भारत-पाक युद्ध से पैदा हुई बर्बादी और कटुता की अनुगूँज साफ़ सुनाई देती है। उर्दू साहित्यकारों विशेष रूप से प्रगतिशीलों के लिए यह बड़ी आज़माइश का समय था। अपने देश की संप्रभुता और अखंडता की रक्षा करने के साथ-साथ उन्हें मानव-मैत्री और विश्वशांति के मूल्यों की पैरवी भी करनी थी जो कि उनके ध्येय का हिस्सा था। इससे बढ़कर यह कि दोनों देशों के अवाम हज़ारों साल से इतिहास, संस्कृति और भाषायी एकता के जिन रिश्तों से बँधे थे, आपस में जैसे उनके प्रेमसंबंध थे, एकता थी--इन सब चीज़ों पर चोट पड़ने का सबसे ज़्यादा दुःख उर्दू के भुक्तभोगी शाइरों और क़लमकारों को हुआ।

सरदार जाफ़री ने इस ज़माने में 'कौन दुश्मन है ?', 'सुबह फ़र्दा', 'गुफ़्तगू' और 'लहू पुकारता है' जैसी मार्मिक और ख़ूबसूरत नज़्में लिखीं। ये नज़्में सौहार्द और परदुःखकारता की पवित्र भावनाओं की बिना पर पूरे देश में गूँज उठीं। सरदार जाफ़री 'पैराहने शरर' के हर्फ़े अव्वल में इन नज़्मों के हवाले से लिखते हैं :

> ''मैंने बीस बरस की शाइराना ज़िंदगी में इससे अच्छी नज़्में भी कही हैं, पुरसुकून ज़माने में भी और तूफ़ानी दौर में भी, मेरी किसी नज़्म का इतना शानदार स्वागत नहीं हुआ। इस तजुर्बे ने मेरे यक़ीन और हौसले को बढ़ाया है। मैं अपने मुल्क की सेहतमंद लोकतांत्रिक परंपराओं पर फ़ख्र करता हूँ।''[2]

'कौन दुश्मन है' का यह बंद देखिए :

अभी तो सुबह की पहली हवाएँ सनकी हैं
अभी शगूफ़ों ने खोली नहीं है आँख अपनी

1. *अली सरदार जाफ़री नंबर*, 'अफ़कार' कराची, पृ. 86
2. *कुल्लियाते जाफ़री*, भाग दो, पृ. 330

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अभी बहार के लब पर हँसी नहीं आई
न जाने कितने सितारे बुझी-सी आँखों के
न जाने कितने .फ़सुर्दा[1] हथेलियों के गुलाब
तरस रहे हैं अभी रंगो-रोशनी के लिए
हमारे पास है क्या दर्दे-मुश्तरक[2] के सिवा
मज़ा तो जब था कि मिलकर इलाजे-जाँ करते
ख़ुद अपने हाथ से तामीर गुलिस्ताँ करते
हमारे दर्द में तुम और तुम्हारे दर्द में हम
शरीक होते तो फिर जश्ने-आशियाँ करते

यही वह ज़माना था, जब सरदार जाफ़री ने पार्टी की सदस्यता छोड़ दी और लिखने-पढ़ने के कामों और त्रैमासिक 'गुफ़्तगू' के संपादन-प्रकाशन में उनकी व्यस्तता और ज़्यादा बढ़ गई थी। 1967 में उन्हें पद्मश्री का अलंकरण प्रदान किया गया और भारत सरकार के संस्कृति विभाग ने एमरिटस फ़ेलौशिप से सम्मानित किया गया। उन्हें प्रगतिशील लेखक संघ (उर्दू) का अध्यक्ष भी बनाया गया। ग़ालिब, इक़बाल, मीर तक़ी 'मीर' और संत कबीर पर उनकी जो किताबें (भूमिकाएँ) आईं, उनमें मार्क्सवाद के सिद्धांत निरूपण और संकीर्णतावाद के बजाय एक संतुलित दृष्टिकोण प्राप्त होता है। यहाँ अपनी विचार-दृष्टि में प्रकृति के नियमों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति भी बढ़ती दिखाई देती है। अब मानवमैत्री का अपेक्षाकृत एक ज़्यादा वैज्ञानिक और बहुआयामी दृष्टिकोण अपने सामने रोशन होने लगता है। दृष्टिकोण के इस परिवर्तन ने धीरे-धीरे ही सही, उनके रचनात्मक सरोकारों को भी प्रभावित किया। अब वे सामयिक परिस्थितियों को सीधे-सपाट रूप में व्यक्त करने से गुरेज़ करते हैं। इसके बरअक्स वे इन परिस्थितियों के प्रभावों और अक्सों को सांकेतिक रूप से व्यक्त करने की कोशिश करते हैं। इसके चलते उनकी कुछ नज़्मों में अमूर्तन की छाया दिखाई देने लगती है। इस तरह उनकी सर्जनात्मक कला के अर्थबोध का एक नया पहलू पैदा होता है। जैसे उनकी नज़्में 'ख़ामुशी', 'आबला पा' और 'अमानते-ग़म' वग़ैरह। नज़्म 'ख़ामुशी' देखिए :

ख़ामुशी ख़्वाब भी है
दर्द का एहसास भी है
शम्अ भी दिल के अँधेरे के लिए
हर्फ़ जो लब से तराशे न गए
ज़ायक़ा जिनका ज़बान ने कभी चखा ही नहीं
बुलबुलें हैं जो तमन्ना के चमनज़ारों में
रंग आएगा तो मसरूफ़ तरन्नुम होंगी
आज वो हर्फ़ हैं बस हर्फ़ ही हर्फ़

1. उदास, 2. साझा दुःख

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ना तराशीदा [1]-ओ-ना फ़र्मूदा [2]
रूह के तार पे मिज़राब [3] का रक़्स
शौक़ का नग़मा-ए-बे-सौतो-सदा [4]

यह नज़्म ख़ुद एक तराशी हुई शे'री इकाई है। ख़ामोशी अकेलेपन की एक कैफ़ीयत है। एक अनुभव है जिसे शाइर एक नाम दे रहा है। निश्चय ही यह एक संवेदनशील व्यक्ति की ख़ामोशी है। बेशक जिस अप्रस्तुत विधान (उपमाओं और प्रतीकों) के माध्यम से शाइर ख़ामोशी को बयान करना चाहता है, वह ग़ज़ल विधा के बहुत समीप है। इसलिए ख़ामोशी की नाजुक और रहस्यपूर्ण अनुभूति को सांकेतिकता के सहारे ही व्यक्त किया जा सकता है। यह गूढ़ इमेजरी पाठक के बोध को सक्रिय करके एक ऐसे नग़मे में तल्लीन कर देती है जिस नग़मे को गाया ही नहीं गया। शम्अ, बुलबुलें, चमनज़ार, रंग (बहार), तरन्नुम, नग़मए-बेसौत—ये तमाम शब्द और पद ग़ज़ल की बारीकी और नर्मख़याली से ग्रहण किए हैं और ख़ामोशी की मुखरता दिखाने के लिए इनका बहुत ही सटीक प्रयोग किया है। इसका उद्देश्य एक जटिल अनुभव को ज़्यादा-से-ज़्यादा संप्रेषणीय बनाना था। जबकि जदीदी (आधुनिकतावादी) शाइर अपने काल्पनिक या वास्तविक अनुभवों को जटिल और रहस्यात्मक बनाने के लिए पहेलीनुमा इमेजरी (Baffling Images))का इस्तेमाल करते हैं। जाफ़री ने 'ख़ामुशी' और इस तरह की अन्य नज़्मों में संप्रेषण के एक भिन्न रास्ते को अख़्तियार किया है। दरअसल सर्जनात्मक अभिव्यक्ति का यही वह रास्ता था जिस पर चलकर जाफ़री अपनी कुछ नज़्मों में मनुष्य की नियति के हवाले से दार्शनिक चिंतन की दिशा की ओर आगे बढ़े हैं।

सरदार जाफ़री की इस युग की शाइरी में एक और रुझान जो नुमायाँ हुआ, वह है अंतरराष्ट्रीयतावाद। मनुष्य की नियति और उसकी समस्याओं से वैश्विक धरातल पर आकर जुड़ने का भाव। यह सही है कि साम्यवादी विचारधारा में भी इस भाव की अहमियत रहती है। विश्वशांति के आंदोलन में भी इसकी भूमिका असंदिग्ध है। लेकिन वहाँ मैत्री और एकता के सरोकारों का केंद्र सर्वहारा वर्ग था जबकि दुनिया के अवाम सिर्फ़ सर्वहारा और बुर्जुआ वर्ग में ही विभाजित नहीं रहे हैं। रंग और नस्लभेद एवं धार्मिक फूटवाद ने एक ओर शोषण और उत्पीड़न के रास्ते खोले हैं तो दूसरी ओर मनुष्य और मनुष्य के बीच ऐसी दीवारें भी खड़ी कर दीं जिन्हें राजनीतिक नज़रिए और लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ भी तोड़ नहीं सकीं। फिर कुछ ऐसे कष्ट और विपत्तियाँ होती हैं जो नस्लों और वर्गों की क़ैद से बाहर होती हैं। सारी इंसानी बिरादरी के दुःख-दर्द को अपनाने के इस रुझान का कारण यह भी हो सकता है कि सरदार जाफ़री के कवि-मानस पर संत कबीर, मीराबाई और अन्य मानवतावादी रचनाकारों का प्रभाव गहरा होता जाता है। नज़्म 'तीन शराबी' में इंसानी भाईचारे का जज़्बा हावी रहता है। नज़्म में मास्को के एक शराबख़ाने में अपनी भिन्न धार्मिक पहचान रखनेवाले लोग जब खुलकर मिलते हैं, अपनी तनहाई और बेगानगी के कवच से बाहर निकलते हैं तो वे आपसी प्रेम और मानवीय ऐक्य के भाव से ओत-प्रोत नज़र आते हैं :

---

1. बग़ैर तराशे हुए, 2. न कहे हुए, अकथ, 3. सितार बजाने का छल्ला, 4. बिना आवाज़ का नग़मा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इश्को तरब[1] की मेहबूबाएँ
नश्शए-मै की दोशीज़ाएँ
हाफ़िज़ो-ग़ालिब की ग़ज़लें
पुश्किन और टैगोर की नज़्में
कितनी शीरीं और लैलाएँ
कितने राँझे कितनी हीरें,
मशरिक़ों-मग़रिब [2] की तक़दीरें
हल्क़ा बाँधे नाच रही थीं
मैंने उस नाज़ुक लम्हे में रूहे बशर को नाज़ाँ[3] देखा
प्यार का जज़्बा रक़्साँ[4] देखा
सारे जहाँ को ख़ंदाँ[5] देखा

इस युग में जाफ़री ने नज़्मों के अलावा ग़ज़लें भी बहुत लिखी हैं। इसका कारण शायद यह है कि युद्ध के महाविनाश के प्रभाव से उनके भीतर जो नई चेतना उत्पन्न हुई थी और युद्ध की पृष्ठभूमि में मानवीय रिश्तों की जो नए सिरे से उन्होंने तलाश शुरू की थी, इसके लिए ग़ज़ल का गेय फ़ॉर्म बहुत उपयुक्त था। निस्संदेह यह उनके सफ़र की एक नई मंज़िल थी। एक ग़ज़ल के चंद अशआर देखिए :

लेकर फिर क़ंदीले मुहब्बत उतरो दिल के अँधेरे में
रूह की तारीकी को रोशन करती नहीं सूरज की किरन
काबा-ए-दिल में बैठे हैं अब सदियों के .फ़सूर्दा बुत
रंगो-नस्लो-शेख़ो-बिरहमन, मज़हबो-मिल्लतो-मुल्को-वतन
ये दुनिया गुमराह है अब तक फिर बोलो ऐ संत कबीर
एक ही सोने के सब गहने हैं, एक ही मिट्टी के बर्तन
एक ही नूर है सब शोलों में, एक ही रस सब मेवों में
अपने मुँह को मीठा कर लो, कर लो आँखों को रोशन
एक परिस्ताँ की सब परियाँ एक गुलिस्ता के सब फूल
नीले-नीले, पीले-पीले, ऊदे-ऊदे पैराहन

पूरी ग़ज़ल पर एक ही मूड तारी है, वह है मानवमात्र की एकता का भाव।

दूसरी ग़ज़लों में भी शाइर का यही अनुभव नए प्रतीकों के माध्यम से सामने आता है। कुछ शे'र देखिए :

ये ज़मीं मेरी ज़मीं है, ये .फ़लक मेरा .फ़लक है
इन्हें सैद कर चुकी हैं, मिरे फ़िक्र की कमंदें
ज़ख़्मी सरहद, ज़ख़्मीं क़ौमे, ज़ख़्मी इनसाँ ज़ख़्मी मुल्क

1. हर्ष, ख़ुशी 2. पूर्व और पश्चिम 3. गौरवान्वित 4. नृत्य में लीन, 5. आह्लादित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हर्फ़े हक़ की सलीब उठाये कोई मसीह तो आए अब
सिपाहे-दुश्मने-इनसानियत क़रीब आई
दयारे-हुस्न सरे रहगुज़र की ख़ैर मनाओ
चली है आतिशो-आहन [1] के दिल से बादे-समूम [2]
चमन के जल्वए-गुलहाएतर की ख़ैर मनाओ

एक और नज़्म है 'शऊर' जिसमें नये प्रतीकों के ज़रिए नई छवियों को उकेरा गया है। यहाँ शाइर विश्वदृष्टि और भ्रातृत्व की भावना से संपन्न होकर सोच के नए आयामों पर पहुँचता दिखाई देता है। वह अपनी वैज्ञानिक दृष्टि और इतिहास-चेतना से कहीं भी दूर नहीं होता। लेकिन इस सृष्टि में मानवीय अस्तित्व की अर्थवानता की खोज में ज़रूर डूबा रहता है। जीवन और मृत्यु के शाश्वत प्रश्न भी अब उसे उद्वेलित करते हैं। आख़िर मनुष्य की संस्कृति और उसके द्वारा अर्जित ज्ञान-विज्ञान के कारवाँ किस दिशा में आगे बढ़ रहे हैं? उनकी मंज़िल क्या है? इन प्रश्नों पर सोच-विचार करती हुई जाफ़री की इन नज़्मों की बनावट बहुत प्रतीकात्मक है। इन रचनाओं में पाठक एक नए प्रतीक-विधान से परिचित होता है :

ये मशरिक़ो-मग़रिब शुमालो-जुनूब [3] पस्तो-बुलंद
लहू में ग़र्क़ हैं और शशजहात [4] का आहंग [5]

ज़मीं के पैंग तुलूए-नुजूमो-शम्सो-कमर [6]
ग़ुरूबे-शाम [7] ज़वाले-शबो-नुमूदे-सहर [8]

तमाम आलमे-रा'नाई, बज़्मे-रा' नाई
कँवल की तरह खिले हैं लहू की झीलों में
मैं इक नुक़्ता सरे कायनात वहमो-शऊर

मैं एक क़तरा अनलबहर [9] है सदा मेरी
मैं कायनात में तनहा हूँ आफ़ताब की तरह
मिरे लहू में रवाँ वेद भी हैं क़ुरआँ भी
शजर [10] हजर [11] भी हैं, सेहरा भी हैं गुलिस्ताँ भी
कि मैं हूँ बारिसे-तारीख़े-अस्र इंसानी
क़दम-क़दम पे जहन्नुम, क़दम-क़दम पे बहिश्त

दृष्टि और कला का यही रूप सरदार जाफ़री की इस दौर की दूसरी नज़्मों में विद्यमान है। मिसाल के तौर पर 'आबला पा', 'मेरा सफ़र', 'बरहना फ़क़ीर', 'अमानते-ग़म' और अनेक छोटी नज़्मों के नाम लिए जा सकते हैं। इन नज़्मों को पढ़कर साफ़ मालूम होता है कि जिस तरह एक आलोचक के रूप में उन्होंने प्रगतिशील साहित्य से लेकर इक़बाल और

---

1. आग और पत्थर, 2. ज़हरीली हवा, 3. पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, 4. तमाम दुनिया, 5. आवाज़, 6. तारों, सूर्य और चंद्रमा का उदय, 7. शाम का ढलना, 8. रात का बीतना और सुबह का होना, 9. मैं समुद्र हूँ, 10. पेड़, 11. पत्थर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

'पैग़ंबराने सुख़न' तक अपनी पहुँच बनाई, उसी तरह एक सुख़नवर के रूप में उन्होंने बुलंद और जोशीले लहजे से शुरुआत करके एक नर्म, ठहरे हुए और व्यंजनापूर्ण लहजे तक का मुश्किल रास्ता तय किया।

'मेरा सफ़र' में कहते हैं :

मैं एक गुरेज़ाँ लम्हा हूँ
अय्याम[1] के अफ़्सूँ ख़ाने[2] में
मैं एक तड़पता क़तरा हूँ
मसरूफ़े-सफ़र जो रहता है
माज़ी की सुराही के दिल से
मुस्तक़बिल के पैमाने में

प्रो. ज़ाहिदा ज़ैदी ने कलात्मक परिष्कार की दृष्टि से 'मेरा सफ़र' नज़्म को जाफ़री की सर्जना का शिखर कहा है। इसमें मानवीय जीवन को सेहरा के सफ़र से ताबीर किया गया है और बकौल प्रो. ज़ैदी इंसान को वक़्त का मेहमान बताया गया है। यह सफ़र तरह-तरह की आज़माइशों के साथ-साथ सुखद क्षणों के रास्तों से होकर गुज़रता है। उच्चाशय कल्पना और अनुभूति की तीव्रता से नज़्म में ग़ज़ब की रवानी पैदा कर दी गई है जो पाठक को अपने साथ बहा ले जाती है।

शाइर इसी सफ़र को दर्द का सेहरा और धूप का जंगल कहता है। वह देखता है कि हर ख़्वाब के नेज़े पर ख़्वाबों का गुलिस्ताँ है। वह सदियों से क़ाफ़िलों की घंटियों की आवाज़ सुनता है। नज़्म का अंतिम बंद देखिए :

फूलों कटोरों में
शबनम की गुलाबी है
और बादे-सहरगाही
बदमस्त शराबी है
कल सुबह के दामन में
तुम होगे न हम होंगे
बस रेत के सीने पर
कुछ नक़्शे-क़दम होंगे
साए में दरख़्तों के
फिर लोग बहम होंगे
किस देस से आते हैं
किस देस को जाना है
ऐ वक़्त के मेहमानो

---

1. काल, समय 2. जादूघर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऐ शम्ए-तमन्ना पर
जलते हुए परवानो!
ऐ सोख़्ता सामानो[1] *!*

नज़्म की संरचना एक सौंदर्यात्मक अन्विति और वैचारिक इकाई में ढली नज़र आती है तो पाठक के दिलो-दिमाग़ पर दीर्घकालिक प्रभाव छोड़ जाती है। डॉ. मुहम्मद अली सिद्दीक़ी का यह विचार भी सच्चाई के बहुत निकट है कि सरदार अंतिम दौर की शाइरी में जनांदोलनों और राजनीतिक सक्रियता से सचेत रूप से बचाव करने के कारण ज़्यादा मिठास भरे और मख़मली डिक्शन की तरफ़ आ गए। लिखते हैं :

> ''सरदार जाफ़री ने 'लहू पुकारता है' में शामिल 1956 की शाइरी के बाद ही 'जोश' के प्रभाव से बाहर निकलने की कामयाब कोशिश की। यही वह मोड़ है जब उनके यहाँ उपमाओं की जगह प्रतीकों और तथ्यात्मकता की जगह सांकेतिकता का समावेश बढ़ता जाता है। 'नवंबर मेरा गहरवारा' जो शायद अभी तक अधूरी है, इस दायरे को पूरा करती है। मेरा ख़याल है कि सरदार जाफ़री ने इस अर्से में पाब्लो नेरूदा और भक्ति आंदोलन के कवियों का सबसे ज़्यादा असर क़ुबूल किया है।''[2]

सच तो यह है कि सरदार जाफ़री की जो शाइरी सक्रिय राजनीति के प्रभाव में सामने आई, वह जोशीले लहजे के बावजूद सांकेतिक डिक्शन से ख़ाली नहीं है। जाफ़री ने एक जगह संस्कृत काव्यशास्त्र के रस, सिद्धांत पर विचार करते हुए लिखा है कि क्रोध और जुगुप्सा की भी आला शाइरी में जगह है। घृणा का प्रचार सही न हो, लेकिन इंसान की ज़िंदगी और शाइरी—दोनों में क्रोध, प्रतिरोध और क्षोभ एक मुक़ाम रखते हैं। उन्होंने लिखा है कि *महाभारत* और फ़िरदौसी के *शाहनामा* में भी इन रसों की कमी नहीं है। यही सूरते हाल प्रगतिशील साहित्य की है। जो रचनाकार इन स्थायी भावों की अभिव्यक्ति में सर्जनात्मक कौशल से काम लेते हैं, वहाँ वे सफल होते हैं वरना इश्क़िया शाइरी हो या प्रतिरोधात्मक, वह भावनात्मक उत्तेजना (Sensationalism) की हद से आगे नहीं बढ़ पाती। इस कोण से देखें तो सरदार जाफ़री की बाज़ लंबी कविताएँ मसलन 'नई दुनिया को सलाम' और 'एशिया जाग उठा' में ऐसे अंश (बंद) कम नहीं हैं जो शाइर के सतत् सर्जनात्मक रवैये की वजह से श्रेष्ठ कविता का नमूना बन गए हैं, जो सृष्टि के व्यापक परिप्रेक्ष्य में मनुष्य के सनातन संघर्ष को सामने लाते हैं। मसलन यह बंद देखिए :

ये आदमी की गुज़रगाह शाहराहे-हयात[3]
हज़ारों साल का बारे-गिराँ[4] *उठाए हुए*
गुज़रते वक़्त के गर्दो-गुबार के नीचे

---

1. वे जिनके दिलों में आग है
2. *अली सरदार जाफ़री नंबर,* 'अफ़्कार', कराची, पृ. 470
3. जीवन का राजमार्ग, 4. भारी बोझ,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हसीन जिस्म की ताबिंदगी छुपाए हुए
गुज़िश्ता दौर की तहज़ीब की मनाज़िल[1] *को*
जवान माँ की तरह गोद में सुलाए हुए
नए उफ़क़ से नए क़ाफ़िलों की आमद है
चिराग़े-वक़्त की रंगीन लौ बढ़ाए हुए
बग़ावतों की सिपह, इनक़िलाब के लश्कर
ज़मीं पे पाँव, फ़लक पर नज़र जमाए हुए

कुल्लियात (समग्र) के अवलोकन के बाद यह तथ्य मेरे सामने आया कि इक़बाल और 'जोश' के बाद बीसवीं सदी जिन बड़े शाइरों को क़ुदरत ने उच्च कोटि की प्रतिभा और सहृदयता प्रदान की, उनमें अली सरदार जाफ़री का नाम प्रथम पंक्ति में आता है। संभव है इस बात में विरोधाभास नज़र आए लेकिन मेरा ख़याल है कि रचनात्मक तेजस्विता की दृष्टि से उनके नामवर समकालीनों में फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, अख़्तरउल ईमान, फ़िराक़ गोरखपुरी और अहमद नदीम क़ासमी से ही उनकी तुलना की जा सकती है। हालाँकि इनमें से हर एक की निजी पहचान है। अपना ख़ास रंग है। इनकी प्रेरणाएँ और सोच भी भिन्नता लिए हुए हैं। यह भी हुआ है कि इनकी शाइरी पर एक-दूसरे के रंगों की छाया भी पड़ती रही है। किसी ने सीधे चलते हुए लंबी दूरी तय कर ली और कोई ऊर्ध्वमुखी होकर ज़्यादा ऊँचाइयों पर पहुँच गया। किसी ने अपनी शाइरी के मुहावरे को एक ख़ास दायरे में सुरक्षित रखने की कोशिश की तो किसी ने (जाफ़री ने) अपने मुहावरों और सरोकारों का दायरा नित नए अनुभवों की आँच में और ज़्यादा विस्तृत बनाया और ऐसा करते हुए अपनी पहचान को खोने का ख़तरा भी मोल लिया। सरदार जाफ़री ने अपने नामवर समकालीन रचनाकारों के साथ चलते हुए बीसवीं सदी की उर्दू शाइरी को नई मंज़िलों और नई ऊँचाइयों पर पहुँचाने का दायित्व निर्वाह किया।

---

1. मंज़िल का बहुवचन।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सादिक़

सरदार कहाँ है महफ़िल में

सरदार जाफ़री की आँखों में देश और दुनिया को हसीन से हसीनतर बनाने के सपने थे। वे उम्रभर अपने सपनों को साकार करने का प्रयत्न करते रहे। उन्हें अपने बाद आने वाली पीढ़ी और ज़माने से बड़ी उम्मीदें थीं। अपनी एक नज़्म में उन्होंने लिखा है :

कल के दिन, हम न होंगे मगर
ज़िंदगी मुस्कुराती रहेगी
अपनी शमएँ जलाती रहेगी

और हम देखते हैं कि ज़िंदगी द्वारा रोशन की गई शमओं में उनकी कल्पनाओं, उनके विचारों और उनकी रचनाओं की रोशनी भी शामिल है। वे फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ और फ़िराक़ गोरखपुरी के बाद उर्दू के एक महत्त्वपूर्ण और बड़े शाइर माने जाते हैं। एक उत्कृष्ट शाइर ही नहीं बल्कि नाटककार, आलोचक, विचारक और प्रगतिशील आंदोलन के एक सक्रिय मार्गदर्शक की हैसियत से भी उन्हें हमेशा याद रखा जाएगा।

सरदार जाफ़री का जन्म 26 नवंबर 1913 को हिमालय के दामन में बसे बलरामपुर के एक संपन्न परिवार में हुआ था। उनके दादा सैयद मेहदी हसन रियासत बलरामपुर के मैनेजर थे। सरदार जाफ़री के पिता सैयद जाफ़र तय्यार भी इसी रियासत के शस्त्रागार के आला-अफ़सर थे। अंग्रेज़ों के वफ़ादार राजा की इस रियासत की गणना उन दिनों उत्तर प्रदेश की सबसे संपन्न रियासतों में होती थी। सरदार जाफ़री कहते हैं कि बलरामपुर के बाहर की दुनिया हमारे लिए कोई मायने नहीं रखती थी। यहीं बच्चे पैदा होते थे। जवान होते थे। बलरामपुर के स्कूल के बाद अलीगढ़ में तालीम हासिल करते थे, फिर शादी हो जाती थी और रियासत में मुलाज़िमत मिल जाती थी। ...मैं जिस घराने में पैदा हुआ, वह बेहद मज़हबी मगर साथ ही उदारवादी था। इसलिए हमलोग ईद-मुहर्रम के साथ दशहरा दिवाली भी मनाते थे।

सरदार जाफ़री की आरंभिक शिक्षा परंपरागत तौर पर घर में ही हुई। छह-सात वर्ष की उम्र में उन्हें लखनऊ के एक मदरसे में

जन्म : 1943। उर्दू-हिंदी कवि एवं रचनाकार। म.प्र. साहित्य परिषद् द्वारा ग़ालिब अवार्ड से पुरस्कृत। *दस्तख़त, सिलसिला, तरक़्क़ी पसंद तहरीक और उर्दू अफ़साना* और *अदब के सरोकार* चर्चित पुस्तकें। संपर्क : ए-जी-1/47-सी, विकासपुरी, नई दिल्ली 110018;
मो. 9818776459

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दाख़िल करा दिया गया ताकि वे वहाँ अरबी-फ़ारसी, इतिहास, धर्मशास्त्र, तर्क और नीति, दर्शन वग़ैरह पढ़-लिखकर 'मौलाना' बन सकें, लेकिन सरदार जाफ़री ने उस मदरसे के माहौल, परिवेश और तालीम को स्वीकार नहीं किया। वे कुछ दिनों बाद वहाँ से भागकर अपने घर वापस आ गए। जब दो-तीन बार ऐसा होता रहा तो पिता ने इसकी वजह पूछी। सरदार ने साफ़-साफ़ कह दिया कि वहाँ मेरा दिल नहीं लगता है। मैं इसकी बजाय अंग्रेज़ी पढ़ना चाहता हूँ। अब्बाजान और घर के अन्य लोगों ने उन्हें समझाने की कोशिश की लेकिन सरदार जाफ़री नहीं माने और आख़िरकार उनकी बात मान ली गई।

सरदार जाफ़री ने हाई स्कूल तक की शिक्षा बलरामपुर में ही प्राप्त की। इसी दौरान घुड़सवारी करने और शिकार खेलने के साथ ही शायरी करने और कहानियाँ लिखने लगे। इसी ज़माने में आगरा से प्रकाशित होनेवाले एक साप्ताहिक 'अल-नासिर' में एक नामी-गिरामी मौलाना साहब का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसमें विधवा विवाह का विरोध किया गया था। सरदार जाफ़री ने भी यह लेख पढ़ा, उन्हें मौलाना का दृष्टिकोण बिलकुल पसंद नहीं आया। उन्होंने मौलाना साहब के उस लेख के विरोध में एक तेज़-तर्रार मज़मून लिखकर उसी पत्रिका में छपने के लिए भेज दिया। जब यह लेख प्रकाशित हुआ तो मौलाना साहब भन्ना गए। फिर क्या था ? मौलाना साहब और सरदार जाफ़री के बीच लेखों द्वारा विचार-युद्ध आरंभ हो गया। दोनों ने एक-दूसरे के विचारों के खंडन में बहुत कुछ लिखा। यह सिलसिला थमते न देख आख़िर मौलाना साहब सरदार जाफ़री से तर्क-वितर्क करने और किसी तरह इस सिलसिले को ख़त्म करने की ग़रज़ से बलरामपुर गए और सरदार जाफ़री की तलाश करते हुए उनके घर तक जा पहुँचे। वहाँ यह देखकर हैरान रह गए कि जिस व्यक्ति के साथ वे इतने दिनों से अत्यंत गंभीरतापूर्वक शब्द-युद्ध करते रहे हैं, वह कोई आलिमे-दीन या कोई प्रतिष्ठित प्रौढ़ व्यक्ति नहीं बल्कि निकर पहनकर स्कूल जानेवाला एक साधारण लड़का है।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद सरदार जाफ़री को मज़ीद तालीम हासिल करने के लिए अलीगढ़ भेज दिया गया। पिता की ख़्वाहिश थी कि बेटा वहाँ पढ़-लिखकर डॉक्टर या बैरिस्टर बने। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के माहौल में सरदार जाफ़री का जी भी ख़ूब लगा। पढ़ाई के साथ-साथ कहानियाँ लिखने और शायरी करने का शौक़ भी बढ़ता रहा। अब साहित्यिक विषयों पर समीक्षाएँ भी लिखने लगे। 'नौजवानों के अदबी रुझानात' शीर्षक उनका चर्चित लेख उन्हीं दिनों की यादगार है। इस लेख में रूढ़िवादी समकालीन रचनाओं की कटु आलोचना करते हुए नए रुझान को स्वीकार करने का आह्वान किया गया था।

यह वह समय था, जब भारत का स्वतंत्रता आंदोलन अपने शबाब पर था। प्रगतिशील लेखक संघ की बुनियाद पड़ चुकी थी। विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यकार एक नज़रिये के साथ जुड़ रहे थे। सरदार जाफ़री वक़्त के तक़ाज़ों को समझने लगे थे। अलीगढ़ विश्वविद्यालय में उन्हें इंक़िलाबी विचारों से ओतप्रोत कई शिक्षक और साथी छात्र मिल गए, जिनमें मजाज़ लखनवी, हयातुल्लाह अंसारी, सआदत हसन मंटो, ख़्वाजा अहमद अब्बास, शाहिद लतीफ़ और सिब्ते हसन इत्यादि भी थे। सरदार जाफ़री इनके साथ पूरे जोशोख़रोश के साथ स्वतंत्रता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संग्राम में शामिल हो गए। विद्यार्थी आंदोलनों में शरीक होने और अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध क्रांतिकारी विचार प्रकट करने के जुर्म में उन्हें विश्वविद्यालय से निष्कासित कर दिया गया।

कुछ समय के बाद सरदार जाफ़री को दिल्ली के ऐंग्लो-अरेबिक कॉलेज में दाख़िला मिल गया। इस बीच उनकी साहित्यिक और राजनीतिक गतिविधियाँ जारी रहीं। दिल्ली विश्वविद्यालय से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के बाद अपने पिता के कहने पर सरदार जाफ़री ने क़ानून की डिग्री हासिल करने के लिए लखनऊ विश्वविद्यालय में दाख़िला ले लिया और एल.एल.बी. की पढ़ाई शुरू कर दी।

सरदार जाफ़री को यहाँ भी अलीगढ़ की तरह कई इंक़लाबी साथी और दोस्त मिले, जिनमें असरारुलहक़ मजाज़, सिब्ते हसन, हयातुल्ला अंसारी, अली जवाद ज़ैदी, सज्जाद ज़हीर और जी.एल.बंसल वग़ैरह उल्लेखनीय हैं। वे इन दोस्तों के साथ जलसों-जुलूसों में शिरकत करने लगे। इस दौरान उन्होंने एल.एल.बी. करने का ख़याल छोड़कर अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. करने का मन बनाया और प्रथम वर्ष की परीक्षा में कामयाबी भी हासिल की। इसी ज़माने में उन्होंने अपने दोस्तों के साथ मिलकर 'नया अदब' और 'परचम' शीर्षक दो पत्रिकाओं का संपादन भी किया। ये पत्रिकाएँ उन्होंने ख़ुद अपनी कोशिशों से जारी की थीं, जो लंबे समय तक जारी नहीं रह सकीं, किंतु विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी नज़्में और कहानियाँ निरंतर छपती रहीं। उनकी मशहूर नज़्म 'तेरा और मेरा ख़ुदा' उसी ज़माने की यादगार नज़्म है। उन्हीं दिनों देशभक्ति के जज़्बात से लबरेज़ उर्दू नज़्मों का एक महत्त्वपूर्ण संकलन *आज़ादी की नज़्में* प्रकाशित हुआ। उसमें शाइरे-इंक़िलाब जोश मलीहाबादी की ऐतिहासिक नज़्म 'ईस्ट इंडिया के फ़र्ज़ंदों के नाम' के साथ सरदार जाफ़री की एक नज़्म 'फ़ौजी भर्ती' भी चर्चा का विषय बनी। इस नज़्म में युद्ध का विरोध करते हुए साम्राजी हुकूमत की नीतियों पर तीखा प्रहार किया गया था। परिणामत: यह पुस्तक ज़ब्त कर ली गई।

उसी वर्ष सरदार जाफ़री की कहानियों का संकलन *मंज़िल* प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक के प्राक्कथन में लेखक ने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि हम सब एक इंक़िलाबी दौर से गुज़र रहे हैं। हमारी नज़रों के सामने एक ऐसी दुनिया है जो मौजूदा दुनिया से बहुत मुख़्तलिफ़ है। हमें वहाँ तक पहुँचना है। हम सब 'अँधेरी रात के मुसाफ़िर' हैं, जो विरोधों के घोर अँधेरों में अमल के जोश की शमा लिए हुए आगे बढ़ते जा रहे हैं।

मंज़िल में सरदार जाफ़री की सारी कहानियाँ शामिल नहीं हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण कहानियाँ जैसे 'ग्लीना' और 'चेहरो माँझी' आज भी पुरानी पत्रिकाओं में दफ़्न हैं। इनमें से पहली कहानी युद्ध की पृष्ठभूमि में लिखी गई है, जिसमें युद्ध से उत्पन्न होनेवाली उन हौलनाक परिस्थितियों का चित्रण किया गया है, जो हमारे समाज के एक बड़े वर्ग को प्रभावित कर रही थीं जबकि यह वर्ग युद्ध और उसके कारणों से बिलकुल अनभिज्ञ था। 'चेहरो माँझी' भी एक उल्लेखनीय कहानी है। (जिसे ख़ुद सरदार जाफ़री ने रिपोर्ताज कहा है) बंगाल के अकाल की पृष्ठभूमि में लिखी गई इस कहानी में लेखक ने कई अनकही हक़ीक़तों की तरफ़ इशारा करके अपने पाठकों को बहुत कुछ सोचने के लिए प्रेरित करने का प्रयत्न किया है। बूढ़े मछेरे का एक संवाद प्रस्तुत है :

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''जब से लड़ाई शुरू हुई है ग़रीबी और बढ़ गई है। पहले अकाल पड़ा, फिर बीमारियाँ फैलने लगीं। ऐसी बीमारियाँ और ऐसा अकाल तो मैंने कभी देखा नहीं था हैज़ा और फिर काला बाज़ार। फिर बदचलनी... लड़के आवारा हो गए... लड़कियाँ घर-बार छोड़कर चली गईं। अब लड़के निरुत्साह हो गए हैं और लड़कियाँ भी ज़्यादा बेशर्म हो गई हैं। सिपाही उन्हें रुपया देते हैं और वो सिपाहियों को...'' ('चेहरो माँझी')

सरदार जाफ़री की इंक़लाबी विचारधारा को समझने के लिए शुरुआती दौर में लिखी गई उनकी कहानियाँ भी अपना महत्त्व रखती हैं। इनमें ग़ुलाम हिंदुस्तान के मेहनतकश तबक़े के जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है और दबे-कुचले शोषितों के साथ लेखक की सहानुभूति साफ़ नज़र आती है।

अपने विद्यार्थी जीवन के इस दौर में सरदार जाफ़री न केवल विश्वविद्यालय और लखनऊ शहर, बल्कि पूरी उर्दू दुनिया में अपनी पहचान बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। एम.ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा में वे कामयाबी हासिल कर चुके थे। बेहद व्यस्तताओं के बावजूद वे एम.ए. फ़ाइनल की परीक्षा की तैयारी भी कर रहे थे। इसी बीच एक ऐसी घटना घटित हुई, जिसने उनकी ज़िंदगी का रुख़ मोड़ दिया। ख़ुद सरदार जाफ़री के शब्दों में :

''यह क़िस्सा यूँ है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के चांसलर सर मौरिस ग्वैयर ने, जो चीफ़ जस्टिस भी थे और गाँधी जी के अच्छे दोस्त भी थे, दो विद्यार्थियों की एम.ए. की डिग्री ज़ब्त करा ली। विद्यार्थियों में उसके ख़िलाफ़ क्रोध की लहर दौड़ गई। देशभर में विरोध प्रकट किया गया। हमने भी उसका साथ दिया। उस वक़्त मैं लखनऊ विश्वविद्यालय की स्टुडेंट यूनियन का जनरल सेक्रेट्री था और जी.एल. बंसल अध्यक्ष।

कुछ समय बाद मौरिस ग्वैयर लखनऊ विश्वविद्यालय के कन्वोकेशन में विद्यार्थियों को संबोधित करने के लिए आनेवाले थे। स्टूडेंट यूनियन ने तय किया कि उन्हें संबोधन नहीं करने देंगे। मौरिस ग्वैयर की कार जैसे ही कैंपस में दाख़िल हुई, हमने उनका घेराव कर लिया। वे बड़े होशियार आदमी थे। हालात की नज़ाकत को देखते हुए कार से बाहर नहीं निकले। अंदर बैठे-बैठे ही हमसे पूछा, 'क्या चाहते हो ?' मैंने कहा, 'आप कन्वोकेशन में शिरकत किए बग़ैर ही लौट जाएँ।' यह सुनकर वे दिल्ली वापस लौट गए।''

इस वाक़िये की सूचना जब गवर्नर को मिली तो वह ग़ुस्से से आगबबूला हो गया। उसने चांसलर को हुक्म देकर सरदार जाफ़री और बंसल—दोनों को मुअत्तल करा दिया। सर मौरिस ग्वैयर के विरुद्ध प्रदर्शन करने के लिए पंफ़लेट्स चूँकि सरदार जाफ़री ने अपने हस्ताक्षर से बाँटे थे, इसलिए उन्हें गिरफ़्तार करके लखनऊ की सेंट्रल जेल में भेज दिया गया। यह घटना 1940 की है।

लखनऊ जेल में सरदार जाफ़री को भगत सिंह के कुछ साथियों से मिलने का अवसर मिला, जो अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ़ ख़ूनी इंक़लाब के हामी थे। उन दिनों सज्जाद ज़हीर भी लखनऊ जेल में क़ैद थे। वे दूसरे वार्ड में थे। जेल के वार्डन की मेहरबानी से दोनों के बीच पत्राचार द्वारा संपर्क स्थापित हो गया। यह सिलसिला ज़्यादा दिनों तक नहीं चल सका, क्योंकि एक दिन सरदार जाफ़री का एक पत्र जेलर के हाथ पड़ गया। उसमें सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ी कवि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जॉन कीट्स का उल्लेख था। जेलर ने समझा कि यह किसी का ख़ुफ़िया नाम है। शक की दवा तो हकीम लुकमान के पास भी नहीं थी, लेकिन जेलर साहब ने इलाज यह किया कि सरदार जाफ़री को लखनऊ जेल से बनारस जेल में भिजवा दिया, जहाँ वे 1941 के अंत तक रहे। उन्हें एम.ए. फ़ाइनल की परीक्षा देने की इजाज़त भी नहीं दी गई। तालीम का सिलसिला यहीं रुक गया। यह और बात है कि बाद में उसी अलीगढ़ विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट्. की मानद उपाधि से सम्मानित किया, जिसने चंद ही वर्ष पहले उन्हें निष्कासित कर दिया था। कुछेक विश्वविद्यालयों ने उन्हें विज़िटिंग प्रोफ़ेसरशिप की ऑफ़र दी और देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों की उर्दू पाठ्य-पुस्तकों में सरदार जाफ़री की रचनाएँ शामिल की गईं।

लखनऊ विश्वविद्यालय में तालीमी, सियासी और अदबी सरगर्मियों के अलावा सरदार जाफ़री की ज़िंदगी का एक अहम और यादगार वाक़िया क्रैंपस की सबसे ख़ूबसूरत लड़की सुलताना के साथ उनकी मुलाक़ात थी, जो धीरे-धीरे दोस्ती से मोहब्बत की हदों में दाख़िल हो गई, लेकिन कुछ अर्से बाद एक ऐसा मोड़ आ गया जहाँ से दोनों के रास्ते बदल गए। सुलताना के घर वालों ने अपने रिश्तेदारों में किसी नौजवान के साथ उसकी शादी तय कर दी जिसकी वजह से दोनों की मुलाक़ातें कम होती गईं और फिर सरदार जाफ़री की गिरफ़्तारी के बाद यह सिलसिला ख़त्म हो गया, लेकिन पहले प्यार की दबी-दबी आँच उनके सीने में सुलगती रही जिसका इज़हार उनकी कई नज़्मों में हुआ।

बनारस की जेल से रिहाई के बाद सरदार जाफ़री कुछ समय के लिए बलरामपुर गए और फिर लखनऊ आ गए। तालीम अधूरी रह जाने का मलाल और भविष्य का ख़याल उन्हें ज़ेहनी तौर पर परेशान कर रहा था। इन मायूसी-भरे हालात में वे सज्जाद ज़हीर के साथ पी.सी. जोशी से मिले तो उन्होंने कहा कि कम्युनिस्ट पार्टी बंबई से एक समाचार-पत्र जारी करनेवाली है। तुम दोनों उसके संपादन का काम सँभाल लो। लिहाजा दोनों ने बंबई आकर 'क़ौमी जंग' के संपादन का काम सँभाल लिया। जिसमें संपादन के साथ-साथ अख़बारी काग़ज़ का इंतज़ाम करने, प्रूफ़ पढ़ने, प्रेस वालों से मामलात करने और दफ़्तर के कमरे की सफ़ाई करने से लेकर पार्टी सदस्यों के साथ बाज़ारों में चीख़-चीख़कर अख़बार बेचने तक की ज़िम्मेदारियाँ शामिल थीं। सरदार जाफ़री ख़ुद लिखते हैं कि इन सारे कामों को अंजाम देते हुए मेरे दिल में समाज को बदलने और एक नया हिंदुस्तान निर्माण करने का जबरदस्त जज़्बा काम कर रहा था। इस दौरान मेरे काम करने की क्षमताओं में इज़ाफ़ा हुआ और जीवन के नए तजुर्बे हुए।

बंबई में सरदार जाफ़री को स्थानीय लोगों के अलावा अलीगढ़ और लखनऊ के कई दोस्त भी मिल गए, जिनमें सिब्ते हसन, ख़्वाजा अहमद अब्बास, शाहिद लतीफ़, सआदत हसन मंटो और सज्जाद ज़हीर वग़ैरह के नाम उल्लेखनीय हैं।

बंबई आने के बाद अपनी समस्त व्यस्तताओं के बावजूद सरदार जाफ़री की क़लम भी ख़ूब चलती रही। नज़्मों और ग़ज़लों के अलावा उन्होंने फ़िल्मी-गीत और नाटक भी लिखे। यहीं उन्हें अपना खोया हुआ प्यार भी मिल गया। हुआ यों कि सुलताना अपने शौहर से तलाक़ हो जाने के बाद बंबई आ गईं जहाँ सरदार जाफ़री से उनकी मुलाक़ात हुई। दोनों के दिलों में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दबी हुई मोहब्बत फिर से जाग उठी। जनवरी 1948 में दोनों ने शादी कर ली। बंबई के बारे में कहा जाता है कि वहाँ आदमी को काम और बीवी तो मिल जाते हैं लेकिन रहने के लिए घर नहीं मिलता। सरदार जाफ़री और सुलताना को भी यही मुश्किल पेश आई, जिसके समाधान के लिए दोनों को काफ़ी समय तक पार्टी कम्यून में रहना पड़ा। यह वह स्थान था, जहाँ पहले युद्धबंदियों को रखा जाता था।

प्रगतिशील लेखकों के यहाँ 'साथी' की जो कल्पना मिलती है, सरदार जाफ़री और सुलताना मिन्हाज उसके साक्षात् उदाहरण थे। दोनों ने ज़िंदगीभर एक-दूसरे का भरपूर साथ दिया। दोनों एक-दूजे से बेहद प्रेम करते थे और एक-दूसरे का बहुत ख़याल रखते थे। दोनों न केवल हमख़याल थे बल्कि पार्टी के कटिबद्ध सदस्य भी थे। सरदार जाफ़री ने कोई नौकरी नहीं की। वे स्वतंत्र लेखन ही करते रहे। सुलताना सोवियत हाउस ऑफ़ कल्चर में सर्विस करती थीं। दोनों का वैवाहिक जीवन तमाम दुःख-सुख के साथ सफलतापूर्वक गुज़रा।

ग़रीब किसानों, मज़दूरों और औरतों के साथ सरदार जाफ़री को हमेशा गहरी हमदर्दी रही, जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कई रचनाओं में हुई है। उसकी जड़ें सरदार जाफ़री के आरंभिक जीवन में तलाश की जा सकती हैं। अपने बचपन के अनुभवों का ज़िक्र करते हुए वे लिखते हैं :

''मेरे ज़मीर पर पहली चोट उस वक़्त लगी जब मैंने ग़रीबी के दृश्य ख़ुद अपनी आँखों से देखे। जिस दिन गाँव में पुलिसवालों ने ग़रीब किसानों पर ज़ुल्म पर ज़ुल्म ढाए। बात यह थी कि बलरामपुर के किसानों ने एक दिन ज़ुल्म के विरोध में प्रदर्शन किया। उसमें गाँव का तहसीलदार मारा गया। बस फिर क्या था। जागीर की पुलिस ने सारे गाँव को अपने क़हर की लपेट में ले लिया और बड़ा ज़ुल्म किया। महिलाओं के साथ बलात्कार भी किया गया। उस वक़्त मेरी उम्र तेरह या चौदह वर्ष थी।''

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जिन लेखकों-कवियों ने भारतीय नारी की मजबूरी और उस पर होनेवाले ज़ुल्म-ज़्यादतियों को अपनी रचनाओं में पेश कर उनके पक्ष में अपनी आवाज़ बुलंद की और उनके अधिकारों के लिए अमली तौर पर भी प्रयत्नशील रहे, उनमें सरदार जाफ़री भी एक महत्त्वपूर्ण हैसियत रखते हैं।

जाफ़री की सात बहनें थीं। इसलिए उन्होंने नारी समस्याओं को और भारतीय समाज में उनकी दयनीय स्थिति को बहुत क़रीब से देखा और महसूस किया था। जेल से अपनी बहन सितारा के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

''मैं बड़ी देर तक सोचता रहा कि मेरी जेल की ज़िंदगी और तुम्हारी घर की ज़िंदगी में क्या फ़र्क़ है ? जितनी पाबंदियाँ मुझ पर हैं उससे कुछ कम पाबंदियाँ तुम पर नहीं, मगर तुम्हें इसकी आदत डाल दी गई है कि घर की चारदीवारी में बंद रहो। तुम्हारे लिए एक नज़्म शुरू की थी जो अभी पूरी नहीं कर सका हूँ। इस नज़्म में यह ख़याल पेश करना चाहता हूँ :

दूर, तुम सबकी निगाहों से, बहुत दूर हूँ मैं
दूर हो मेरी निगाहों से, बहुत दूर हो तुम
तुम समझती हो यहाँ जेल में मजबूर हूँ मैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं समझता हूँ मेरी तरह से मजबूर हो तुम
हाँ, यहाँ क़ैद है, आलाम है, ज़ंजीरें हैं
और वहाँ जिस्म पे, जज़्बात पे ताज़ीरें हैं।''

यही नहीं, जेल से छूटकर घर आने के बाद सरदार जाफ़री ने उन हालात और रूढ़िवादी विचारों और चलन को बदलने के लिए सतत प्रयत्न भी किए। अपने घर-परिवार के बुज़ुर्गों को भी यह अहसास दिलाया कि लड़कियों को पुराने रीति-रिवाजों में जकड़कर रखना न तो इन लड़कियों के लिए उचित है और न ही समाज और मज़हब के लिए। इस तरह उन्होंने लड़कियों की शिक्षा और आज़ादी के लिए रास्ते निकाले। नारी-शिक्षा का विरोध करनेवाले बुज़ुर्गों को समझा-बुझाकर अपनी बहनों को कॉलेज में दाख़िला दिलाया, ताकि अपने भाइयों की तरह वे भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। वे जब कभी बलरामपुर आते तो बहनों को सिनेमा भी ले जाते थे। इस बात से बेपरवाह कि ख़ानदान, मुहल्ले और शहर के लोग उन्हें कैसी नज़रों से देख रहे हैं और उनके बारे में क्या कह रहे हैं।

जेल से अपनी पत्नी सुलताना मिन्हाज के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था कि तुम्हें यह किसने बता दिया है कि बावर्चीख़ाने और खाने का इंतज़ाम करना सिर्फ़ औरत का काम है। यह औरत का पुराना और इंतिहाई बेहूदा तसव्वुर है...औरत और मर्द की बराबरी को ज़बानी सब तस्लीम करते हैं लेकिन अमल में वही दक़ियानूसी रवैया रखते हैं जो हज़ारों बरस से औरत को बारबरदारी का जानवर बनाए हुए है।''

बंबई आने के बाद सरदार जाफ़री की साहित्यिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियाँ काफ़ी तेज़ हो गई थीं। वे जनसभाओं में अपने भाषणों और पत्र-पत्रिकाओं में अपनी रचनाओं और लेखों द्वारा मेहनतकश लोगों को जगाने और बेइंसाफ़ी पर आधारित सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए संघर्ष करने का आह्वान देते रहे। परिणामत: प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन से एक दिन पूर्व 20 जनवरी 1949 को बंबई में उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया। पुलिस द्वारा इस गिरफ़्तारी का कोई कारण नहीं बताया गया। इस सिलसिले में सरदार जाफ़री 12 अप्रैल 1949 को अपनी पत्नी के नाम एक पत्र में लिखते हैं :

''मुझे मालूम नहीं कि मुझे किस जुर्म में पकड़कर जेल में बंद कर दिया है, लेकिन अब सोचता हूँ कि यह जुर्म ही क्या कम है कि मैं मोहब्बत को पाकीज़ा और प्यार को लतीफ़ चीज़ समझता हूँ और इंसानियत की रूह और दिल के ज़ख़्मी होने का मातम कर रहा हूँ। इस समाज में, जिसमें हम रह रहे हैं इंसानियत के बारे में कुछ सोचना भी गुनाह है और इस गुनाह की सज़ा यही है कि हमारी ज़िंदगी क़ैदख़ाने की नज़्र कर दी जाए।''

नासिक जेल से रिहाई के कुछ समय बाद सरदार जाफ़री की नज़्मों का संकलन *पत्थर की दीवार* प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित अधिकतर नज़्में जेल में लिखी गई थीं। समसामयिक विषयों पर लिखी गई इन नज़्मों में कल्पनाओं, विचारों, अनुभवों और अनुभूतियों का दिलकश समावेश पढ़ने और सुननेवालों के ज़ेहनों और दिलों की गहराइयों को छू लेता है। इन नज़्मों की सबसे बड़ी विशेषता वह नई इमेजरी है, जो उर्दू शायरी में किसी और शाइर के यहाँ नहीं मिलती।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पत्तियों की पलकों पर
ओस जगमगाती है
इमलियों के पेड़ों पर
धूप पर सुखाती है
चाँद के कटोरे से
चाँदनी छलकती है
रौशनी के गालों पर
तीरगी के नाख़ून की
सैकड़ों ख़राशें हैं
रोटियों के दाँतों में
रेत और कंकर हैं
चावलों की सूरत पर
मुफ़लिसी बरसती है
तीरगी के काँटों पर
आफ़ताब चलता है

इसी संकलन *(पत्थर की दीवार)* में सरदार जाफ़री की मक़बूलतरीन नज़्म 'अवध की ख़ाक-ए-हसीं' भी शामिल है, जो अपनी तर्ज़ की एक लाजवाब नज़्म है। जेल की कोठरी में क़ैद शाइर बदलते हुए मौसमों के दरमियान अपने दिल की आवाज़ सुन रहा है। माँ के आँचल की छाँव को याद कर रहा है। उसे लगता है मानो अवध की मिट्टी पुकार रही है। उसे अपने बचपन और अँधेरे क़स्बों और गलियों की याद आती है और उनमें रहने-बसनेवाले ग़रीब मेहनतकशों और किसानों की याद आती है।

ये सीधे-सादे ग़रीब इंसान, नेकियों के मुजस्समे हैं
ये मेहनतों के ख़ुदा यह तख़्लीक के पयंबर
जो अपने हाथों के खुरदरेपन से ज़िंदगी को सँवारते हैं
लुहार के घन के नीचे लोहे की शक्ल तब्दील हो रही है
कुम्हार का चाक चल रहा है
सफ़ेद आटा, स्याह चक्की से राग बनकर निकल रहा है
सुनहरे चूल्हों में आग के फूल खिल रहे हैं
पतिलियाँ गुनगुना रही हैं
धुएँ से काले तवे भी चिंगारियों के होंठों से हँस रहे हैं
दुपट्टे आँगन में डोरियों पर टँगे हुए हैं
और उनके आँचल से धानी बूँदें टपक रही हैं
सुनहरी पगडंडियों के दिल पर
स्याह लहंगों की सुर्ख़ गोटें मचल रही हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ये सादगी किस क़दर हसीं है
मैं जेल में बैठे-बैठे अकसर ये सोचता हूँ
जो हो सके तो अवध की प्यारी ज़मीन को गोद में उठा लूँ
और उसकी शादाब लहलहाती हुई जबीं को
हज़ार बोसों से जगमगा दूँ।

समसामयिक कविताओं के साथ अक़सर यह होता है कि कुछ समय गुज़र जाने के बाद वह अपनी अहमियत और दिलकशी खो देती हैं, लेकिन इन नज़्मों के साथ ऐसी बात नहीं लगती। सरदार जाफ़री ने ख़ुद बड़े विश्वास के साथ लिखा है कि इन नज़्मों की ताज़गी और अहमियत उस वक़्त तक बाक़ी रहेगी जब तक जब्रोतशद्दुद (अत्याचार) का मौजूदा-निज़ाम (वर्तमान व्यवस्था) ज़िंदा है और अवाम के दिलों में इसको तब्दील करने की हिम्मत और एक नए और बेहतर निज़ाम को क़ायम करने की उमंग बाक़ी है।

'पत्थर की दीवार', 'अवध की ख़ाक-ए-हसीं', 'नींद' और 'तुम्हारी आँखें' उक्त संकलन की बेहतरीन नज़्में हैं। 'पत्थर की दीवार' में शाइर ने जेलख़ाने की ज़िंदगी को प्रकृति और उसके हुस्न के साथ जोड़कर एक यादगार कृति बना दिया है। 'नींद' शीर्षक नज़्म उन्होंने अपने बच्चे की पहली सालगिरह पर लिखी थी। उस समय वे जेल में क़ैद थे। इस नज़्म में वक़्त और हालात के हाथों एक बेबस बाप के जज़्बात शब्दों के माध्यम से दिल में उतरते महसूस होते हैं।

पत्थर की दीवार का प्रकाशन सन् 1953 में हुआ था। इससे पूर्व उनकी शायरी की पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी थीं। *परवाज़* (1943) उनका प्रथम काव्य-संग्रह है। इसमें सन् 1942 से 1944 तक लिखी हुई नज़्में शामिल हैं। इनमें से अधिकतर बग़ावत और इंक़लाबी विचारों से परिपूर्ण हैं और बाक़ी नज़्मों से इश्क़िया जज़्बात का इज़हार मिलता है। यह ज़ाहिर है कि उम्र का तक़ाज़ा भी है। कहना न होगा कि ऐसी नज़्मों के पीछे लखनऊ विश्वविद्यालय कैंपस की सबसे ख़ूबसूरत लड़की की मौजूदगी स्पष्ट तौर से महसूस की जा सकती है। *परवाज़* में संकलित नज़्मों को उर्दू आलोचकों ने रूमान से इंक़लाब तक के सफ़र की संज्ञा दी है।

ख़ून की लकीर शीर्षक संकलन में सरदार जाफ़री की वह नज़्में संकलित हैं जो उन्होंने 1945 से 1949 के बीच लिखी थीं। इनमें 'मल्लाहों की बग़ावत' और 'साम्राजी लड़ाई' भारत के स्वतंत्रता संग्राम के अंतिम दिनों की यादगार हैं। 'ख़्वाब' शीर्षक नज़्म में आज़ादी का पुरज़ोर स्वागत किया गया है। स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान वतनपरस्तों ने जो ख़्वाब देखा था। आज़ादी मिलने के बाद उसके साकार न होने और टूट जाने का सदमा उनके लिए असहनीय था। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ ने उसे 'दाग़-दाग़ उजाला' और 'शब गज़ीदा सहर' कहा। सरदार जाफ़री ने उसे 'फ़रेब' करार देते हुए स्पष्ट शब्दों में लिखा :

ख़्वाब ज़ख़्मी हैं उमीदों के कलेजे ज़ख़्मी
मेरे दामन में हैं ज़ख़्मों के महकते हुए फूल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ख़ून में लिथड़े हुए
मैं जिन्हें कूचा-ओ-बाज़ार से चुन लाया हूँ
क़ौम के राहबरो! राहज़नो!
तुमने फ़िरदौस के बदले में जहन्नुम लेकर
कह दिया हमसे गुलिस्ताँ में बहार आई है
चंद सिक्कों के एवज़, चंद मिलों की ख़ातिर
तुमने नामूस-ए-शहीदान-ए-वतन बेच दिया
बाग़बाँ बनके उठे और चमन बेच दिया।

रूमान और इंक़िलाब सरदार जाफ़री की शायरी के तानेबाने हैं। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ की शायरी के बारे में भी यही बात कही जाती है, लेकिन उनका रुझान रुमान की तरफ़ ज़्यादा था जो किसी हद तक उनकी कमज़ोरी बन गया (वैसे यह और बात है कि यही कमज़ोरी उनकी ताक़त भी है।) सरदार जाफ़री बहुत अच्छे वक्ता भी थे। उनके तेज़-तर्रार भाषणों और जोशीली नज़्मों की वजह से आमतौर पर उनका उग्र रूप ज़्यादा उभरा और उन्हें इसी रूप में ज़्यादा देखा और पसंद किया गया। उनका यह रूप आज़ादी के बाद भी बरक़रार रहा। देश के बिगड़ते हुए हालात को देखकर उन्होंने ईमानदारी और जुर्अतमंदी के साथ यह कहने से भी गुरेज़ नहीं किया :

साथियो!
अब मेरी उँगलियाँ थक चुकी हैं
और मेरे होंठ दुखने लगे हैं
आज मैं अपने बेजान गीतों से शरमा रहा हूँ
मेरे हाथों से मेरा क़लम छीन लो
और मुझे एक बंदूक़ दे दो!

इस प्रकार की जोशीली और इंक़लाबी नज़्मों की सरदार जाफ़री के यहाँ कमी नहीं, लेकिन यह भी हक़ीक़त है कि उनकी इश्क़िया नज़्में अपनी पाकीज़ा और धीमी जज़्बातियत, रूमानियत और नई इमेजरी के कारण उर्दू की इश्क़िया शायरी में अपनी विशेष पहचान और महत्त्व रखती हैं।

साठ के दशक में एक के बाद एक सरदार जाफ़री की शायरी के तीन संकलन प्रकाशित हुए। सन् 1964 में *एक ख़्वाब और*, उसके एक साल बाद 1965 में *पैराहन-ए-शरर* और 1968 में *लहू पुकारता है*। *एक ख़्वाब और* की भूमिका में उन्होंने लिखा है :

"ख़्वाब और शिकस्त-ए-ख़्वाब इस दौर का मुक़द्दर है। और नए ख़्वाब देखना इंसान का एक ऐसा हक़ है जिससे कोई ताक़त, कोई इक़्तिदार (सत्ता) उसे महरूम (वंचित) नहीं कर सकता और शायद यही इंसान और इंसानियत के मुस्तक़्बिल (भविष्य) की ज़मानत है।"

इन संकलनों की नज़्मों में भी सरदार जाफ़री की शायरी निरंतर अग्रसर नज़र आती है। पहले सरदार जाफ़री का विशेष रुझान नज़्मों की ओर था। ग़ज़लें लिखने से वे गुरेज़ किया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करते थे, लेकिन इन संकलनों में नज़्मों के साथ-साथ ग़ज़लें भी मिलती हैं जिनमें ग़ज़लगोई की परंपरा को बरक़रार रखते हुए सामाजिक सरोकारों पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। इन ग़ज़लों पर शाइर के व्यक्तित्व की छाप गहरी है।

इसी दशक में उनकी दो पुस्तकें *लखनऊ की पाँच रातें* (1965) और *इक़बाल शनासी* (1969) भी प्रकाशित हुईं। *लखनऊ की पाँच रातें* जैसा कि उसके शीर्षक से स्पष्ट है, संस्मरणों पर आधारित है। स्वयं लेखक ने उसके बारे में लिखा है कि यह उस अफ़साने के चंद परेशान टुकड़े हैं, जिसे ज़िंदगी कहते हैं। सन् पचास के दशक में प्रकाशित अपनी बहुचर्चित पुस्तक *तरक़्क़ी पसंद अदब* में उन्होंने इक़बाल की शायरी के ख़िलाफ़ लिखा था। कुछ वर्षों बाद उन्होंने अपने विचारों पर दोबारा ग़ौर किया, जिसके नतीजे में *इक़बाल शनासी* लिखी गई, जो अपने विषय पर एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है।

सरदार जाफ़री ने नाटक लेखन की शुरुआत अलीगढ़ में अपने विद्यार्थी जीवन से की थी। अलीगढ़ विश्वविद्यालय के एक उस्ताद और उर्दू के एक प्रतिष्ठित आलोचक आलेअहमद सुरूर ने लिखा है कि एक बार मुझे उर्दू विभागाध्यक्ष रशीद अहमद सिद्दीक़ी ने अपने डेस्क में से एक ड्रामा निकालकर दिया और कहा कि ज़रा देखिए। मुझे तो इसका अंदाज़ बहुत जानदार मालूम होता है और इसकी भाषा भी प्रभावशाली है। यह अलीगढ़ के एक नवयुवक का लिखा हुआ ड्रामा है। रशीद साहब ने यह भी कहा कि जब मैंने पहली बार यह ड्रामा पढ़ा तो यक़ीन नहीं आया कि यह उस विद्यार्थी का ही लिखा हुआ है। मैंने उसको बुलवाया और उससे पूछा, ''यह तुमने लिखा है ?'' उसने मुझे सुबूत में अपनी कई तहरीरें इसी क़िस्म की लाकर दीं और मुझे यक़ीन हो गया कि यह ड्रामा उसी की तख़लीक़ (रचना) संभवत: उसका शीर्षक 'दीवाने' था।

बंबई आने के बाद सरदार जाफ़री ने इप्टा (इंडियन पीपुल्स थियेटर) के लिए चंद ड्रामों का निर्देशन करने के साथ-साथ ख़ुद भी कुछ ड्रामे लिखे जो देशभर के कई शहरों में मंचित भी हुए। इन नाटकों में लेखक का मार्क्सवादी दृष्टिकोण स्पष्ट नज़र आता है। 'सिपाही की मौत' प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में लिखा गया एक मार्मिक नाटक है। 'यह ख़ून किसका है' में चटगाँव पर जापानियों द्वारा की गई बमबारी की दुखद घटना की पृष्ठभूमि में मानवतावादी दृष्टिकोण को उभारा गया है और समाज विरोधी ताक़तों को बेनक़ाब करते हुए अवामी हुकूमत क़ायम करने का रास्ता दिखाया गया है। 'पैकार' शीर्षक नाटक में बंगाल के अकाल का चित्रण है। 'नई दुनिया को सलाम' का उल्लेख पहले किया जा चुका है जो कि एक काव्य नाटक है और प्रभाव के लिहाज़ से अपना जवाब नहीं रखता। सरदार जाफ़री द्वारा लिखे गए नाटकों की तादाद आठ बताई जाती है।

सरदार जाफ़री ने कई आलोचनात्मक लेख और समीक्षाएँ भी लिखी हैं, लेकिन आलोचक होने का दावा कभी नहीं किया। कई जगह उन्होंने साफ़-साफ़ लिखा है कि वे आलोचक नहीं हैं। राही मासूम रज़ा के साथ एक साहित्यिक भेंटवार्ता में राही के यह कहने पर कि आप आलोचक भी हैं, जाफ़री ने कहा कि मैं बार-बार लिखता रहा हूँ। कहता रहा हूँ। फिर कह रहा हूँ कि मैं आलोचक नहीं हूँ। इसलिए कि आलोचक का जो प्रशिक्षण होता है, [illegible]

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

योरोप की आलोचनात्मक पुस्तकें पढ़-पढ़कर, वो मेरी तबीयत में नहीं है। मैंने पुराने शायरों का जायज़ा लिया। उसमें ग़ालिब और मीर के अलावा कबीर भी हैं। मीराबाई भी है। रूमी भी हैं। हाफ़िज़ शीराज़ी भी हैं। मैंने बार-बार लिखा है कि मैं इनका जायज़ा इस नज़र से लेता हूँ कि अपनी शायरी के लिए मानक बना सकूँ।

उनका यह बयान अपनी जगह, लेकिन उर्दू आलोचना के क्षेत्र में उनके काम को देखते हुए उन्हें आलोचकों में शुमार न करना बे-इंसाफ़ी होगी। उनके साहित्यिक जीवन का आरंभ अलीगढ़ विश्वविद्यालय में शिक्षण के दौरान हुआ था। वहीं उन्होंने जोशीली नज़्मों, कहानियों और नाटक इत्यादि के साथ-साथ 'नौजवानों के अदबी रुझानात' शीर्षक एक आलोचनात्मक लेख लिखकर इस क्षेत्र में अपनी आमद दर्ज करा दी थी। उर्दू साहित्य जगत में उनका यह लेख चर्चा का विषय बन गया था। वे इसके बाद भी समय-समय पर समीक्षाएँ लिखते रहे। एक बाक़ायदा आलोचक की हैसियत से उन्हें मान्यता उस वक़्त प्राप्त हुई जब *तरक़्क़ी पसंद अदब* शीर्षक से उनकी एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक छपकर आई। प्रगतिशील आंदोलन के कटिबद्ध कार्यकर्ता और मार्गदर्शक होने के कारण उन पर तरफ़दारी का आरोप तो लगना ही था, सो लग के रहा, लेकिन इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद सरदार जाफ़री की गणना आलोचकों में की जाने लगी। यह पुस्तक आज भी अपने विषय पर एक विश्वस्त ग्रंथ का दर्जा रखती है।

इसके बाद भी आलोचना के क्षेत्र में उनकी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें *इक़बाल शनासी* और *पैग़ंबरान-ए-सुख़न* विशेष *तौर से* उल्लेखनीय है। *इक़बाल शनासी* उनके तीन लंबे लेखों पर आधारित है। सरदार जाफ़री ने *तरक़्क़ी पसंद अदब* में इक़बाल की शायरी पर सख़्त ऐतिराज़ात किए थे और नौजवानाना जोश में उन्हें फ़ासिस्ट भी कह गए थे। बाद में जब उन्होंने इक़बाल की शायरी का गहन अध्ययन किया तो उन्हें अपने पूर्व विचारों पर पुनर्विचार की आवश्यकता महसूस हुई, जिसके नतीजे में *इक़बाल शनासी* वजूद में आई।

पैग़ंबरान-ए-सुख़न में तीन अज़ीम शायरों (कबीर, मीर और ग़ालिब) के कलाम का जायज़ा लिया गया है। *सरमाया-ए-सुख़न* ख़ुद सरदार जाफ़री के शब्दों में "एक बड़े काम की छोटी-सी इब्तिदा है। इसमें तक़रीबन बीस हज़ार अल्फ़ाज़ और तरकीबें, चंद शायरों के मुंतखिब अश्आर से जमा की गई हैं।" इस पुस्तक के विस्तृत प्राक्कथन के अलावा दो अध्याय ऐसे हैं जो लेखक के आलोचना संबंधी दृष्टिकोण उजागर करते हैं। यह दृष्टिकोण *सरमाया-ए-सुख़न* की शब्दावली और उर्दू शायरी की इमेजरी को नए अर्थ देता है। अफ़सोस है कि इस पुस्तक का दूसरा भाग वे पूरा नहीं कर सके और एक अगस्त 2000 को हमेशा-हमेशा के लिए इस दुनिया को छोड़कर चले गए।

सरदार जाफ़री ने अपने जीवन का लंबा समय बंबई में गुज़ारा। वहाँ उनके अधिकतर दोस्त फ़िल्मी दुनिया से संबद्ध थे। जाफ़री शाइर भी थे और नाटककार भी, लिहाज़ा उन्हें भी फ़िल्मों में गीत और संवाद आदि लिखने के अवसर मिलते रहे। इसके बावजूद वे फ़िल्मी दुनिया से पूरी तरह संबद्ध नहीं रह सके। साहित्य तथा संगठन के विभिन्न कार्यों में सक्रिय तौर पर व्यस्त रहने के कारण उनके लिए यह संभव भी नहीं था। फिर भी समय-समय पर वे फ़िल्मों के लिए गीत और स्क्रिप्ट्स लिखने का काम करते रहे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चालीस के दशक में जब सरदार जाफ़री बंबई पहुँचे थे तो उनके अलीगढ़ के कई साथी. ख़्वाजा अहमद अब्बास, सआदत हसन मंटो, हयातुल्लाह अंसारी और शाहिद लतीफ़ वग़ैरह सभी फ़िल्मी दुनिया में पैर ज़माने के प्रयत्न कर रहे थे। सरदार जाफ़री शायरी के अलावा कहानियाँ और नाटक भी लिखते रहे थे, लेकिन यहाँ उन्हें पहले पहल एक फ़िल्म 'नया तराना' में गीत लिखने का मौक़ा मिला। उनका लिखा हुआ पहला गीत (हम दुनिया के अन्नदाता हैं, हम धरती माँ के बच्चे) मेहनतकशों के बारे में था, जो इस वर्ग से उनकी गहरी सहानुभूति ज़ाहिर करता है। यह 1943 की बात है। इसके बाद भी उन्होंने समय-समय पर कई फ़िल्मों के लिए गीत लिखे, जिनमें 'धरती के लाल', 'अनहोनी', 'ज़लज़ला', 'फ़ुटपाथ धोबी डॉक्टर', 'परदेसी', 'शहर और सपना', 'हमारा घर', 'आसमान महल' और 'नक्सलाइट' इत्यादि शीर्षक फ़िल्मों के नाम उल्लेखनीय हैं। यह गीत फ़िल्म जगत के सिरमौर गायकों के स्वरों में रिकॉर्ड कराए गए थे। कुछेक गीतों को लोकप्रियता भी प्राप्त हुई।

सरदार जाफ़री ने '11 हज़ार लड़कियाँ' नाम से एक फ़िल्म प्रोड्यूस भी की थी। यह फ़िल्म महानगर बंबई के कार्यालयों में काम करनेवाली लड़कियों के बारे में थी। माला सिन्हा और भारत भूषण ने इसमें मुख्य भूमिका अदा की थी। सरदार जाफ़री फ़िल्म राइटर्स एसोसिएशन के अध्यक्ष भी रहे। वे फ़िल्मों के अलावा रेडियो और टी.वी. के लिए भी लिखते रहे। 'कहकशाँ' उनका एक यादगार और कामयाब टी.वी. धारावाहिक था। उन्होंने अपने देश और समय से जुड़े हुए कई वृत्तचित्र भी बनाए, जिसमें हमारी गंगा-जमुनी तहज़ीब का सौंदर्य और उसकी शक्ति नुमायाँ नज़र आती है। वे इस तहज़ीब को देश की बहुमूल्य विरासत मानते हैं।

सरदार जाफ़री को यह शिकायत रही कि हमारे रहनुमाओं ने शाइरों-अदीबों को इस्तेमाल तो किया, लेकिन उन्होंने कभी साहित्य की समस्याओं की ओर ध्यान नहीं दिया और न ही साहित्य की शक्ति और उसके प्रभाव को समझने का प्रयत्न किया।

हमने जो दुनिया अपने बुज़ुर्गों से विरासत में पाई है, वह बड़ी हसीन और दिलकश है। हमारा फ़र्ज़ है कि हम अपने बाद आनेवालों को इससे हसीनतर दुनिया देकर जाएँ। सरदार जाफ़री की सोच यही थी। उन्होंने अपने कार्यों का जायज़ा लेते हुए लिखा है कि मेरी ज़िंदगी कामयाब गुज़री, लेकिन मैं वह सब कुछ न कर सका जो मैं चाहता था। मुझे उम्मीद है कि मेरे बाद आनेवाली पीढ़ी के लोग मेरी विचारधारा को आगे बढ़ाएँगे। ज़िंदगी के जिन हसीन पहलुओं तक मेरी नज़र नहीं जा सकी, वे उन्हें ज़रूर देखेंगे। आनेवाली पीढ़ी से उम्मीदें और मौत का ज़िक्र उन्होंने अपनी कई नज़्मों में किया है। वे मौत को ज़िंदगी का अंत नहीं, बल्कि उसका तसल्सुल मानते थे। अपनी एक नज़्म 'मेरा सफ़र' में उन्होंने कहा है :

फिर कोई नहीं यह पूछेगा
सरदार कहाँ है महफ़िल में
लेकिन मैं यहाँ फिर आऊँगा

सदियों का पुराना खेल हूँ मैं
मैं मर के अमर हो जाता हूँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ख़ुर्शीद आलम

बात से बात चले

अली सरदार जाफ़री मूलतः नज़्मों के शायर थे, हालाँकि नए शायरों की तरह उन्होंने भी अपनी शायरी का आग़ाज़ ग़ज़लों से किया! उन्होंने विभिन्न शीर्षक और विषयों पर सैकड़ों नज़्में कही हैं। यह उर्दू शायरी की ख़ुशनसीबी थी कि सरदार जाफ़री ने उसे नया मुहावरा, नई शब्दावलियाँ और एक नया दृष्टिकोण दिया। उन्होंने बेजान और बेआवाज़ वस्तुओं को अपने चिंतन से सौंदर्य का मीनारा बना दिया। उनकी नज़्मों को पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि उन्होंने नज़्म की विषयवस्तु को अंत:अनुभवों के रूप में ढाला है। उदाहरण के लिए, 'हुस्ने सोगवार' की ये पंक्तियाँ :

क्या कहूँ क्या है वो हुस्ने सोगवार
जिसकी नज़रें दूर से करती हैं प्यार
ख़ाल व ख़त में उन निगाहों में शराब
हल्की-हल्की साँस में रूहे शबाब
बात करती है तो यूँ झड़ते हैं फूल
जैसे गुलशन में बहारों का नज़ूल

नज़्म का रचनाकाल 1944 है, जब सरदार जाफ़री की उम्र लगभग इकतीस साल थी। साधारणतः इस उम्र में लोग रूमानी तो बहुत होते हैं, लेकिन सौंदर्यबोध कम ही नज़र आता है। सरदार जाफ़री जब सेंट्रल जेल नासिक में सलाखों के पीछे थे, अपने बेटे की पहली सालगिरह पर अपने सीने से नहीं लगा सकते थे, उन्हें इसका कितना मलाल और दुःख होगा, उनकी नज़्म 'नींद' उनके उस एहसास का बेहतरीन नमूना है :

रोज़ रात को यूँ ही / नींद मेरी आँखों से / बेवफ़ाई करती है
मुझको छोड़कर तन्हा / जेल से निकलती है / बंबई की बस्ती में
मेरे घर का दरवाज़ा / जाके खटखटाती है।

यह नज़्म शुरू से आख़िर तक हमारे दिलो-दिमाग़ पर एक विचित्र प्रभाव डालती है।

अली सरदार जाफ़री अवध के ऐतिहासिक शहर बलरामपुर में 26 नवंबर 1913 को पैदा हुए। बचपन और लड़कपन का अधिकतर

जन्म : 1957। कहानी, आलोचना तथा अनूदित तीस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। उत्तर प्रदेश उर्दू अकादमी द्वारा पुरस्कृत तथा ऑल इंडिया मीर अकादमी द्वारा इम्तियाज़-ए-मीर से सम्मानित। संपर्क : एफ़-23/6-सी, द्वितीय तल, शताब्दी एनक्लेव बरौला, सेक्टर-49, नोएडा 201301;
मो. 9899830697

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिस्सा इसी शहर में गुज़रा। इसलिए इस क्षेत्र की मिली-जुली तहज़ीब, उसके प्राकृतिक दृश्य, शेर व अदब की श्रेष्ठ परंपराओं एवं वातावरण से उनका भावनात्मक रिश्ता हमेशा क़ायम रहा। अपनी कई नज़्मों और दूसरी रचनाओं में उन गुज़ारे हुए क्षणों को श्रद्धा से याद करते रहे। अपनी मशहूर नज़्म 'अवध की ख़ाके हसीं' में लिखते हैं :

मैं रात के वक़्त अपने ख़्वाबों में चौंक पड़ता हूँ
जैसे मुझको अवध की मिट्टी बुला रही है...
हसीन झीलें कँवल की फूलों की चादरों में ढकी हुई हैं
फ़िज़ाओं में 'मेघदूत' परवाज़ कर रहे हैं
न जाने कितनी मुहब्बतों के पयाम लेकर
घटाओं की अप्सराएँ अपनी
घनेरी ज़ुल्फ़ों में आख़िरी बार मुस्कुराकर
खलीजे बंगाल और बहरे अरब के मोती पिरो रही हैं
हरे परों और नीले फूलों के भोर ख़ुश हो के नाचते हैं।[1]

अली सरदार जाफ़री के दादा का नाम सैयद मेहदी हसन जाफ़री और वालिद का नाम सैयद जाफ़र तय्यार उर्फ़ बड़े भैया था। उनके बड़े भाई का नाम सैयद ज़फ़र अब्बास था। सरदार जाफ़री की सात बहनें थीं, उनमें से दो बहनें रबाब बानो और शहर बानो (सितारा) हमेशा सरदार जाफ़री के संरक्षण में उनके साथ रहीं!

उनकी आरंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। एक मौलवी साहब क़ुरआन के अलावा उर्दू-फ़ारसी की शिक्षा देते थे। मास्टर बशीर से अंग्रेज़ी पढ़ी। बलरामपुर के अंग्रेज़ी स्कूल 'लॉयल कॉलिजियट' में उनका दाख़िला हुआ था। तीसरी कक्षा से छठी कक्षा तक उन्हें बद्री प्रसाद ने गणित की शिक्षा दी। 1933 में हाई स्कूल उत्तीर्ण कर आगे की पढ़ाई के लिए अलीगढ़ आ गए। लेकिन 1936 में ब्रिटिश शासन के ख़िलाफ़ छात्रों की हड़ताल में सम्मिलित होने के कारण यूनिवर्सिटी से निकाल दिए गए। इसके बाद उन्होंने ऐंग्लो अरेबिक कॉलेज, दिल्ली में प्रवेश लेकर यहीं से बी.ए. की उपाधि प्राप्त की।

कुछ दिन बाद सरदार जाफ़री ने लखनऊ यूनिवर्सिटी से पहले एल.एल.बी. और फिर बाद में एम.ए. (अंग्रेज़ी) में दाख़िला लिया। उस ज़माने में लखनऊ में वामपंथी छात्र राजनीतिक सरगर्मियों में बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे थे। सरदार जाफ़री भी नौजवानों के उसी गिरोह से जुड़ गए और बहुत ही सक्रिय थे। नतीजा यह हुआ कि 1939-40 के युद्ध के विरुद्ध आंदोलन में हिस्सा लेने के कारण उन्हें क़ैद कर लिया गया और लगभग आठ महीने जेल में रहे।

1938 का लखनऊ राजनीतिक सरगर्मियों का केंद्र बन गया था। वामपंथी विचारधारा से संबंध रखनेवाले कई प्रगतिशील लेखक भी इस शहर में एकत्र हो गए थे। इनमें सज्जाद ज़हीर, डॉ. अब्दुल अलीम, सैयद सिब्ते हसन, अली सरदार जाफ़री और असरारुलहक़ मजाज़ के

---

1. *अली सरदार जाफ़री* : कमर रईस, पृ. 11

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम उल्लेखनीय हैं। सैयद सिब्ते हसन एक लेख 'सरदार जाफ़री : चंद यादें' में लिखते हैं : ''दूसरी जंगे अज़ीम सर पर खड़ी थी। जिस वक़्त, मजाज़, सरदार जाफ़री और मैंने मिलकर माहनामा 'नया अदब' और साप्ताहिक 'परचम' लखनऊ से जारी किया। स्पेन में जम्हूरियत का परचम झुक चुका था...बर्तानिया और फ्रांस की फ़ासिस्ट हुकूमतों ने चेकोस्लोवाकिया को हिटलर के हवाले कर दिया था... 'नया अदब' के रूहे रवां दरअसल सरदार जाफ़री थे। उन्हीं की लगन और अनथक मेहनत से यह पर्चा चलता था।''[1]

'नया अदब' का पहला अंक 1939 में प्रकाशित हुआ था। इसके पहले ही अंक में सरदार जाफ़री का लेख 'तरक़्क़ी पसंद अदब' प्रकाशित हुआ था। इसके संपादकीय और उस लेख में प्रगतिशील साहित्य की अवधारणा को स्पष्ट करने की कोशिश की गई थी।[2]

तब विश्व युद्ध जारी था। सोवियत यूनियन पर भी नाज़ी फ़ौज का आक्रमण हो चुका था। कम्युनिस्ट पार्टी पर रोक लगी हुई थी, लेकिन 1942 के मध्य ब्रिटिश शासन ने कम्युनिस्ट पार्टी से पाबंदी उठा ली। अब पार्टी का केंद्र बंबई हो गया। सरदार जाफ़री भी पार्टी के पूर्णकालिक सदस्य बनकर लखनऊ से बंबई चले गए और वहाँ वे पार्टी के अख़बार 'क़ौमी जंग' के संपादक मंडल में शामिल हो गए!

सरदार जाफ़री की शादी सुलताना मिन्हाज से बंबई में हुई थी। वह भी पार्टी की सक्रिय सदस्य थीं। उन्होंने दो बेटों नाज़िम और हिकमत तथा एक बेटी दुर्दाना को जन्म दिया। बंबई प्रवास के दौरान वे दो बार गिरफ़्तार भी हुए। पहली बार वे 20 जनवरी 1949 को और दूसरी बार 19 अप्रैल 1949 को गिरफ़्तार हुए और लगभग सवा साल बाद जुलाई 1950 में रिहा हुए। उनकी कई नज़्में इसी क़ैद के ज़माने की यादगार हैं।

सरदार जाफ़री ने कोई स्थायी नौकरी नहीं की, न सरकारी और न ही ग़ैर सरकारी। उनकी धर्मपत्नी सोवियत हाउस ऑफ़ कल्चर में नौकरी करती थीं। सरदार जाफ़री ने आरंभ में साहिर लुधियानवी और मजरूह सुल्तानपुरी की तरह फ़िल्मों के लिए गीत और संवाद लिखने की कोशिश की, लेकिन उनका स्वभाव ऐसा था कि इसे वे जीविका का साधन न बना सके। एक पत्र में लिखते हैं : ''1963 के बाद मैं फ़िल्मों से दूर होता गया और अब क़तअन कोई ताल्लुक़ नहीं है। मेरा ज़रियए मा'श सिर्फ़ मेरा क़लम है। आजकल नेहरू फ़ेलौशिप के तहत उर्दू शायरी की इमेजरी पर काम कर रहा हूँ। अब तक इक्कीस हज़ार अल्फ़ाज़ और तर्कीबों का इंतिख़ाब कर चुका हूँ।''[3]

नज़्म 'अवध की ख़ाके हसीं' में दिलचस्प और मुफ़ीद हवालों से जहाँ एक तरफ़ हमारी रूमानी भावनाओं और सौंदर्य चेतना की तृप्ति होती है, वहीं दूसरी तरफ़ शायर की बहुमुखी प्रतिभा का भी क़ायल होना पड़ता है।

1. *सरदार जाफ़री : शख़्स शायर व अदीब* (सं.) अब्दुस्सत्तार दलवी, पृ. 67-68
2. *अली सरदार जाफ़री* : क़मर रईस, पृ. 16
3. 'सरदार जाफ़री के ख़ुतूत : अंजुमन तरक़्क़ी' *उर्दू हिंद,* दिल्ली, पृ. 50

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक ज़माना था, जब उर्दू शायरी में हुस्न और इश्क़ की बड़ी अहमियत थी, शुअरा अलग-अलग ढंग से हुस्न की तारीफ़ करते थे, लेकिन बीसवीं और इक्कीसवीं सदी में शायरी में हुस्न की परिभाषा बिलकुल बदल गई, ठीक उसी तरह जिस तरह सौंदर्य की सृष्टि में ख़ूबसूरती और बदसूरती का कोई पैमाना नहीं रहा। इस संदर्भ में सरदार जाफ़री की नज़्मों 'मज़दूर लड़कियाँ' और 'सरमायादार लड़कियाँ' का उदाहरण दिया जा सकता है :

गर्दिशे अफ़लाक[1] *ने गोदी में पाला है उन्हें*
सख़्तीए आलाम्[2] *ने साँचे में ढाला है उन्हें*
घूरती रहती है गर्मी में निगाहे आफ़ताब
आसमां करता है नाज़िल[3] *उनपे किरनों का इताब*[4]
बेकसी उनकी जवानी, मुफ़लिसी उनका शबाब
साज़ उनका सोज़ हसरत, ख़ामुशी उनका रबाब *(मज़दूर लड़कियाँ)*
... ...
शहर की रंगीं शबिस्तानों[5] *की तनवीरें*[6] *हैं ये*
नौजवानों के हसीं ख़्वाबों की ताबीरें[7] *हैं ये*
है उन्हीं के दम से मस्नूई तमद्दुन[8] *की बहार*
हैं यही तहज़ीब के आजुरकदे की शाहकार
बेक़रार आँखें दिलों को दावतें देती हुईं
नौजवानी बार-बार अंगड़ाइयाँ लेती हुईं *(सरमायादार लड़कियाँ)*

देखा आपने, यहाँ हुस्न की परिभाषा बिलकुल बदली हुई है।

बंबई में स्थायी रूप से निवास करते हुए सरदार जाफ़री ने दो अहम् ज़िम्मेदारियाँ और सँभालीं। एक तो मशहूर अदब दोस्त श्याम किशन निगम के सहयोग से हिंदुस्तानी बुक ट्रस्ट स्थापित हुआ और सरदार जाफ़री इसके संपादक मंडल के मुख्य सदस्य घोषित किए गए। यह संस्था शिक्षा और साहित्य की एक ऐसी संस्था थी, जिसका उद्देश्य शिक्षा और साहित्य के द्वारा व्यापार करना नहीं था। इस संस्था द्वारा हिंदी, उर्दू और फ़ारसी के प्रतिष्ठित कवियों का कलाम एक साथ उर्दू एवं देवनागरी लिपि में प्रकाशित किया जाता था और पाठकों की सुविधा के लिए शब्दकोश भी दिया जाता था। इस ट्रस्ट के द्वारा सरदार जाफ़री ने प्रेमवाणी, *कबीर वाणी, दीवाने* मीर और *दीवाने ग़ालिब*-जैसी पुस्तकें संपादित कर प्रकाशित कराईं।

दूसरा अहम् कारनामा एक उर्दू त्रैमासिक 'गुफ़्तगू' जारी किया, जो अच्छा-ख़ासा एक भरपूर रिसाला था और उर्दू पत्रिका के इतिहास में संगे मील की हैसियत रखता है। यह रिसाला भी 'नया अदब' की तरह प्रगतिशील साहित्य का तर्जुमान था। इसके पहले अंक के संपादकीय में लिखते हैं :

---

1. आसमानों के चक्कर, 2. दुःखों की सख़्ती, 3. अवतरित होना, 4. नाराज़गी, 5. शयनगार, 6. रोशनियाँ, 7 स्वप्नफल, 8. बनावटी तहज़ीब।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''अदब और अदीब इस वक़्त एक बुहरानी (संक्रमण) दौर से गुज़र रहे हैं। अक़ीदे ज़ख़्मी हैं और यक़ीन व एतिमाद की साँस उखड़ी-उखड़ी-सी है। हमारी नज़रों के सामने आदर्शों के चेहरे मसख़ हुए हैं, ख़्वाबों को क़त्लगाहों से गुज़रना पड़ा है और क़दरों की तशन्नुजी कैफ़ियत (शरीर के ऐंठने की स्थिति) ने दिलों में हौल बिठा दिया है। इन फैले हुए रेग़ज़ारों में कहीं-कहीं नई उपज, नए अंदाज़े तख़्लीक़ और नई सोच के नख़लिस्तान मिलते हैं लेकिन उनके साये इतने घने नहीं हैं कि उर्दू अदब हड्डियों को पिघला देनेवाली तपती हुई धूप से बच सके।''[1]

'गुफ़्तगू' में वरिष्ठ एवं युवा साहित्यकारों की रचनाओं के अतिरिक्त 'पेशे गुफ़्तार' शीर्षक से सरदार जाफ़री का संपादकीय भी प्रकाशित होता था, जिनमें उस दौर के साहित्यिक एवं सैद्धांतिक समस्याओं पर खुलकर बहस करते थे। 1968 तक 'गुफ़्तगू' का प्रकाशन होता रहा, लेकिन उनके हृदय रोग से पीड़ित होने के कारण इसका प्रकाशन स्थगित हो गया। फिर उन्होंने अपने एक दोस्त रौशन लाल वडेरा के सहयोग से 'गुफ़्तगू' का दोबारा प्रकाशन शुरू किया और 'तरक़्क़ी पसंद अदब नंबर' के रूप में दो खंडों में एक विशेषांक प्रकाशित किया। उनके संपादन में प्रकाशित होनेवाला यह अंतिम अंक सिद्ध हुआ।[2]

द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू होने के बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू ने एक बयान में कहा था कि वे फ्रांस और ब्रतानिया के तहज़ीब की तबाही बरदाश्त नहीं कर सकते। यह विचार निःसंदेह इंसान दोस्ती की बृहत्तर परिकल्पना से मेल रखता था। सरदार जाफ़री ने पंडित नेहरू से श्रद्धा के बावजूद एक नज़्म 'जवाहरलाल नेहरू के नाम' में इसका विरोध किया था :

ध्यान मुझको भी है यूरोप की तबाही का मगर
तुमको अपनी भी तबाही की ख़बर है के नहीं
कितना गुलरंग है इंग्लैंड की तहज़ीब का नाम
इसमें कुछ हिंद का भी ख़ूने जिगर है के नहीं
राख का ढेर है बुझते हुए अंगारों में
तेरी उठते हुए शोले पे नज़र है के नहीं

यूरोप की साम्राजी शक्तियों ने जिस तरह पिछड़े हुए देशों का शोषण किया, उन्हें ग़ुलाम बनाया और फिर पिछले सोवियत यूनियन ने जिन उपायों से उपनिवेशी चंगुल से उन्हें मुक्ति दिलाने की कोशिश की, वह इस व्यवस्था में शायर की दूरदर्शिता का मुख्य बिंदु बन जाता है।

अपनी आपबीती में सरदार जाफ़री ने लिखा है कि लड़कपन में एक पत्रिका में रूस के इंक़िलाब का वर्णन और इक़बाल की नज़्म 'ख़िज़्रे राह' पढ़कर अपने ख़्वाबों की नई दुनिया बनानी शुरू कर दी थी। उसी ज़माने में ख़ानदान की एक लड़की से उनका एक नाज़ुक जज़्बाती रिश्ता क़ायम हो गया : ''माँ-बाप मेरी हालत पर कुढ़ते थे और बहनें मुझे हैरत से देखती थीं, एक रिश्ते की बहन थी, उसकी आँखों में हैरत से ज़्यादा पसंदीदगी की चमक थी

1. *अली सरदार जाफ़री...*(सं.) अब्दुस्सत्तार दलवी, पृ. 423
2. *अली सरदार जाफ़री* : क़मर रईस, पृ. 19

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और ये चमक मुझे इस पर आमादा कर देती थी कि मैं उसके सामने अपने जज़्बात का इज़हार करूँ। मैं उससे हमेशा मुफ़लिसी और अमारत, ज़ुल्म और इंसाफ़ की बातें करता रहता था, लेकिन कुछ अर्से बाद मालूम हुआ कि हमारे दरमियान कुछ नाज़ुक और लतीफ़ रिश्ते पैदा हो गए हैं और मेरे दिल में एक नूर-सा बिखर गया।''[1]

सरदार जाफ़री ने लिखा है कि बाद में जब मेरी शादी की बात चली तो मैंने अपने वालिदैन (माँ-बाप) के सामने उसी लड़की का नाम रखा। लेकिन लड़की के माँ-बाप ने मेरी आवारगी का वास्ता देकर इंकार कर दिया। इसके बाद लखनऊ में सुलताना मिन्हाज से उनका रोमांस शुरू हुआ। वह उस ज़माने में कम्युनिस्ट पार्टी की सक्रिय सदस्य थे। इस रोमांस की परिणति जनवरी 1948 में दोनों की शादी के रूप में हुई।

सन् 1950 में *अम्न का सितारा* नामक एक रचना सरदार जाफ़री की प्रकाशित हुई, जो वास्तव में उनकी तीन नज़्मों 'सोवियत यूनियन और जंगबाज़', 'स्टालिन कथा' और 'अम्न का सितारा' पर आधारित थी। यह वह ज़माना था, जब सोवियत अवाम और सुर्ख़ फ़ौज हिटलर की नाज़ी सेना को हराकर अपने देश और साझे समाज के पुनर्निर्माण में तन-मन से लगी हुई थी। दुनिया के सबसे बड़ी आबादी वाले देश चीन में लोकतांत्रिक इंक़िलाब कामयाब हो चुका था। वियतनाम, भारत-चीन, कोरिया और तीसरी दुनिया के दूसरे देशों में अवामी और इंक़िलाबी शक्तियाँ तेज़ी से आगे बढ़ रही थीं। हिंदुस्तान में तेलंगाना के किसानों का इंक़िलाबी आंदोलन संगठित हो रहा था। इस उत्साहित वातावरण में कम्युनिस्ट पार्टी से संबद्ध हिन्दुस्तानी अदीबों के हौसले बहुत बुलंद थे। सारी दुनिया में साम्राजी शक्तियों के मुक़ाबले में वे अवाम की इंक़िलाबी कामयाबियों पर नज़रें जमाए थे। इसलिए उल्लेखित तीन नज़्मों में जनजागृति की इंक़िलाबी फ़िज़ा साफ़ दिखाई देती है।

अली सरदार जाफ़री की मूल पहचान एवं प्रतिष्ठा एक शायर की है और निःसंदेह प्रगतिशील साहित्य की परंपरा और समकालिक शायरी के रुझानात की संरचना में उनका बड़ा योगदान रहा है। लेकिन समकालीन तमाम अहम् शायरों से वे इसलिए अलग एवं प्रतिष्ठित हैं कि आलोचना एवं शोध के मैदान में भी उनका उल्लेखनीय योगदान है। एक मार्क्सवादी चिंतक की हैसियत से उन्होंने न सिर्फ़ मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन किया था बल्कि इतिहास, अर्थशास्त्र, समाज शास्त्र एवं विश्व साहित्य पर भी उनकी गहरी दृष्टि थी। वे फ़ारसी और अंग्रेज़ी—दोनों भाषाओं से भली-भाँति परिचित थे एवं दोनों भाषाओं के साहित्य को पढ़ा एवं परखा था! सरदार जाफ़री की आलोचनात्मक विद्वत्ता का महत्त्वपूर्ण उदाहरण *पैग़ंबराने सुख़न* है जो कबीर, मीर और ग़ालिब तीन शायरों के बारे में उनकी भूमिकाओं पर आधारित है। *पैग़ंबराने सुख़न* तीन अध्याय में विभाजित है—1. 'हर्फ़े मुहब्बत', कबीर, 2. 'सबा दर बदर', मीर, 3. 'तमन्ना का दूसरा क़दम', ग़ालिब।

ये आलेख वास्तव में उन भूमिकाओं पर आधारित हैं जो कबीर वाणी एवं मीर तथा ग़ालिब के संग्रहों पर लिखे गए थे। मीर और ग़ालिब के दीवान चूँकि हिंदी पाठकों को सामने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

1. *अली सरदार जाफ़री नंबर, अफ़कार, कराची, पृ. 647*

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रखकर संपादित किए गए थे इसलिए उनकी भूमिका में उनके जीवन और व्यक्तित्व के बारे में विस्तार से लिखा गया है। उन्होंने कबीर और मीराबाई का जो कलाम संपादित करके प्रकाशित किया है, वह उर्दू पाठकों को सामने रखकर किया है। इसलिए कि हिन्दी में कबीर और मीरा की शायरी के हवाले से बहुत कुछ लिखा जा चुका था और हिन्दी आलोचकों में मार्क्सवादी आलोचक भी थे।

सरदार जाफ़री को एहसास था कि कबीर के यहाँ भक्ति का जो रंग मिलता है और जिस तरह वह औपचारिक श्रद्धा के मुक़ाबले में मानवीय मूल्यों एवं मानवीय संवेदनाओं के मार्ग पर ज़ोर देते हैं, वह सूफ़ियाना चिंतन एवं ज्ञान के बहुत क़रीब हैं। उन्हें अफ़सोस है कि उर्दू वालों ने मलिक मुहम्मद जायसी और ख़ानख़ाना की तरह कबीर की परंपरा को अपनाने और इसे खड़ी बोली की उर्दू शायरी की परंपरा से जोड़ने से परहेज़ किया। लिखते हैं :

हमें आज भी कबीर की रहनुमाई की ज़रूरत है।
उस रोशनी की ज़रूरत है जो उस संत-सूफ़ी
के दिल से पैदा हुई थी...आज साइंस की
बेपनाह तरक़्क़ी ने इंसान का इक़्तिदार बढ़ा
दिया है... इंसान सितारों पर कमंदें फेंक
रहा है, फिर भी हक़ीर है... वह रंगों में
बँटा हुआ है, क़ौमों में तक़्सीम है। उसके
दरमियान मज़हब की दीवारें खड़ी हुई हैं,
फ़िरकावाराना नफ़रतें हैं। दिलों के अंदर
अँधेरे हैं... इसलिए उसको एक नए यक़ीन,
नए ईमान और नई मुहब्बत की ज़रूरत है
जो उतनी ही पुरानी है, जितनी कबीर की आवाज़
और उसकी सदाये बाज़गश्त इस अहद की
आवाज़ बनकर सुनाई देती है।[1]

पैग़ंबराने सुख़न में मीर और ग़ालिब और कबीर की शायरी का जायज़ा लेते हुए शब्दों और आम मुहावरों को पद्यात्मक मुहावरों का रूप देने पर विद्वत्तापूर्ण बात की है और बताया है कि दूसरी ज़बानों के मुहावरों का भाषाविदों और शायरों ने शे'र में बरतकर किस तरह उर्दू शायरी के दामन को विस्तृत किया है।

नई दुनिया को सलाम, अम्न का सितारा, एशिया जाग उठा, एक ख़्वाब और, पत्थर की दीवार और *पैराहने शरर* उनके प्रतिनिधि काव्य-संग्रह हैं। उन्हें पद्मश्री, इक़बाल सम्मान, ज्ञानपीठ और अन्य कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। *तरक़्क़ी पसंद अदब, इक़बाल शनासी* और *पैग़ंबराने सुख़न* उनकी आलोचनात्मक पुस्तकें हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

1. *पैग़ंबराने सुख़न*, पृ. 43

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुफ़्तगू बंद न हो

राही मासूम रज़ा की सरदार जाफ़री से बातचीत

18 अप्रैल, 1990 का एक रोशन दिन। सुबह ग्यारह बजे का वक़्त। और अली सरदार जाफ़री का 'सीता महल' वाला रिहायशी फ़्लैट, जहाँ मुख़्तसर से ड्राइंग-रूम में, दीवार से लगा किताबों का एक बड़ा-सा शेल्फ़... साहबेख़ाना की इल्मीयत (विद्वत्ता) और मुतालअ (अध्ययन) का मुज़्हिर (सूचक)—कमरे के दाएँ गोशे में एक छोटी-सी मेज़, जो दुनिया की क़ीमती तहरीरों का जाए पैदाइश। एक क़लम। अपनी शहंशाहियत का एलान करता हुआ। मेज़ पर चुनिंदा किताबें। एक पैड। एक टेबल-लैम्प। जोशे-बेदारी और शबे-नवीसी का ग़म्माज़। मेज़ के उस तरफ़ दीवार से लगा हुआ एक कोच, जिस पर डॉक्टर राही मासूम रज़ा अपनी हके-गोई व बेबाकी और पूरे तमतराक के साथ जलवागर। पास ही पान की एक डिबिया। दूसरी दीवार से लगे हुए कोच पर रबाब आपा और सतारा आपा हमा-तन-गोश। चक्करदार कुर्सी पर तरक़्क़ीपसंद तहरीक के हीरो, अपने लफ़्ज़ों के हथियारों से लैस। उधर शेल्फ़ के पास बिछी हुई दो कुर्सियों पर सुलताना जाफ़री, यानी उर्दू शायरी की वीनस और दूसरी कुर्सी पर ख़ाकसार यानी रफ़िआ शबनम आबदी। बीच में एक लंबी-सी तिपाई, जिस पर एक टेप-रिकॉर्डर बड़ी देर से शरकाए-गुफ़्तगू की आवाज़ों पर कान लगाए हुए।

मैंने कहा, ''राही साहब! आप गुफ़्तगू शुरू कीजिए। मैं रिकॉर्ड करती जाऊँगी।''

राही साहब ने 'महाभारती' शानो-शकवा के साथ अपनी शेरवानी की 'ज़बनील' (मैं उसे जेब नहीं, 'ज़बनील' ही कहूँगी) से एक पॉकेट-साइज़ रिकॉर्डर निकाला और मुस्कुराकर मुख़ातिब हुए, ''देखो रफ़िआ! यह मेरा टेप-रिकॉर्डर है, मगर तुम्हारे लिए नहीं। इसे मैं अपने पास ही रखूँगा।''

मैंने मुस्कुराकर कहा, ''मंज़ूर। चलिए, मगर एलान के तौर पर अल्फ़ाज़ के शंख भी तो बजाइए!''

और फिर अल्फ़ाज़ का शंख बज गया। डॉक्टर राही मासूम रज़ा ने पहलू बदला। पान की डिबिया में से एक गिलोरी निकालकर मुँह में डाली और कहा,

देखिए अंदाज़े-गुल अफ़शाई-ए-गुफ़्तार
बात से बात चली, सुबूह मुलाक़ात चली
हाथ में हाथ लिए, सारा जहाँ साथ लिए
तोह.फा-ए-दोद लिए, प्यार की सौग़ात लिए

अनु. **सुरजीत**। पंजाबी, उर्दू, हिंदी में परस्पर अनुवाद। संपर्क : सी-34, सुदर्शन पार्क, नई दिल्ली 110015; मो. 9312124829

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारी गुफ़्तगू इस तरह शुरू हुई—

तीखी नज़रें हों, तुर्श अबरू-ए-खमदार रहे
बन पड़े, जैसे भी, सीनों में बेदार रहें

इन्हीं बेदार दिलों का यह सरमाया पाठकों की नज़र है। इस गुफ़्तगू के दौरान अकसर मुकामात पर मुझे इख़्तिलाफे-राय हुआ। आपको भी हो सकता है, मगर याद रहे...गुफ़्तगू का आग़ाज़ कुछ यों होता है। यह महज़ दो ज़हीन शायरों और अदीबों के माबीन एक गुफ़्तगू है, इंटरव्यू नहीं। **(—रफ़िआ शबनम आबदी)**

राही साहब : अच्छा तो मैं आपको परेशान करना शुरू करता हूँ। सबसे पहले तो भाई, मुझे बड़ी ख़ुशी है कि आज आपसे कुछ गुफ़्तगू करने का मौक़ा मिला है। इससे मैं ज़ाती तौर पर यह फ़ायदा उठाना चाहता हूँ कि मेरे अपने ज़ेहन में जो उलझनें हैं, वह साफ़ हो जाएँ, क्योंकि आप हमारे उन बुजुर्ग शायरों, नक़्क़ादों और मुफ़क्किरीन (विचारकों) में से हैं, जिन्होंने हमारी रहनुमाई की है और हमारे सियासी शऊर को बढ़ने और सही या ग़लत रास्ते पर चलने में मदद की है।

जाफ़री साहब : (हल्के-से तबस्सुम के साथ) यह 'ग़लत' लफ़्ज़ बहुत 'सही' है। क्या ख़ूब! सही या ग़लत रास्ता!

राही साहब : मैं गुफ़्तगू शुरू से करना चाहता हूँ कि 1935-36 में जब वह ज़रूरत महसूस की गई कि अदब में तरक़्क़ीपसंद तहरीक का आग़ाज़ किया जाए, तो उस वक़्त जो बुजुर्ग थे, जिनमें आप भी हैं। एक तरफ़ प्रेमचंद, मौलाना आज़ाद और हसरत मोहानी का सिलसिला जाता है, तो आप लोगों ने कुछ बुनियादी सवाल अदब के लिए उठाए थे उस वक़्त। मैं यह जानना चाहता हूँ कि आज 1990 में यानी 1936 से लेकर 1990 तक का जो हमारा ज़ेहनी सफ़र है, तो क्या आप यह चाहेंगे कि इन सवालों पर दोबारा ग़ौर किया जाए या उन बुनियादी सवालों की शक्ल में कोई तब्दीली करना चाहेंगे? क्या आप सोचना चाहेंगे कि वह सवाल अब बेमायने हो गए हैं और अब नए सिरे से कुछ नए, कुछ दूसरे सवाल उठाने चाहिए।

जाफ़री साहब : इस वक़्त आप यह वाज़ेह कर दें कि कौन-से सवाल ज़ेहन में हैं? यानी नवइयत सवालों की क्या है?

राही साहब : अदब के बारे में आप लोगों ने जो एक पूरा रवैया बनाया था कि अदब को इलियट क्लास में नहीं जाना चाहिए। अदब अवाम की बहबूद के लिए है, अवाम की लड़ाई के लिए है और अदब को वह जो वैस्टेड इंट्रेस्ट वाला क्लास है, उनके ख़िलाफ़ लड़ना है। अवाम, दुनिया और अपने मुल्क की बहबूद के लिए। और इसी में यह बुनियादी सवाल उठा था कि हमें हुस्न के मयार को बदलना होगा। जमालियत का यह सवाल इसी से निकला था, क्योंकि अब तक हमारा अदब जो था, वह इलियट में फँसा हुआ था और लगभग उन्हीं के मसाइल के बारे में सोचता था और उन्हीं के नुक़्ता-ए-निगाह के हिसाब से सोचता था, और हमारे शुअरा भी उस अंदाज़ से सोच रहे थे (जिनमें मौलाना हसरत मोहानी अलग हैं—एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सेक्शन है, जिन्होंने उर्दू ग़ज़ल को समझिए कि मुतवस्सित तबक़े के क़रीब जाने की कोशिश की थी) तो 1936 में जो सवाल आप लोगों ने उठाए थे, क्या उन सवालों पर दोबारा ग़ौर करना आप ज़रूरी समझते हैं ? या समझते हैं कि वह सवाल बईना वैसे के वैसे हैं—या कुछ नए सवाल अपने आप से करने पर आप तैयार हैं ?

जाफ़री साहब : बहुत अहम है यह बात और इसका जवाब देना आसान नहीं है, इसलिए...

राही साहब : मैंने पहले ही कहा था कि मैं आपको परेशान करूँगा।

जाफ़री साहब : ज़रूर कीजिए। वाक़ई, जवाब देना आसान नहीं है। फिर भी ज़रा तफ़्सील में जाना पड़ेगा। मैं ज़ाती तजुर्बे को मिलाकर चलूँगा, तो ज़्यादा अच्छा होगा। जिस वक़्त यह तहरीक शुरू हुई, उस वक़्त तीन-चार ग्रुप नौ-उम्र अदीबों के मुख़्तलिफ़ मुकामात पर कुछ सोच रहे थे, चुनाँचे हमसे पहले—साल-दो-साल पहले कहना चाहिए या तीन साल पहले—अख़्तर हुसैन रायपुरी, नागपुर में गाँधी जी और नेहरू जी के साथ मिलकर सोच रहे थे। पहले तो मैं इस फ़िज़ा और उस माहौल का ज़िक्र करूँगा, जिस माहौल में हम सोच रहे थे। इसलिए कि वक़्त और मुक़ाम—यह दोनों बहुत अहम होते हैं। अब मैं सियासी राह पर जाने पर मजबूर हो जाऊँगा। उस वक़्त यूरोप में फासिज़्म का उरुज था और हिंदुस्तान में हम इम्प्रिज़्म के ख़िलाफ़ लड़ रहे थे, और हमारे अदब में जो हमारी रिवायत थी, उसका बराए-रास्त रिश्ता हमारे समाज से हमारे बुज़ुर्ग क़ायम कर चुके थे। इसी वजह से सबके ज़ेहन में यह एक सवाल था कि हम अपने उस अदब का इस्तेमाल (इस्तेमाल के लफ़्ज़ पर हमारे बाज़ लोग जमालियाती नुक़्ता-ए-निगाह से एतराज़ करते हैं कि साहब अदब को आप इस्तेमाल नहीं कर सकते) लेकिन हमारे ज़ेहन में यह चीज़ थी कि हम अपने अदब को अवाम की बहबूद के लिए इस्तेमाल करेंगे और उसके लिए ज़बान की तब्दीली हमें बहुत ज़रूरी महसूस होती थी। जब प्रेमचंद ने कहा था : हमें हुस्न का मयार बदलना होगा, तो उसके पीछे ज़बान की तब्दीली भी शामिल थी...और वह किरदार भी शामिल थे, समाज के वह तबके भी शामिल थे, जो नज़रंदाज़ होते थे। अब उसकी अगर मैं हसरत के रिश्ते से चूँकि उनका नाम आया और ग़ज़ल के ताल्लुक से शुरू तो ग़ालिब की ग़ज़ल और हसरत की ग़ज़ल में जो बहुत बड़ा फ़र्क़ नज़र आएगा, यह वह है कि हसरत उर्दू ग़ज़ल की महबूबा को दरम्यानी तबके में तलाश करने में कामयाब हुए और ऐसे कामयाब हुए कि लोगों को नागवार नहीं गुज़रा और न महबूब के नंगे पाँव आने का कोई तसव्वुर ही नहीं था और फिर कोठे का लफ़्ज़ का इस्तेमाल कि...

दोपहर की धूप में मेरे बुलाने के लिए
वह तिरा कोठे पर नंगे पाँव आना याद है

ग़ालिब के यहाँ आपको 'बाम' मिलेगा (इससे ज़रा आगे चलें) तो जोश मलीहाबादी ने एक वुसअत यह दी कि लाला-व-गुल, जिसमें सारी बहार-सी आ जाती है। इसकी तौसीअ भी कर दी। उन्होंने बेले के फूलों का ज़िक्र किया। गेंदे के फूलों का ज़िक्र किया। उन्होंने पत्तों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के दोनों का ज़िक्र किया। जामुन वालियों का ज़िक्र किया। मेहतरानी पर नज़्म कहने की वजह से उन पर बहुत लानत-मलामत की गई, तो यह अदब की एक जुंबिश अवाम की तरफ़ थी।

मैं अब भी महसूस करता हूँ कि हमारा उर्दू ग़ज़ल-आश्ना मिज़ाज नसर (गद्य) में भी, जिसमें आराइशी हिस्सा बहुत ज़्यादा है और उस आराइशी हिस्से की वजह से हम बाज़ औक़ात अफ़कार की बुलंदी और वुसअत तक नहीं पहुँच पाते और उन्हीं लफ़्ज़ों में से हम वसीअतर मायनी निकालने की कोशिश करते हैं। अगर हम अंग्रेज़ी से मिसाल लें तो आज 1990 में इंग्लिस्तान का कोई शायर (रिवायती अंदाज़ में कह रहा हो या ग़ैर-रिवायती अंदाज़ से) शेक्सपियर की ज़बान में शायरी नहीं करता। मिल्टन की ज़बान में शायरी नहीं करता। हद यह है कि कीट्स और शेली की ज़बान में भी शायरी नहीं करता, लेकिन हम आज भी हाफ़िज़ शीराज़ी की ज़बान में शायरी करते हैं और हमारी तमाम ग़ज़लों में अल्फ़ाज़ का एक 'सेट' है--कोई पाँच सौ अल्फ़ाज़ का! उन्हीं से हम बड़े मुफ़ाहीम (अर्थ) पैदा करते हैं। इसलिए कि वह एक इस्तिआरा बन गया है। इस्तिआरा बनने की वजह से 'मैख़ाने' का लफ़्ज़ मुख़्तलिफ़-मुक़ामात पर मुख़्तलिफ़ मायनी अख़्तियार कर लेता है। मिसाल के तौर पर मैंने अभी इमाम खमीनी की ग़ज़लें पढ़ी हैं—फ़ारसी में। मालूम नहीं, आपकी नज़र से गुज़रीं या नहीं ?

राही साहब : जी नहीं!

जाफ़री साहब : इमाम खमीनी की ग़ज़लें, जिनमें इस तरह के अशआर कि ''मैं मस्जिद व मदरसा से बेज़ार होकर मैख़ाने में आ गया हूँ'', ''तुम्हारी आँखों का दीवाना होकर मैं आशिक़ हो गया हूँ'' वग़ैरह...और इस पर इनवान यह है कि यह इमाम खमीनी की रूहानी शायरी है। जब कोई तरक़्क़ीपसंद कहता है कि ''मैं मस्जिद व मदरसा से बेज़ार होकर मैख़ाने आ गया हूँ।'' तो उसे इंक़लाबी मायने दे दिए जाते हैं, और जब कोई लखनऊ का रिवायती शायर कहता है, तो हम कहते हैं, यह फ़रसूदा शायरी है।

राही साहब : हाँ, तो भाई (यहाँ मैं कतअ-कलामी की मुआफ़ी चाहता हूँ) आपके कहने से जो बात निकल रही है, वह यह कि शेअर का मतलब क़ारी (पाठक) ख़ुद निकालता है।

जाफ़री साहब : वह तो हर तरह से निकालेगा ही।

राही साहब : मसलन यह कि जब हम पढ़ते हैं, कि यह शे'र इमाम खमीनी का है, तो हम इसका दूसरा मतलब निकालते हैं और जब हमसे कहा जाता है कि यही शे'र सरदार जाफ़री का है, तो हम इसका दूसरा मतलब निकालते हैं, और यही शे'र अगर अख़्तरुलईमान ने कहा हो, (हालाँकि ऐसा होगा नहीं) तो हम इसका तीसरा मतलब निकालेंगे, तो तफ़हीम तो क़ारी का हक़ है।

जाफ़री साहब : मैं तफ़हीम पर ज़रा बाद में जाऊँगा। मैं तो 'आर्काइक' ज़बान की बात कर रहा हूँ। मिसाल के तौर पर 'ज़मीन कुए जानां'। यह तरकीब हम जब भी इस्तेमाल करेंगे, चाह मिल जाएगी किसी जगह भी...अभी मैंने (इस वक़्त पूरे यूरोप में, सोशलिज़्म में तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इंक़लाब आ रहा है, कुछ लोग उसे 'बुहरान' कहते हैं) इसमें चंद अशआर कहे हैं। वह पूरे-के-पूरे रिवायती ज़बान में हैं और शुरू का एक-शे'र इस तरह है कि—

अक़ीदे बुझ रहे हैं, शमा-ए-जाँ गुल होती जाती है
मगर ज़ौके-जनूँ की शोला-ए-सामानी नहीं जाती

अब देखिए, 'शमा-ए-जाँ'

राही साहब : हाँ, 'अक़ीदे बुझ रहे हैं' यही नई बात है। फिर 'ज़ौक़े-जनूँ की शोला-ए-सामानी...'

जाफ़री साहब : ख़ुदा मालूम, किस-किस के लहू की लाला-कारी है। अब देखिए यह 'ज़मीन कुए जानाँ' इसमें...

राही साहब : मगर भाई, अगर हमारे बुज़ुर्ग शुअरा ने यह मिसरा कहा होता, तो ज़ौक़े-जनूँ नहीं कहते 'शौक़े-जनूँ' कहते। यह जो 'ज़ौक' है, यह तरक़्क़ीपसंद तहरीक की देन है।

जाफ़री साहब : अब इसी में यह शे'र आ जाता है इस क़िस्म का—

परेशाँ-ए-रोज़गार आशुफ़ता-ए-हालाँ का मुक़द्दर है—
कि उस ज़ुल्फ़े परेशाँ की परेशानी नहीं जाती

राही साहब : परेशानी नहीं जाती...वाह!

जाफ़री साहब : ख़ालिस रिवायती...लेकिन इसके बाद एक शे'र और आता है :

थे ख़्वाबों के दिल में शोला-ए-ख़ुर्शीद महशर है
नए ख़्वाबों के दिल में शोला-ए-ख़ुर्शीद महशर है

राही साहब : नया—जदीद...

जाफ़री साहब : जी हाँ, बिलकुल—और आगे—

ख़मीरे-हज़रते-इंसाँ की सुलतानी नहीं जाती

तो यह जो जनतांत्रिक आंदोलन है, उसकी तरफ़ इशारा है। हाँ, तो मैं 'आर्काइक' ज़बान की बात कर रहा था। कश्मीर में जाड़े के ज़माने में जम्मू में मैं विज़िटिंग प्रोफ़ेसर की हैसियत से यूनिवर्सिटी गया, तो दिसंबर का महीना था। धूप में लड़के-लड़कियाँ घास पर बैठे हुए थे। मैंने जगन्नाथ आज़ाद से कहा, ''भई, मेरी एक नज़्म में एक शे'र है कि—

रास्ते दौड़ के स्कूलों में मिल जाते हैं
बच्चे फूलों की तरह घास पे खिल जाते हैं

मगर यह शे'र ग़ज़ल-आश्ना मिज़ाज को ख़ुश नहीं करता। हम आप इस शे'र से ख़ुश हो सकते हैं। दुनिया की किसी शायरी में जब यह ख़याल आएगा, इसकी दाद मिलेगी या मैंने 'नई दुनिया को सलाम' में इस क़िस्म के मिसरे भी कहे हैं—

चक्कियाँ चुप हैं, ख़ामोश हैं, गाँव की लड़कियाँ
चूड़ियाँ गुनगुनाती नहीं...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग़ज़ल-आश्ना मिज़ाज से बाहर—वह उससे ख़ुश नहीं होता, लेकिन मैं यह समझता हूँ कि ग़ज़ल की रिवायत को बरक़रार रखते हुए उसमें वसअत की सख़्त ज़रूरत है। ख़ास तौर पर ज़बान पर...रिवायत अपनी जगह क़ायम है। ज़बान की वुसअत भी नए मफ़ाहीम (अर्थ) के साथ नए अंदाज़ के साथ यह चीज़ करनी चाहिए...

राही साहब : भाई, यहाँ एक सवाल मैं खोजता चलूँ। यह जो 'आर्काइक' ज़बान आप कह रहे हैं, उस ज़बान से हमारी जान-पहचान तक़रीबन एक हज़ार साल पुरानी है फ़ारसी से!

राही साहब : जी, मैं तो अपने यहाँ की बात कर रहा हूँ।

जाफ़री साहब : हाँ, अपने यहाँ भी तक़रीबन तीन सौ साल पुरानी।

राही साहब : हाँ, तो यह डेढ़-दो सौ साल पुरानी जान-पहचान है, और हम इसमें रचे-बसे हैं और इसमें भी कि ज़बान हर इस्तिआरे को हमारे बुज़ुर्गों ने कैसे इस्तेमाल किया था और उनके क़ारईन ने उन्हें कैसे समझा था। वह तो हमारी रिश्तेदारी है इन लफ़्ज़ों से...वह जो 'हाली' ने एक बात कही थी कि भाई, नई बात कहो और फ़ॉर्म को मत बदलो।

जाफ़री साहब : इक़बाल ने भी यही कहा था।

राही साहब : हाँ, तो...एक न एक सहारा तो आप अपने क़ारी को देंगे न ? कि जिसकी उँगली पकड़कर वह हमारे शे'रों की गलियों में जाए। हम ख़याल भी ऐसा दे रहे हैं, जो उसके लिए अजनबी है, और ज़बान भी ऐसी दे रहे हैं, जो उसके लिए अजनबी है, तो उसमें उसका अंदेशा है कि उसका दिल उचाट हो जाएगा। मेरा ख़याल है कि 'आर्काइक' ज़बान, जिसको तरक़्क़ीपसंदों ने इस्तेमाल किया और जिसे आप 'आर्काइक' कह रहे हैं, वह सबसे बड़ा कारनामा है तरक़्क़ीपसंद अदीबों का कि उन्होंने उस ज़बान को, जिस ज़बान से हम वाक़िफ़ थे, उसकी शब्दावली वही इस्तेमाल की, लेकिन उन अल्फ़ाज़ के मुतालिब में यकसर बड़ी इंक़लाबी तब्दीलियाँ पैदा कीं।

जाफ़री साहब : उसके ज़रिये से हम तब्दीले-ख़याल में कामयाब हुए।

राही साहब : बिलकुल सही। अगर उसके बदले आपने कोई नई ज़बान गढ़ी होती, तो जहाँ तक आप पहुँचे, मेरे ख़याल में वहाँ तक पहुँचने में आप लोगों को दिक़्क़त होती।

जाफ़री साहब : नहीं, यह तो सही है कि जो ज़बान हमने इस्तेमाल की, पुरानी रिवायत को बरक़रार रखते हुए हमने उसको वुसअत दी, और जब तक कि ज़बान में ऐसी वुसअत नहीं जाएगी, उस वक़्त तक हम ज़्यादा बड़े तबके तक नहीं पहुँच सकते।

राही साहब : बिलकुल सही...जैसा आपने कहा—चूड़ियाँ गुनगुनाती नहीं, यह तो हसरत की रिवायत है!

जाफ़री साहब : जी हाँ! हसरत की रिवायत है, जोश की रिवायत है...

राही साहब : जो आपको उनसे विरसे में मिली और हमको आप से विरसे में मिली और हमारे बाद हमसे दूसरों को विरसे में मिलेगी, तो ज़बान तरक़्क़ी करेगी ही!

जाफ़री साहब : लेकिन ज़बान के अलावा भी एक और चीज़ है। वह यह कि एक मुक़ाम पर हमने पस्पाई क़बूल की है। गुज़िश्ता पचास साल में, हम कामयाब हुए मजूमई हैसियत से, इनफरादी हैसियत से कोई शायर कमतर है, कोई बुलंदतर! यह एक अलग बात

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है, और इस कामयाबी में जो सबसे बड़ा कारण था, उंसुर था, वह यह कि हमने आम ज़िंदगी, आम इंसानी मसाइल और नफ़सियात...इनको लिया, इनसे हमने मुँह नहीं मोड़ा और इनसे आँखें नहीं चुराईं। इसी वजह से हमें कामयाबी मिली, लेकिन हमारे कुछ मुख़ालिफ़ीन भी थे, वे शुरू से उसकी मुख़ालफ़त कर रहे थे। इसलिए कि वे इन नए ख़यालात से इत्तेफ़ाक़ नहीं रखते थे। जब सियासी, समाजी और तारीख़ी हालात की वजह से क़द्रों की शिकस्त व रेख़्त शुरू हुई,जो आज इस मंज़िल पर पहुँची है, तो हम में से कुछ लोगों ने (मैं उनमें नहीं हूँ) इसको क़बूल कर लिया कि हाँ साहब, हम ग़लती कर रहे थे। हमको कुछ बहुत ही उमूमी और अवामी अंदाज़ में कहना चाहिए था। कुछ इस तरह से कहना चाहिए था कि दाद मिल जाए। लेकिन अच्छे शायर या अच्छे अदीब का काम दाद वसूल करना नहीं है। उसका काम है रास्ते बनाना। इसलिए वह सवालात अपनी जगह पर बिलकुल बाक़ी हैं, जो सवालात हमने उठाए थे और जिनसे हम मुकम्मल तौर पर नहीं, किसी हद तक उहदा-बरआ हो सकते थे। आज वह ज़्यादा शिद्दत के साथ हमारे सामने हैं। रशीद अहमद सिद्दीक़ी ने तरक़्क़ीपसंद तहरीक को इस बात की दाद दी थी (हालाँकि वह इस तहरीक के बहुत बड़े मुख़ालिफ़ थे) कि तरक़्क़ीपसंद तहरीक ने फ़िरकापरस्ती के ख़िलाफ़ जो कारनामा किया है, वह उर्दू अदब में हमेशा यादगार रहेगा, और शुक्रगुज़ारी के साथ उसका ज़िक्र किया है। आज उससे ज़्यादा शदीद हालात हैं, और इसलिए हमारे यहाँ, बाज़ लोगों में यह कड़वाहट पैदा हो गई है कि हम इंसान की मुकम्मल शिकस्त को अपना मौज़ू बनाएँ, और इंसान की जद्दोजहद को अपना मौज़ू बनाएँ। इस रवैये की बुनियादी तब्दीली है, और इस तरह रवैये से बड़ी भारी तब्दीली आई है। इस तब्दीली के ज़ेरे-असर वक़्ती तौर पर हमारे कई तरक़्क़ीपसंद हैं, जिन्होंने पस्पाई क़बूल की।

राही साहब : एकाध शे'र उनका सुनाएँगे ?

जाफ़री साहब : इस तरह के अशआर...नहीं भई, बड़ा मुश्किल है। इस तरह के अशआर इसलिए भी नहीं सुनाना चाहिए कि मायूसी भी शायर और अदीब का हक़ है। उसे हक़ है कि वह किसी वक़्त बिलकुल मायूस हो जाए और निकल आए लेकिन मैं पस्पाई का ज़िक्र कर रहा हूँ।

राही साहब : जहाँ उन्होंने हथियार डाल दिए।

जाफ़री साहब : हथियार डाल दिए और यह कहकर कि हाँ साहब, आप सही कह रहे थे कि हम ग़लती पर थे, तो साहब एक चीज़ यह है। दूसरी चीज़ इसी के साथ-साथ यह है कि हमारे यहाँ इंतहापसंदी और तंगनज़री रही, जिससे तहरीक को नुक़सान पहुँचा, और इसमें हमने किसी को नहीं बख़्शा...और इसका रद्दे-अमल भी हुआ, लेकिन अब एक तवाज़ुन फिर क़ायम है, क्योंकि इन रवैयों पर नज़रे-सानी भी की गई, और की जानी चाहिए थी। अदब की तक़वियत के लिए यह भी ज़रूरी होता है, लेकिन इन रवैयों के एतबार से जो बुरी शायरी हुई या बुज़ुर्गों के साथ ज़्यादती हुई, उसका भी मेरे पास एक जवाब है (यह सही नहीं है, और ज़रूरी नहीं कि हर शख़्स इसको तसलीम करे) वह यह है कि—जब कोई तहरीक या कोई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अहम-अदीब या शायर आता है, और वह अपने लिए ज़मीन तैयार करना शुरू करता है, तो वह अपने बुज़ुर्गों के बाज़ रवैयों से इख़्तलाफ़ करता है, बक़ौल ग़ालिब—

आंकस कि भुद साहबे-नज़र, पीरेमफाँरा ख़ुश न मकरो

मैं यहाँ से उधर को चलूँ कि साहब, हमने इक़बाल पर हमला किया। इक़बाल ने हाफ़िज़ शीराज़ी पर हमला किया। इक़बाल अपना रास्ता नहीं बता सकते थे, क्योंकि उनका जो आहंग है, उनका जो फ़लसफ़ा-ए-ख़ुदी है और जो वह मिल्लत (धर्म) को बेदारी का सबक़ दे रहे हैं, मैं कहता हूँ कि जो हज़रत मूसा ने वादे किए थे कोहे-नूर से, तो इक़बाल कोहे-तूर से बोलते हैं और इसीलिए हाफ़िज़, जो कोहे-तूर से नहीं बोलता, बल्कि महबूब की गली से बोलता है और मैख़ाने के दरवाज़े से बोलता है, तो वह हाफ़िज़ उनको नागवार था, लेकिन हाफ़िज़ ने बड़ा सख़्त इंतक़ाम लिया इक़बाल से और वह यह कि इक़बाल की सारी फ़ारसी ग़ज़ल...

राही साहब : हाफ़िज़ के रंग में नहाई हुई है।

जाफ़री साहब : हाँ जी... पयामे मशरिक़...सारा हाफ़िज़ का दीवान है। मैंने उसको इस तरह से कहा है कि शीराज़ के बुलबुल ने लाहौर के शाहीन को पटक दिया, तो उसमें कोई मज़ाइक़ा नहीं है। बशर्ते कि हम अपना तवाज़ुन बरक़रार रखें। इक़बाल ने नज़र-सानी की अपने रवैये पर हाफ़िज़ के सिलसिले में। हमने इक़बाल के सिलसिले में नज़रे-सानी की और हमारे आजकल के नौजवान...वह जब हम पर हमला करते हैं, तो हमने देखा है (एक और चीज़ भी देखी है। इस पर मैं बहस नहीं करूँगा) वह यह कि थोड़ी देर के बाद मअज़रत का अंदाज़ अख़्तियार करते हैं कि 'नहीं साहब, हमने यों नहीं कहा था। हमने तो यों कहा था!' तो मैं उनसे कहता हूँ कि भई, खुलकर कहो। इसलिए कि तुम अपना...

राही साहब : भाई, इसमें क्या है कि पहले नज़र हो, तो तब नज़रे-सानी हो न? (ठहाका) बुनियादी सवाल तो वहाँ से पैदा होता है कि नज़र है कि नहीं, क्योंकि जब हम किसी सवाल पर सोचेंगे, तो हम आगे चलकर फिर आत्ममंथन करेंगे कि नहीं, भई, हमने यह ग़लत किया है। हमने यह सही किया या हमको यह नहीं करना चाहिए था या हमको शिद्दत के साथ करना चाहिए था, लेकिन हमने तो सोचने का काम लगभग बंद कर रखा है...

जाफ़री साहब : लेकिन इस तहरीक ने जो बहुत बड़ा काम किया है, वह यह कि मैं इसी बात पर जा रहा हूँ कि "हमें हुस्न का मयार बदलना होगा!" उसने अल्फ़ाज़ के मायनी बदल के नये तसव्वुरात ढाल दिए, जैसे कि इक़बाल ने 'ख़ुदी' के लफ़्ज़ के मायनी बदल दिए। मजाज़ ने आवारा के मायनी बदल दिए। मजाज़ की नज़्म 'आवारा' को मैं उस अहद की नहीं, बल्कि पूरी तरक़्क़ीपसंद तहरीक की बड़ी नुमाइंदा नज़्म समझता हूँ, और यह बड़ी नज़्म है। उसका शुमार बड़ी शायरी में होता है। मैं समझता हूँ कि इसका मतलब यह नहीं कि मजाज़ ने एक बड़ी नज़्म कह दी, तो वह बड़े शायर हो गए। अज़ीम इन मायनों में नहीं हो सकते। मैं बड़ी शायरी के लिए तीन-चार चीज़ें इस्तेमाल करता हूँ। एक [illegible] (फ़ारसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के एतबार से यह तरकीब ग़लत है, लेकिन मैं इस्तेमाल करना चाहता हूँ) जो हमारे असातिज़ा (उस्ताद) की देन है कि—मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है।

राही साहब : सहले-ममतनअ जिसे कहते हैं...

जाफ़री साहब : जी हाँ, सहले-ममतनअ...तो मैं इज़हार के लफ़्ज़ के साथ चलता हूँ। इसके साथ नुदरते-इज़हार कि जो तख़ैयुल की कार-फ़रमाई है, और इसके बाद 'अज़मते-इज़हार' जो फ़िक्र की कार-फ़रमाई है, इसकी वजह से इसमें तासीर पैदा होती है। मजाज़ के यहाँ सहूलते-इज़हार के साथ-साथ नुदरते-इज़हार भी इस्तेमाल किया गया है, और उसमें फ़िक्र (चिंतन) की एक नई नहज (पद्धति) है, और इस नई नहज में मैंने इस पर ग़ौर किया कि हमारे असातिज़ा के यहाँ शायद नहीं मिलेगी यह चीज़, लेकिन मैं यह यक़ीन के साथ नहीं कह सकता। जोश के यहाँ मौजूद हैं और मजाज़ के यहाँ मौजूद हैं कि तशबीहों और इस्तिआरों से हमने समाजी तनकीद का काम लिया। मैं पहले जोश का एक शे'र सुनाऊँ फिर मजाज़ की 'आवारा' का एक बंद सुनाऊँ। जोश की 'गरमी और देहाती बाज़ार' बहुत अच्छी नज़्म है, ये नज़्में पाब्लो नेरुदा के यहाँ भी मिलती हैं—बिलकुल इसी तरह की नज़्में...बाज़ार और वही बाज़ार, क्योंकि लैटिन अमेरिका और हिंदुस्तान—दोनों बहुत मिलते-जुलते हैं। उसमें एक शे'र है—

माँओं के कंधों पे बच्चे गरदनें डाले हुए,

(मुझे शे'र अच्छी तरह याद नहीं)—

तेज़ किरनें यों कि जैसे रूह पे अक्से-गुनाह

राही साहब : ख़ूब!

जाफ़री साहब : नहीं, नहीं... ग़ालिबन शे'र यों है—

तेज़ किरनें जैसे बूढ़े सूदख़ोरों की निगाह
धूप की तेज़ी कि जैसे रूह पर अक्से-गुनाह

अब यह जो है कि 'जैसे रूह पर अक्से-गुनाह' और 'बूढ़े सूदख़ोरों की निगाह' इसमें पूरी समाजी तन्क़ीद है और पूरा हमारा उस वक़्त का समाज ज़िंदा है। आज भी यही है।

इसी तरह मजाज़ की 'आवारा' में—

इक महल की आड़ से निकला वह पीला माहताब
जैसे मुल्ला का अम्मामा, जैसे बनिए की किताब
जैसे मुफ़लिस की जवानी, जैसे बेवा का शबाब

इसमें भी, इन तशबीहों में पूरा समाजी शऊर जलवाग़र है, महल और उसका जो पूरा रिश्ता है, बनिए के साथ, बेवा के साथ और मुफ़लिस के साथ—

राही साहब : ग़ालिब ने नहीं कहा था—

क़र्ज़ की पीते थे मै, लेकिन समझते थे कि हाँ
रंग लाएगी हमारी फ़ाक़ा-मस्ती एक दिन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

या मीर ने कहा था—

दिल की वीरानी का क्या मज़कूर है
यह नगर सौ मरतबा लूटा गया

या कि—

दिल की बरबादी की इस हद है ख़राबी कि न पूछ
जाना जाता है कि इस राह से लश्कर निकला

तो भई, बड़ी शायरी तो समाज से नाता तोड़ के पैदा हो ही नहीं सकती...

जाफ़री साहब : मेरे ख़याल में इससे तो इख़्तिलाफ़ मुमकिन नहीं है कि तरक़्क़ीपसंद तहरीक ने, अदीबों ने और शायरों ने एक नई जमालियाती फ़िज़ा पैदा की,जो हमारी क़दीम जमालियाती फ़िज़ा से मुख़्तलिफ़ है...

राही साहब : मगर मैं फिर पहले सवाल की तरफ़ लौटता हूँ कि क्या कोई नया सवाल आप करना चाहेंगे या 1936 के सवाल ही काफ़ी हैं?

जाफ़री साहब : नहीं, काफ़ी तो कभी नहीं होते, क्योंकि नए ज़माने में नए सवाल...

राही साहब : तो क्या नए सवाल वही हैं?

जाफ़री साहब : नए सवाल तो वही हैं, जो मैंने कहे हैं कि 'ज़मीने-कुए जाना'।

राही साहब : उसके बारे में तो अलग से सवाल करूँगा। अच्छा दूसरा सवाल, चूँकि इधर हमलोग ज़बान ही की बात कर रहे हैं।

जाफ़री साहब : हाँ, एक चीज़ और है। अच्छा...कि हमने अपने अदब को सियासत से ज़रूरत से ज़्यादा वाबस्ता किया है। उसमें कमी की बड़ी ज़रूरत है और प्रेमचंद ने जो बात बताई थी, उस पर हमने अमल नहीं किया। हमने उस पर तो अमल किया कि हुस्न का मयार बदलना होगा, मगर...

राही साहब : हुस्न को छोड़ दिया...

जाफ़री साहब : नहीं, हुस्न को छोड़ा तो नहीं है सिर्फ़ मयार बदला है, लेकिन प्रेमचंद ने यह भी कहा था कि अदब सियासत के पीछे चलनेवाली शै नहीं है। यह मशाल है, जो सियासत के आगे-आगे चलती है...

राही साहब : जो नहीं हुआ।

जाफ़री साहब : जो नहीं हुआ।

राही साहब : इस पर आप यह नहीं समझते कि यह जो अदब सियासत के साथ पीछे चलने लगा है, यह जो हमारी क़ौमी तहरीक थी, जो हिंदुस्तान की आज़ादी के लिए लड़ रही थी, और इसके जो रहनुमा थे, चाहे वह दाहिने हाथ वाले हों, चाहे वे बायें हाथ वाले, चाहे बीच वाले—सबको अदब की सियासी अहमियत का इतना एहसास नहीं था, जितना उन्हें होना चाहिए था। उन्होंने शायरों को मजमा लगाने के लिए इस्तेमाल किया। उन्होंने शायरों को किसी लीडर की तकरीर सुनाने के लिए पहले स्टेज पर इस्तेमाल किया। उन्होंने इलेक्शन में शायरों को पोस्टर की तरह इस्तेमाल किया, लेकिन हमारी सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी, जैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कांग्रेस—उसने कभी अदब के मसाइल या अदीब के मसाइल या अदब की क्या ताक़त है, इसकी तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया। अब चूँकि लड़ाई आज़ादी के लिए चल रही थी और जो भी था, वह यही कह रहा था कि पंडित नेहरू के पीछे चलो। महात्मा गाँधी के पीछे चलो। फलां के पीछे चलो, तो अदीब भी उनके पीछे चलने लगा। इस तरह क्या हमारी सियासी तहरीक पर यह इल्ज़ाम आयद नहीं होता कि उसने...

जाफ़री साहब : बेशक, सियासी तहरीक पर इल्ज़ाम आयद होता है और सिर्फ़ कांग्रेस पर ही नहीं, बल्कि हर सियासी पार्टी पर...

राही साहब : मैं सभी पार्टियों के बारे में कह रहा हूँ, लेकिन ज़्यादातर कांग्रेस, जिसने तरक़्क़ीपसंद तहरीक की रहनुमाई क़बूल की, उस पर भी यह इल्ज़ाम आयद होता है कि उसको अदब की अहमियत का अंदाज़ा नहीं था...

जाफ़री साहब : अदब की जमालियात का कोई अंदाज़ा नहीं। अदब की अहमियत का कोई अंदाज़ा नहीं है, लेकिन इसमें एक चीज़ है। वह यह कि मैं अदब को दो हिस्सों में बाँटता हूँ। एक अदब हमें चाहिए नीची सतह का और एक हमको चाहिए, आला सतह का। नीची सतह से मेरी मुराद है, जो हमारी तहरीकों में, सबसे पहले इस्तेमाल हो सके। यह काम हमसे बहुत पहले हुआ, मसलन, बंगाल की तक़सीम के बाद टैगोर ने गीत लिखे और तक़सीम के ख़िलाफ़ जुलूसों में पढ़े और टैगोर ने जो आला दर्जे की शायरी की...

राही साहब : नहीं भई, वह शायरी जो हम करें, जुलूस में पढ़ने के लिए, और एक वह शायरी जो हम करते हैं, अदब के लिए। जो हमारी अदबी शायरी है, तो वह शायरी जुलूस के लिए लिखी जा रही है, इसलिए कि वह तो हमारा सियासी अक़ीदा है। जिस सियासी जमात से हम मुंसल्लिक (जुड़े) हैं, उसी सियासी जमात को ज़रूरत है इस क़िस्म की नज़्म की। उसको तो शायरी मानना मुश्किल है...

जाफ़री साहब : उसको जमाअती कहने की ज़रूरत नहीं है कि यह बिलकुल ऐसा है, जैसा कि मीर का शे'र है कि 'चोर-चक्के' या वह शे'र..

सुना है मैंने उसे खेते तिरे ख़िलवत-नशीनों से
कि तू दारू पिया है रात को मिलकर कमीनों से

राही साहब : क्या अब इसको हम मीर का नुमाइंदा शे'र कहेंगे? मेरा मतलब है कि हम मीर का मुक़ाम मुतऐइन (निश्चित) करेंगे, तो क्या अदब में इस शे'र पर ग़ौर करेंगे?

जाफ़री साहब : नहीं...नहीं...अर्ज़ यह करना था कि यह अशआर जो तहरीक के लिए इस्तेमाल हुए...

राही साहब : नहीं, इसको शायरी में मत लाइए...

जाफ़री साहब : शायरी में क्यों न लाएँ?

राही साहब : नहीं भई, यह शायरी में कैसे आएगा कि—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

यह जो है हिटलर का चेला, हमारे साथी जाने न पाए

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह कोई शायरी है !...

जाफ़री साहब : यह ज़रूरत की शायरी है...

राही साहब : ज़रूरत थी, इसलिए तुकबंदी की गई, मगर इसको शायरी का दर्जा देना तो मुश्किल है। कम-अज़-कम आपसे मुझको इस बात की उम्मीद नहीं थी। मैं साफ़ कह दूँ...

जाफ़री साहब : दो सतह की शायरी...भई, देखिए, तो सबसे हाँ मिलेगी।

राही साहब : नहीं, नहीं, मिलने का सवाल नहीं, मैं यह कह रहा हूँ कि जब आप मीर के तालिबे-इल्म हैं, और जब आप मीर पर मज़मून लिखने बैठते हैं, मीर की शायरी पर तो...रुतबे के तएइन में आप उस पर तो नहीं जाएँगे ना...चोर-उचक्के ...फलाना ढमका...

जाफ़री साहब : रुतबे का तएइन तो हम करते हैं, आला दर्जे की शायरी से...

राही साहब : तो शायरी तो वही है ना? जिसे आप आला दर्जे की कह रहे हैं?

जाफ़री साहब : और ज़रूरत वाली शायरी जो है...

राही साहब : ज़रूरत वाली शायरी नहीं, तुकबंदी है।

जाफ़री साहब : (मुस्कुराकर) अच्छा, आप तुकबंदी कह लीजिए।

राही साहब : वह तुकबंदी है। ज़रूरतन की गई। सियासी दुश्मनियाँ होती हैं।

(यहाँ सामईन में सुलताना जाफ़री कुछ पहलू बदलती हैं और नज़ीर की शायरी को दरम्यान में ले आती हैं कि वह भी तो ज़रूरत की शायरी थी, लेकिन उसे 'नेचुरल शायरी' कहकर बात मुकम्मल हो जाती है। मासूम रज़ा उसे ज़रूरत की शायरी क़रार नहीं देते। बात फिर आगे बढ़ती है...)

जाफ़री साहब : भई देखिए, एक शायरी का अवामी धारा है और एक शायरी का...

राही साहब : मेरा मतलब है, शायरी एक धारा है। एक दरिया है, जो बहता चला जा रहा है। कहीं किनारे बदल जाते हैं। कहीं कश्तियाँ बदल जाती हैं। कहीं वीराना आ जाता है। कहीं महल आ जाता है, पर दरिया तो बहता चला जाता है, तो उस दरिया को उस किनारे की वजह से कि वह अवामी दरिया हो गया, यह ख़्वास का दरिया हो गया और वह मुतवस्सित तबके का दरिया हो गया, इस तरह से तो...

जाफ़री साहब : नहीं, इस तरह मुनासिब नहीं है। है यह वही दरिया, मगर इस दरिया में कहीं तिनके भी बह रहे हैं, और कहीं गुलाब भी...

राही साहब : हाँ, वह तो सही है, लेकिन इस तरह कहना कि यह अवामी सतह की शायरी है और यह आला दर्जे की शायरी है तो इस तक़्सीम को हलक़ से उतारने में भाई ज़रा परेशानी है...

जाफ़री साहब : भई, इसमें इख़्तिलाफ़ की गुंजाइश है। मैं तो समझता हूँ कि हर शायर जो है, दो तरह की शायरी...

राही साहब : आप अपने शे'र सुनाइए। जो अवामी कहे हों। सुनाइए...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

जाफ़री साहब : (सोचकर) हमने कहा है कि—

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज टकराते हैं ईवाने-हुकूमत से अवाम
साथियों, लाल सलाम...

राही साहब : अच्छा तो क्या इसको आप अपनी शायरी यानी यह कि...जब कभी आप अपनी शायरी का जायज़ा लेने बैठेंगे, तो इस शे'र का ज़िक्र आएगा कि अली सरदार जाफ़री शायर कैसे थे तो... ?

जाफ़री साहब : इसका जिक्र यों आएगा कि यह अदना दर्जे की शायरी थी...

राही साहब : जब आपने ख़ुद ही इसको काट दिया कि यह अदना दर्जे की शायरी है, तो जब हम अदना दर्जे की शायरी ख़ुद ही मान रहे हैं, फिर हम इसको शायरी का रुतबा क्यों दें ? शायरी का दर्जा क्यों दें ? भई, हमारी ज़रूरत यह है कि चाहे भिंडी ख़रीदकर ले आएँ, क्योंकि भई, आज हम मुर्ग़ी नहीं खा सकते या बटेर नहीं खा सकते, तो ठीक है, भिंडी खाएँ, लेकिन इसका यह मायने नहीं कि भिंडी बटेर से अच्छी है।

(ख़ाकसार ने यहाँ यह कहकर मुदाख़लत करने की जुर्रत की कि भिंडी का भी तो अपना मज़ा है और कभी-कभी मुर्ग़ी से ज़्यादा लज़ीज़ लगती है, लेकिन राही साहब उसे मुर्ग़ी का दर्जा देने से मुनकर रहे। और इस अटल इंकार को देखकर जाफ़री साहब ने गुफ़्तगू को मेहमेज़ लगाई...)

अब भाई, जो अगला सवाल करना चाह रहा हूँ, वह ज़बान के मुतअल्लिक़ (संबंध में) है। अभी ज़बान की बात हो रही थी कि...

जाफ़री साहब : आप उससे मुतफ़िक़ हैं कि उर्दू शायरी की ज़बान को वुस्अत की ज़रूरत है...

राही साहब : जी हाँ! बिलकुल...मेरा अपना सोचने का तरीक़ा भाई यह है कि 1936 में जो अदबी ज़बान ईज़ाद की गई थी। ख़ास तौर पर शायरी की...उसमें हमने यह किया कि यह जो हमारे पुराने इस्तिआरे (रूपक) थे, उनके मुतालब में तौसीअ की और कहीं-कहीं उनका मतलब बिलकुल बदल दिया...

जाफ़री साहब : सिर्फ़ इस्तिआरों का ही मतलब नहीं बदला, बल्कि कई ऐसे शे'र भी कहे, जिनका शुमार मैं बड़ी शायरी में करता हूँ। मेरी नज़र में हिंदुस्तान की पंद्रह-सोलह ज़बानों की शायरी है, क्योंकि मैंने उस पर काम किया है एक ज़माने में। मैं जज़्बी का एक शे'र सुनाता हूँ—

जब जेब में पैसे बजते हैं, जब पेट में रोटी होती है
उस वक़्त यह ज़र्रा हीरा है, उस वक़्त यह शबनम मोती है

राही साहब : नहीं, यह तो हमारे उनके दरम्यान इख़्तिलाफ़े शायरी की तारीफ़ में है। मैं जो कह रहा था कि हिंदुस्तान में मौज़ूअ भी बदला। इस्तिआरे भी बदले। उसके मफ़ाहीम में तौसीअ की तो ज़ाहिर है कि सारे हिंदुस्तान में तहरीके-आज़ादी चल रही थी। कुछ ख़यालात थे, जो सारे मुल्क में तैर रहे थे और हर ज़बान के शायर ने इन ख़यालात को लिया और अपनी ज़बान के एतबार से उसमें इज़हार किया। मैं यह कह रहा था कि अब तक नौ ज़बान थी,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारी 1936 की, वह 14 अगस्त, 1947 तक तो साथ आई। 14 अगस्त को हमारे मुल्क में एक ज़बरदस्त तब्दीली हुई। वह आधी-अधूरी तब्दीली ही सही, मगर तब्दीली हुई और वह यह कि हम ग़ुलाम थे, आज़ाद हो गए। तो जो शायरी के लिए हमने ग़ुलाम हिंदुस्तान में बनाई थी, वह आज़ाद हिंदुस्तान की ज़रूरतों को पूरा नहीं कर सकती थी, और उसके लिए हमें शायरी में एक नई ज़बान की ज़रूरत थी और मेरा ख़याल है कि उथल-पुथल चल रही है और अभी तक हमारे शायर ज़बान बनाने, गढ़ने, या उसे कोई शक्ल देने में कामयाब नहीं हुए हैं और मुझे लगता है, दस-बीस बरस में कोई नई ज़बान बन जाए, लेकिन यह बात सही है कि हमें हमारी शायरी के नए तकाज़ों को और नई अदबी ज़रूरतों को पूरा करने के लिए एक ज़बान की ज़रूरत है।

जाफ़री साहब : हमारे यहाँ एक निशात की लहर है, जो अब भी बाक़ी है। मसलन-यह कि वहीद अख़्तर ने मीर की ज़मीन पर एक शे'र कहा। मैं यह शे'र अकसर कोट करता हूँ और ग़ज़ल में तो यह बात अकसर कही जाती थी कि साहब देखिए, फलाँ उस्ताद ने यों इस्तेमाल किया है और मैंने यों इस्तेमाल किया है। तो वहीद अख़्तर गर्व से सिर उठाकर कह सकता है कि ''साहब, मैंने लश्कर का क़ाफ़िया मीर के बाद इस तरह इस्तेमाल किया है। मीर का मशहूर शे'र है कि—

दिल की बरबादी की इस हद है ख़राबी कि न पूछ
जाना जाता है कि इस शहर से लश्कर निकला

उसने कहा—

कल जहाँ ज़ुल्म ने काटी थीं सिरों की फ़सलें
नम हुई है, तो इसी शाख़ से लश्कर निकला

राही साहब : वाह......नया निकाला है ?

जाफ़री साहब : बिलकुल नया साहब...और इस पर उसको एतिमाद है। उसने यह भी कहा कि—

हर पैग़म्बर से सहीफ़े का तक़ाज़ा न हुआ
हक़ का यह क़र्ज़ भी निकला, तो हमीं पर निकला

राही साहब : वाह...वाह !...मैं एक बड़ा बेहूदा सवाल करना चाहता हूँ कि आप जो शायर भी हैं, नक़्क़ाद (समीक्षक) भी हैं, तो वह जो अली सरदार जाफ़री नक़्क़ाद है और वह अली सरदार जाफ़री—जो शायर है, उनकी शायरी में, ख़ास तौर पर उनके लहजे, उनके असलूब और उनकी नज़्मों की जो बनावट है, उसके बारे में इस नक़्क़ाद की क्या राय है ?

जाफ़री साहब : मैं हमेशा बार-बार यह लिखता रहा हूँ। कहता रहा हूँ। फिर कह रहा हूँ कि मैं नक़्क़ाद नहीं हूँ। इसलिए कि नक़्क़ाद की जो तरबियत होती है, और ख़ास तौर पर यूरोप की तनकीदी किताबें पढ़-पढ़कर। वह मेरी तरबियत नहीं है। मैंने पुराने शायरों का जायज़ा लिया। उसमें ग़ालिब और मीर के अलावा कबीर भी हैं। मीराबाई भी हैं। रूमी भी हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाफ़िज़ शीराज़ी भी हैं। मैंने बार-बार लिखा कि उनका जायज़ा इस नज़र से लेता हूँ कि मैं अपनी शायरी के लिए मयार बना सकूँ। तलाश कर सकूँ अपनी शायरी की तरबियत के लिए... तो यह कि मैं अपनी शायरी के बारे में सही राय तो नहीं दे सकता...

राही साहब : भई, यह समझिए कि यह शायरी मैंने की है।

जाफ़री साहब : इसके बाद भी यह बात बड़ी ज़ाती हो जाती है। बात यह है कि मेरी शायरी के कुछ हिस्से जो ख़राब हैं और मैं जो इस वक़्त अपनी एक किताब संपादित कर रहा हूँ, कुल्लियात की शक्ल में। उसमें से मैं उनको काट रहा हूँ। मुमकिन है कि कई ग़लत चीज़ें कट जातीं और कुछ ऐसी हैं, जो इतनी नई हैं, जिन्हें हमारे लोगों को क़बूल करने में दुश्वारी है, लेकिन उसकी दाद मुझे ऐसे बाज़ हलकों से मिली कि मुझे अपनी शायरी पर यक़ीन आ गया, बल्कि यक़ीने मोहकम (दृढ़) हो गया। मसलन, कि जाफ़र अली ख़ाँ असर अगर मेरी किताब *नई दुनिया को सलाम* को दाद देते हैं, तो फिर मैं इसकी परवाह नहीं करता कि कौन इसकी बुराई कर रहा है। इसी तरह मेरी नज़्म 'पत्थर की दीवार' जब आई 1953 में, तो उस पर किसी ने तबसरा नहीं किया। सिर्फ़ एक तबसरा आया और वह मसऊद हुसैन ख़ाँ का था, जिसमें उन्होंने यह कहा रेडियो पर कि यह शायरी नहीं है। इसमें सिर्फ़ एक नज़्म है, जो क़ाबिले-बरदाश्त है, लेकिन मुझे जो तजुर्बा हुआ और वह बिलकुल इसके प्रतिकूल है। मैं 1954 में दिल्ली में जामा मस्जिद के उर्दू बाज़ार में एक दुकान में बैठा हुआ था। मौलवी समीअ उल्लाह भी बैठे हुए थे कि किसी ने मुझसे कहा कि ऐंग्लो अरेबिक कॉलेज में मुशायरा हो रहा है। आप भी चलिए। मैंने कहा—मेरा पुराना कॉलेज है। मेरे पास दावत तो नहीं है। चलो, चलते हैं! वहाँ जो गया, तो मैंने देखा कि उसकी सदारत ख़्वाजा ग़ुलामुस्सैयदेन कर रहे हैं और डॉक्टर आबिद हुसैन वग़ैरह दर्शकों में मौजूद हैं। मालूम यह भी हुआ कि उन्होंने चंद मख़्सूस शायरों को दावत दी है और उनसे यह भी कहा है कि आप अपने कलाम के बारे में कुछ कहिए और अपनी बेहतरीन नज़्म सुनाइए। चुनांचे मैंने वहाँ 'पत्थर की दीवार' सुनाई। बहुत मक़बूल हुई और डॉक्टर आबिद हुसैन ने यह कहा कि तरक़्क़ीपसंद शायरी जवान हो गई है। उस दाद के बाद मेरी यह नज़्म जामा, अलीगढ़ के लिए क़ाबिले-क़बूल हो गई, लेकिन नक़्क़ादों के हलक़ों में नहीं। उसके बाद उसी कॉलेज में दस-बारह दिन के बाद एक और मुशायरा हुआ। उसकी सदारत मौलाना अबुलकलाम आज़ाद ने की और मख़दूम मोहीउद्दीन भी वहाँ मौजूद थे। वहाँ मैंने यह नज़्म फिर सुनाई। मौलाना आज़ाद का ज़ौक़ बड़ा क्लासिकी था। उन्होंने मुशायरे के बाद मुझसे और मख़दूम मोहीउद्दीन से कहा कि आप मुझसे मिलने आइए। वक़्त फ़ौरन दे दिया। हम उनके दफ़्तर में उनसे मिलने गए। बहुत देर बातें करते रहे। शायरी पर उन्होंने कोई बात नहीं की, लेकिन उन्होंने बुलाया तो शे'र सुनने के लिए ही था। फिर उन्होंने कहा कि मेरे भाई! मैं भी कम्यूनिस्ट था और अब भी हूँ, लेकिन तशद्दद के दायरे से बाहर! मैंने उसको भी अपनी शायरी के लिए दाद समझा। *पत्थर की दीवार* के ज़मन में उसके बाद 1984 में कराची में एक वाक़िया हुआ। मैं जिस किताब का नया एडीशन निकाल रहा था, उसमें यह दीबाचा है कि इशरत आफरीं ने मुझे एक लड़की से मिलाया, तो उसने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझसे कहा, आप मेरे यहाँ कल खाना खाने आइए! मैं ख़ामोश हो गया। मैंने सबते-हसन से पूछा—भई, तुम जानते हो, कौन है? उसने कहा—नहीं! ठीक है, चलो! वहाँ जो गया, तो उसके वालिद, वह लड़की (इनकी तसवीरें भी मेरे पास हैं) और जितने लोग वहाँ जमा थे, उनमें अक्सरियत ऐंग्लो अरेबिक कॉलेज के तुल्बा की थी,...

राही साहब : ए हे...

जाफ़री साहब : और वहाँ सिर्फ़ मैं शे' र सुनानेवाला। वे शे' र सुनते रहे। फिर फ़रमाइश हुई कि 'पत्थर की दीवार' सुनाइए।'' मैंने कहा—मुझे पूरी याद नहीं। अगर मैं कहीं रुक जाऊँ। भूल जाऊँ, तो मुझे मुआफ़ कीजिए। उनमें से एक साहब ने जेब में से एक किताब निकाली। *पत्थर की दीवार!* मैंने कहा—यह आपको कहाँ से मिली? कहने लगे—यह ज़ीरोक्स कॉपी है और यह मुझे तकरीरी मुक़ाबले में इनाम के तौर पर मिली थी।

इसके बाद एक और वाक़िया हुआ। लाहौर में फ़ैज़ का जश्न था। यहाँ से हम, मज़रूह और कैफ़ी गए थे। सबसे आख़िर में मेरी बारी आई। जैसे ही मैं खड़ा हुआ, आवाज़ें आईं—''पत्थर की दीवार, पत्थर की दीवार!'' मैंने वहाँ भी यह कहा कि मैं भूल रहा हूँ। मुआफ़ कीजिए! कहने लगे—मुआफ़ नहीं करेंगे। आप सुनाइए तो...!

राही साहब : हम बतलाएँगे!

जाफ़री साहब : जी हाँ। यही हुआ। साहब, मैं जहाँ रुकता, वह मिसरा देते थे।

राही साहब : तो असली मक़बूलियत इसी को तो कहते हैं। जब मैंने नक़्क़ाद कहा था, तो पेशेवर नक़्क़ाद की बात नहीं कर रहा था। दरअसल हर शायर में एक नक़्क़ाद होता ही है!

जाफ़री साहब : तो मेरी भी इन चीज़ों पर नज़र है। एक चीज़ और है। अब जो यह 'अवध की ख़ाके-हसीं' है। इस नज़्म की तारीफ़ एक ऐसे शख़्स ने की, जिसको मैं नहीं जानता, जिसने मेरी सारी शायरी यह कहकर रद्द कर दी कि इसमें कम्युनिज़्म के मुतअल्लिक़ कुछ है, तो वह बेकार है, लेकिन यह नज़्म जो है, वाल्ट-ह्विटमैन और कालिदास की याद दिलाती है। यह मुहम्मद सादिक़ है। *हिस्ट्री ऑफ़ उर्दू लिटरेचर* के मुसन्निफ़ (लेखक)। अब उसमें जो बहर मैंने इस्तेमाल की है, वह बह्र आज की आज़ाद शायरी की सबसे मुतरन्नुम बह्र है।

राही साहब : जो *पत्थर की दीवार* में है।

जाफ़री साहब : नहीं, *पत्थर की दीवार* की बह्र ज़रा-सी अजनबी है। *एशिया जाग उठा* में यही बह्र है। और देखिए, *एशिया जाग उठा* को कहाँ से इनाम मिला? मलयाळम ज़बान से। कुमारन् आशान सोसाइटी ने मुझे इस पर अवार्ड दिया और उसका तर्जुमा भी मलयाळम ज़बान में किया। अभी पिछले साल नेहरू सदी के सिलसिले में साहित्य अकादेमी ने हर ज़बान के एक-एक शायर को बुलाया, तो मैंने अपनी दो नज़्में पढ़ीं—'मेरा सफ़र', 'हाथों का तराना'। 'हाथों का तराना' के लिए मुझे बनारस यूनिवर्सिटी के हिंदी प्रोफ़ेसर ने कहा कि मैं इसका तर्जुमा करूँगा। इसमें वैदिक विचारों का अक्स है। मैंने कहा, यह हमारा अक्स है। कैसे आया, मुझे ख़बर नहीं। यह हमारा हक़ है। बात यह है कि जो ज़मीन से जुड़ी चीज़ें हैं, जो इसमें आ गई हैं—कामयाबी के साथ। यह हमारा विरसा है और मैं इससे मुतमइन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हूँ कि हमारी शायरी का सारा मिज़ाज ग़ज़ल-आश्ना मिज़ाज है। और जो शायर यह कहता है कि मेरी शायरी में न जाम है, न मीना है, न साक़ी है और उसके बाद यह कहता हो कि—

यह सीधे-सादे ग़रीब इंसां, नेकियों के मुजस्समे हैं
यह मेहनतों के ख़ुदा, यह तख़्लीक़ के पैग़म्बर
जो अपने हाथों के खुरदरेपन से ज़िंदगी को सँवारते हैं,
तो उसकी दाद मुहम्मद सादिक़ से मिलती है...

राही साहब : अब जो यह ग़ज़ल-आश्नाई की बात निकली, वह बड़ी अच्छी है। मैं दूसरी तरफ़ चल रहा हूँ कि इक़बाल का फ़ारसी कलाम तो मैंने इतना जी लगा के नहीं पढ़ा है, लेकिन उर्दू कलाम जो उनका पढ़ा, तो मुझे जहाँ तक नज़्मों के ढाँचे का सवाल है, और जिस तरह वह नज़्मों की रचना करते हैं, बनावट में वह मुझे बहुत नाक़िस (अपूर्ण) लगता है, लेकिन इसके बावजूद उनकी जो आवाज़ है, और उनकी आवाज़ की जो मिठास है, रचाव है, और अज़मत है, वह पकड़ लेती है, तो मुझे लगता है, उनका उस्लूब (शैली) ग़ज़ल का है, जिसको उन्होंने नज़्मों में इस्तेमाल किया...

जाफ़री साहब : जहाँ ग़ज़लों में उन्होंने उस उस्लूब को छोड़ा है, उसको लोग क़बूल नहीं करते, हालाँकि वह ग़ज़ल के लिए एक नया रास्ता था, मसलन 'शमा और शायर' के यह अशआर—

आख़िर शबे-दीद के काबिल थी बिस्मिल की तड़प
सुबह तक कोई अगर बालाए बाम आया तो क्या...

इसके रचाव के बारे में एक चीज़ कहूँ, तो मुझे नहीं मालूम कि यह चीज़ तुम्हारे ज़ेहन में है या नहीं, वह यह कि जोश के बारे में भी यही कहा जाता है, और जोश पर यह एतराज़ बहुत ज़्यादा किया जाता है। यही बात इक़बाल के बारे में भी कही जाती है कि ख़याल का इरतिका (उत्थान) नहीं है, और एक ही बात बीस इस्तिआरों में कहे चले जा रहे हैं। इक़बाल की 'शमा और शायर' के कई बंद हैं, जिसमें चार-पाँच शे'र एक ही ख़याल को मुख़्तलिफ़ इस्तिआरों में बयान कर रहे हैं कि—

आख़िर शबे-दीद के काबिल थी बिस्मिल की तड़प
सुबह तक कोई अगर बालाए बाम आया तो क्या
बज़्मे-मै से वह पुराने शोला-ए-आशाम उठ गए
साक़िया महफ़िल में तो आतिशे-बज़ाम आया तो क्या

राही साहब : हाँ तो... यह क्यों है ?

जाफ़री साहब : यह उस्तादी का असल रंग है, और यह उस ज़माने में बड़ा मक़बूल था। यह बिलकुल ऐसा है, जैसे क्लासिकी उस्ताद होता है ना, कि एक बोल को लेकर तीन-तीन घंटे गा रहा है, लेकिन कुछ लोग हैं, जो इसे काबिले-गिरफ़्त समझते हैं, हालाँकि यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीज़ क़ाबिले-गिरफ़्त नहीं है। यहाँ कोई एतराज़ की बात नहीं है, लिहाज़ा मैं नाम ले लूँ, मसलन अख़्तरुलईमान... कि "साहब, इस नज़्म का इरतिका नहीं है! मेरी नज़र में इरतिका-ए-ख़याल है...!"

राही साहब : इरतिका तो है, मगर नज़्म नहीं है...

जाफ़री साहब : नज़्म नहीं...वही ग़ज़ल का रंग है।

राही साहब : नहीं, मैं इक़बाल की नहीं अख़्तरुलईमान की बात कर रहा हूँ कि इरतिका तो है, मगर नज़्म नहीं है...

जाफ़री साहब : मैं उसे दूसरी तरह ज़रा नरम अल्फ़ाज़ में कहूँगा कि इक़बाल की आवाज़ का असर उनकी आवाज़ से ज़्यादा है—बहुत ज़्यादा है। अब यह देखिए, जोश ने क्या उम्दा नज़्म कही है—

मुट्ठियों में भर के अफ़शां चल चुका है इंक़िलाब

और उसमें जो आख़िरी शे'र है—

जोश के अफ़्कार को मानेगी मुस्तक़्बिल की रूह
आज अगर रुसवा वह मरदे- नामुसलमाँ है तो क्या

इसमें साहब, जो एक यलग़ार है तशबीहियों की, इस्तआरों की...हद है?

राही साहब : वह तो उनका स्टाइल है और इस पर कोई एतराज़ करे, तो...यह तो बेवक़ूफ़ी की बात है!

चल चुकी है आग लंका की तरफ़ बढ़ती हुई
आज अगर रावन का घर सीता का ज़िंदां है, तो क्या
बन चुका है सरसरो सैलाब ख़ूने हाशमी
आज अबू सुफियान के घर में चिरागां है, तो क्या

कहाँ सीता और—कहाँ अबू सुफियान यह सब आ गए...

राही साहब : अच्छा, एक आख़िरी सवाल कि यह जून 1935 से लेकर 1990 तक जो भी उर्दू में अदब...अच्छा या बुरा...पैदा हुआ, उसके बारे में मजमूई तौर पर आपकी क्या राय है? क्या आप मुतमइन हैं?

जाफ़री साहब : मजमूई तौर पर तो हम मुतमइन हैं। असल जायज़ा तो पचास बरस के बाद लिया जाएगा।

राही साहब : आपसे मैंने यह सवाल इसलिए किया कि आप पढ़ते रहते हैं—ज़्यादातर तो बग़ैर पढ़े-लिखे लोग...

जाफ़री साहब : राही साहब, उस ज़माने में मैंने एक काम ऐसा किया कि डॉक्यूमेंटरी फ़िल्म बनाई। अंग्रेज़ी में...'द लिटरेरी स्टॉर्म' के नाम से। इसमें चौदह ज़बान का स्वतंत्रता संग्राम में साहित्य की भूमिका शामिल है। 1857 से हमने शुरू किया—1947 तक। इसमें ग़ालिब भी है। हाली भी शामिल हैं। शिबली भी हैं। इक़बाल भी हैं। हसरत, जोश, भारती,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वल्लत्तोल और टैगोर भी हैं। तो साहब, हमें तो ऐसा लगा कि हमारी शायरी को हमारे अपने नक़्क़ाद ज़्यादा कमतर कह रहे हैं जबकि...

राही साहब : हमारी शायरी बड़ी अच्छी है।

जाफ़री साहब : बड़ी अच्छी है और बहुत बुलंद है। मैं इसकी दाद भी दूँगा। तो भई, हम तो अपने अदब से मुतमइन हैं। यह ज़रूरी है कि असनाफ जो हैं। किसी ज़बान में एक सिन्फ़ तरक़्क़ी करती है। किसी में दूसरी, क्योंकि कल्चर की जो फ़िज़ा होती है, वह उसके लिए हमवार नहीं होती। शायरी में इंग्लिस्तान को जो दर्जा हासिल है, वह यूरोप की किसी ज़बान को हासिल नहीं। जो दर्जा नॉवेल में रूस को हासिल है, वह किसी को हासिल नहीं। मौसीक़ी में जो दर्जा जर्मनी को हासिल है, वह किसी को नहीं। इसी तरह जो मुक़ाम उर्दू शायरी को हासिल है, वह किसी ज़बान की शायरी को हासिल नहीं। नॉवेल में हम उनसे पीछे हैं। अफ़साने में हम बहुत तरक़्क़ी कर गए थे, मगर अब जो यह ज़वाल (उतार) आया है, तो यह आया नहीं, लाया गया है...

राही साहब : कभी-कभी मुझे यह सवाल परेशान करता है। ज़ाहिर है कि इब्तदाई उर्दू शायरी फ़ारसी से बहुत मुतासिर रही। फ़ारसी से उर्दू को मिली—रूबाई, क़सीदा मसनवी, और ग़ज़ल। यह चार बड़ी इसनाफ़ हमको फ़ारसी से मिलीं, और हिंदुस्तान में बहुत अच्छी मसनवियाँ भी लिखी गईं। अच्छे क़सीदे भी लिखे गए, लेकिन ग़ज़ल की मक़बूलियत का क्या राज़ है ?

जाफ़री साहब : यह बताना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि इसके साथ जुड़ा हुआ सवाल यह है कि जिस सर-ज़मीन से यह आई है, वहाँ मक़बूल नहीं है—ईरान से...

राही साहब : मुझे ज़ाती तौर पर यह लगता है कि ग़ज़ल तो फ़ारसी में जब शुरू हुई, तो वह मसलसुल नज़्म थी, क्योंकि क़सीदे की तशबीह को जब उन्होंने क़सीदे से अलग किया, तो ग़ज़ल में तसलसुल स्वाभाविक तौर पर होना चाहिए।

जाफ़री साहब : हाफ़िज़ की सारी ग़ज़लों में नहीं है।

राही साहब : मैं यही कह रहा था... हाफ़िज़ के ज़माने में दारूल-तराजम खुल गए थे, हिंदुस्तान से बड़े पैमाने पर लेन-देन और तिजारत हो रही थी। हिंदुस्तान में एक ऐसी सिन्फ़े शे'र है, जो ख़याल का पाबंद नहीं है, जो सिर्फ़ एक फ़ॉर्म है, जिसको हम 'दोहा' कहते हैं।

जाफ़री साहब : यह बात मेरे ज़ेहन में थी। मैं ख़ुद यह कहनेवाला था। भई, हमारी हिंदुस्तान की रिवायत जो है, वह मौखिक है, और 'दोहा' जो है, वह मिसरों का पूरा ख़याल दे देता है।

राही साहब : और किसी ख़याल का पाबंद नहीं। इसमें आप कोई ख़याल भी बाँध दीजिए। जब यह 'दोहा' ईरान में पहुँचा, तो ईरानी शायरों ने कहा कि भाई, यह तो बड़े कमाल की चीज़ है! और मुझसे लगता है कि उसके बाद फ़ारसी ग़ज़ल का जो इरतिका हुआ, तो उसके अंदर तब्दीली आई, कि अब अलग-अलग शे'र होने लगे। ग़ज़ल ग़ज़ल नहीं रह गई, बल्कि अलग-अलग शे'रों वाली एक सिन्फ़ का शे'र है, कहीं खिज़ाँ का। इस तरह हमारे यहाँ दो तरह की चीज़ें आईं। एक तो ग़ज़ल थी और दूसरी वह, जिसको हम लोगों ने रेख़्ता कहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रेख़्ता के बारे में मेरी राय यह है कि बहुत घपले किए हैं हमारे बुज़ुर्गों ने, लेकिन ग़ालिब ने यह कहा कि—'रेख़्ता के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब,' रेख़्ता से मतलब ज़बान नहीं लगता, क्योंकि, क्या है कि...काइम चाँदपुरी का जो शे'र है—

काइम में ग़ज़ल तौर कहा, रेख़्ता वरना,
इक बात लच्चर-सी बज़बाने दक्कनी थी

तो इसके मायने क्या हैं ? कि ग़ज़ल ही की तरह रेख़्ता एक सिन्फ़े-सुख़न है। रेख़्ता ज़बान नहीं है और जब ग़ालिब यह कह रहा है कि रेख़्ता के तुम्हीं उस्ताद नहीं हो...तो वह सिन्फ़े-सुख़न की बात कर रहा है। ग़ज़ल तो मेरे ख़याल में एक सिन्फ़ है, जो मुसलसल होती है। रेख़्ता एक सिन्फ़ है, जो मुसलसल नहीं है ? आप उस्तादों की ग़ज़ल पढ़िए, तो लगता है कि वहाँ से यहाँ तक मुसलसल आ रहा है। इरतिकाए-ख़याल है और बाक़ी सारे अशआर फुटकर हैं।

जाफ़री साहब : भई, हम रेख़्ता पर बात करने के बजाय उस बुनियादी सवाल पर बात करें, क्योंकि मेरे लिए यह ख़याल नया है कि फ़ारसी में ग़ज़ल मुसलसल थी और जब 'दोहा' ईरान पहुँचा, तो फुटकल अशआर की शक्ल होने लगी। यह तहक़ीक़ का मसला है। मेरी नज़र में नहीं है। मैं यह समझता हूँ कि ग़ज़ल जो है, मैं उसके असबाब बयान नहीं कर सकता कि ईरान में उसका ज़वाल क्यों हुआ और हिंदुस्तान में उसका उरूज़ क्यों हुआ, अलबत्ता इसकी मेरे पास एक कैफ़ियत है। सोशल और पोलिटिकल। ग़ज़ल सबसे ज़्यादा नेचुरल फ़ॉर्म है शायरी का। मसलन हम यहाँ घर में बैठे हैं। किताबें हैं। पंखा चल रहा है। आप लोग बातें कर रहे हैं। बाहर निकले, मंज़र बदल गया। वहाँ हमें एक लिफ़्टमैन मिला। नीचे उतरे तो फिर मंज़र बदल गया। आगे चले तो एक जनाज़ा मिल गया और आगे चले, एक बारात मिल गई। जब घर पहुँचे, तो यह नहीं महसूस होता कि घर से घर तक इन मंज़रों में, झटकों में हमने क्या-क्या देख लिया। यही बात ग़ज़ल में है, लेकिन अच्छे शायर के यहाँ दो चीज़ें ज़रूर होती हैं। एक तो उसका मजमूई तास्सुर और एक आहंग। ये दोनों बराबर रहते हैं। यह नहीं कि मुतफ़रिक शे'र के साथ आहंग बदल गया या उसका तास्सुर बदल गया...

राही साहब : भाई मैं ऐसा करूँ कि ग़ालिब की दस-बारह ग़ज़लों को लेकर और उनको तरतीब देते हुए बता दूँ कि देखिए, एक ही ख़याल चला जा रहा है...

जाफ़री साहब : मैं ऐसी ग़ज़लें...

राही साहब : मैंने ज़्यादातर ग़ज़लों में यही देखा है कि एक ख़याल है कि चला जा रहा है। अगर आप उन ग़ज़लों को नए सिरे से तरतीब दीजिए, (ज़रूरी नहीं कि वह पहला शे'र हो, मक़तअ भी हो सकता है) लगता है, यह ख़याल का इरतिका है, जो चल रहा है। आख़िर में आ के दो शे'र बच जाते हैं। उसमें वह ख़याल नहीं आता।

जाफ़री साहब : जैसे ग़ालिब की एक ग़ज़ल है— *मुद्दत हुई है, यार को मेहमां किए हुए* आख़िर में बिलकुल अलग शे'र हैं...*बैठे हैं हम तसव्वुर-ए-जानाँ किए हुए* लेकिन इसके

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बावजूद यह मेरे लिए ख़याल का एक हिस्सा है, यह मौज़ूअ है हिज्र का, लेकिन उसने बयान किया है इसे विसाल की निशात के साथ...

राही साहब : तो इस तरह से अगर हमलोग अपनी ग़ज़ल को अज़-सिरे-नौ पढ़ना शुरू करें तो ऐसा नहीं लगता आपको...कि हमें एक नई चीज़ मिलेगी ?

जाफ़री साहब : ज़रूर मिलेगी।

राही साहब : नया दरवाज़ा खुलेगा कुछ नई हवा शायद आए!

जाफ़री साहब : दरअसल हमारे यहाँ ग़ज़ल को जो नई जिंदगी मिली है, वह हमारे यहाँ के सियासी हालात के साथ हुआ। मेरा ख़याल यह है कि 1947 से पहले ग़ज़ल की मक़बूलियत नहीं थी। ख़ुद फ़ैज़, जिनकी ग़ज़लें सबसे ज़्यादा मक़बूल भी हुईं और जिनके ज़रिये से फिर और ग़ज़लें भी आईं। उनकी बड़ी अच्छी ग़ज़लें मौजूद थीं, जो अब गाई जा रही हैं। तक़्सीम के बाद पाकिस्तान में यह हुआ कि यह जो पक्की मौसीक़ी है क्लासिकी, चूँकि उसका मिज़ाज सहू है, वह ग़ैर-मक़बूल क़रार पाई—'मोरी बहियाँ न मरोड़ कृष्ण मुरारी' तो हमारी क्लासिकी मौसीक़ी तो कृष्ण और राधा की रिवायत से मिली हुई है—तो यों क्लासिकी मौसीक़ी नाम क़बूल हुई, हालाँकि वहाँ जानते हैं कि लोग और सीखे हुए भी हैं। तवस्सुफ़ की रिवायत मौजूद थी। इसलिए वहाँ के ख़ुश गुल्लू-गायकों ने ग़ज़ल की गायकी शुरू की। हिंदुस्तान में उर्दू पर विपदा पड़ी । इसलिए जो उर्दू वाला था, वह यहाँ ख़ुश नहीं था और पंजाब से हिंदू और सिख आए, तो उनका यह गृह-विरह था। उन्होंने उसको उठा लिया और जो चीज़ें सामने आईं, तो साहब, उसका एक पोशीदा हुस्न था, जो किसी वजह से ज़माने की ख़ाक में दबा हुआ था। आज वह ज़ाहिर हो रहा है, लेकिन उससे जो ख़राबी पैदा हो रही है, वह यह है कि उसका बहुत बड़ा हिस्सा तफ़रीह का सामान बन गया, और नए-नए गानेवाले शायरों को मुलाज़िम रख रहे हैं। दस अल्फ़ाज़ दे दिए कि साहब 'जाम' का लफ़्ज़ आ जाए। शराब का लफ़्ज़ आ जाए और ज़ुल्फ़ का लफ़्ज़ आ जाए, तो यह जो है, इससे नुक़सान पहुँचा, लेकिन हर चीज़ के दो पहलू होते हैं। यह उसका दूसरा पहलू है। मक़बूलियत अपनी जगह है, लेकिन इसी के साथ-साथ बग़ैर किसी टीप के... ज़मीर जाफ़री का एक शेर सुना दूँ—

दरीदा दामनों, खस्ता ग़रेबानों की बातें हैं
ग़ज़ल में जितनी बातें हैं, मुसलमानों की बातें हैं

(ठहाके के साथ ही, वह दिलकश महफ़िल बरख़ास्त हो गई।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अली सरदार जाफ़री

अवध की ख़ाके-हसीं

गुज़रती बरसात आते जाड़े के नर्म लम्हे
हवाओं में तितलियों की मानिन्द उड़ रहे हैं
मैं अपने सीने में दिल की आवाज़ सुन रहा हूँ
रगों के अंदर लहू की बूँदें मचल रही हैं
मिरे तसव्वुर के ज़ख़्म ख़ुर्दा[1]
उफ़क़[2] से यादों के कारवाँ यों गुज़र रहे हैं
कि जैसे तारीक शब के तारीक आसमाँ से
चमकते तारों के मुस्कुराते हुजूम गुज़रें

मैं क़ैदख़ाने में इश्क़े-पैचाँ[3] की सब्ज़ बेलों को ढूँढ़ता हूँ
जो फैल जाती हैं अपने फूलों से नन्हे-नन्हे चिराग़ लेकर
कहाँ है वो दिल नवाज़ बाँहें
वो शाख़े संदल
कि जिस पर अँगड़ाइयों ने अपने ही नशेमन बना लिए हैं
मैं अपनी माँ के सफ़ेद आँचल की छाँव को याद कर रहा हूँ
मिरी बहन ने मुझे लिखा है
नदी के पानी में बेद की झाड़ियाँ अभी तक नहा रही हैं
पपीहे रुख़सत नहीं हुए हैं
अभी वो अपनी सुरीली आवाज़ से दिलों को लुभा रहे हैं

मैं रात के वक़्त अपने ख़्वाबों में चौंक पड़ता हूँ जैसे मुझको
अवध की मिट्टी बुला रही है
हसीन झीलें कँवल के फूलों की चादरों में ढँकी हुई हैं
फ़ज़ाओं में मेघदूत परवाज़[4] कर रहे हैं
न जाने कितनी मुहब्बतों के पयाम लेकर
घटाओं की अप्सराएँ अपनी
घनेरी ज़ुल्फ़ों में आख़िरी बार मुस्कुराकर
ख़लीजे-बंगाल[5] बहरे-अदब[6] के मोती पिरो रही हैं
हरे परों और नीले फूलों के मोर ख़ुश होके नाचते हैं

---

1. ज़ख़्म खाये हुए, आहत, 2. क्षितिज, 3. पेचीदा इश्क़, 4. उड़ान, 5. बंगाल की खाड़ी, 6. अरब सागर।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क़दीम[1] गंगा का पाक पानी ज़मीं के दामन को धो रहा है
वो खेतियाँ धान से भरी हैं
जहाँ हवाएँ अज़ल के दिन से सितार अपने बजा रही हैं
हिमालय की बुलंदियाँ बर्फ़ से ढँकी हैं
उन आसमाँ बोस चोटियों को
सहर के सूरज ने सात रंगों की कलगियों से सजा दिया है
शफ़क़[2] की सुर्ख़ी में मेरी बहनों की मुस्कुराहट घुली हुई है

मिरे तसव्वुर में साक़ियों का ख़राम रंगीं न जामो-मीना की गर्दिशें हैं
न मैकदे हैं, न शोरिशें[3] हैं
मैं छोटे-छोटे घरों की छोटी-सी ज़िंदगी में घिरा हुआ हूँ
अँधेरों क़स्बों को याद करते तड़प रहा हूँ
वो जिनकी गलियों में मेरे बचपन की यादें अब तक भटक रही हैं
जहाँ के बच्चे पुराने कपड़ों की मैली गुड़ियों से खेलते हैं
वो गाँव जो सैंकड़ों बरस से बसे हुए हैं
किसानों के झोंपड़ों पे तरकारियों की बेलें चढ़ी हुई हैं
पुराने पीपल की जड़ में पत्थर के देवता बेख़बर पड़े हैं
क़दीम बरगद के पेड़ अपनी जटाएँ खोले हुए खड़े हैं

ये सीधे-सादे ग़रीब इंसान नेकियों के मुजस्सिमे हैं
ये मेहनतों के ख़ुदा ये तख़्लीक़[4] के पयम्बर
जो अपने हाथों के खुरदुरेपन से ज़िंदगी को सँवारते हैं।
लुहार के घन के नीचे लोहे की शक्ल तब्दील हो रही है
कुम्हार का चाक चल रहा है
सुराहियाँ रक़्स कर रही हैं
सफ़ेद आटा स्याह चक्की से राग बनकर निकल रहा है
सुनहरे चूल्हों में आग के फूल खिल रहे हैं
पतीलियाँ गुनगुना रही हैं
धुएँ से काले तवे भी चिनगारियों के होठों से हँस रहे हैं
दुपट्टे आँगन में डोरियों पर टँगे हुए हैं
और उनके आँचल से धानी बूँदें टपक रही हैं
सुनहरी पगडंडियों के दिल पर
स्याह लहँगों की सुर्ख़ गोटें मचल रही हैं

---

1. प्राचीन, 2. उषाकाल, भोर, 3. हंगामे, फ़साद, 4. रचना, सृष्टि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ये सादगी किस क़दर हसीं है
मैं जेल में बैठे-बैठे अकसर ये सोचता हूँ
जो हो सके तो अवध की प्यारी ज़मीन को गोद में उठा लूँ
और उसकी शादाब लहलहाती हुई जिबीं [1] को
हज़ारों बोसों [2] से जगमगा दूँ

मैं अपने बचपन के साथियों की गरजती आवाज़ सुन रहा हूँ
वो कारख़ानों के सामने इनक़िलाब बनकर खड़े हुए हैं
वो खेतियों में बहार बनकर रवाँ-दवाँ हैं
अँधेरी कानों की तीरगी में
वो नूर बनकर उतर रहे हैं
ज़मीं के सीने पर काश्तकारों की लाठियों के
हज़ारों जंगल उगे हुए हैं
कुदालें खेतों की पासबाँ [3] हैं
दराँतियाँ जगमगा रही हैं
ज़मीन के ग़ासिबों[4] के चेहरे का रंग काफ़ूर हो रहा है
मिलों के मालिक लरज़ रहे हैं

ग़रीब सीता के घर पे कब तक रहेगी रावण की हुक्मरानी
द्रौपदी का लिबास उसके बदन से कब तक छूटा करेगा
शकुंतला कब तक अंधी तक़दीर के भँवर में फँसी रहेगी
ये लखनऊ की शगुफ़्तगी मक़बरों में कब तक दबी रहेगी
सरों के ऊपर मुसीबतों के पहाड़ कब तक गिरा करेंगे
बिलखती आँतों को भूख कब तक डसा करेगी
ज़मीं के सीने पे क़ातिलों के गिरोह कब तक चला करेंगे
ख़बासतें[5] कब तलक अहिंसा का रूप धारे फिरा करेंगी
किसान जो अपनी पाक धरती पे जानवर की तरह झुके हैं
जो कच्चे चमड़े के सख़्त जूतों से पिट रहे हैं
ये जिस्म जो कारख़ानेदारों की भट्टियों में उबल रहे हैं
ये हाथ लोहे के दाँत जिनको चबा रहे हैं

ये ख़ून जो नफ़ाख़ोर बनियों की थैलियों में खनक रहा है
ये औरतें जिनके हाथ पीछे बँधे हुए हैं
जो ऊँचे पेड़ों पे अपने बालों की फाँसियों में लटक रही हैं

---

1. माथा, 2. चुंबन, 3. रखवाली करनेवाली, 4. बलपूर्वक दूसरों का अधिकार छीननेवाले,
5. नापाक हरकतें, शरारतें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ये काँपती मुफ़लिसी जो आई है छातियों का लगान लेकर
ये नन्हे बच्चे जो मालिकों के मवेशियों को चरा रहे हैं
जो खेत-मज़दूर भूखे रहकर ज़मीं से गेहूँ उगा रहे हैं
ये अपने सीने की आग कब तक दबा सकेंगे
ये अपनी नफ़रत का ज़हर कब तक छुपा सकेंगे
ये ज़ख़्म कब तक हरे रहेंगे

अवध की ख़ाके-हसीं के ज़र्रे बगूले बनकर मचल रहे हैं
अब आँसुओं की पुरानी झीलों से सुर्ख़ शोले उबल रहे हैं
ग़मों की भारी सिलें दिलों से सरक रही हैं
शुजाअतें[1] गोफनों को लेकर निकल रही हैं
झुके हुए सर उभरते सूरज की शानो-शौक़त से उठ रहे हैं
ये सूरमाओं की सरज़मीं है
ये आसमान ख़ामोश तूफ़ान बर्क़ो-बाराँ का आसमाँ है
ये मुस्कुराती हुई फ़ज़ा सुर्ख़ आँधियों से भरी हुई है
यहाँ तक एक-एक चप्पा लाखों बग़ावतों से बसा हुआ है
बग़ावतें जो हर इक शहनशाहियत की चूलें हिला चुकी हैं
बग़ावतें सामाज को जो बुलंदियों से गिरा चुकी हैं
बग़ावतें जो फ़िरंगियों के दिलों पे हेबत बिठा चुकी हैं
यही पुरानी बग़ावतें फिर नए सिरे से जवाँ हुई हैं

मिरे वतन की ज़मीं को नापाक करनेवालो
मैं इन पुरानी नई अवामी बग़ावतों का ही तर्जुमान हूँ
मैं अपने अहले-वतन के एहसास और जज़्बात की ज़बाँ हूँ
मैं ख़ाक से कह रहा हूँ अपने अनाज को कोख में छुपा ले
लुटेरे खेतों में फिर रहे हैं
मैं लाखों मज़दूर नौजवानों के साथ मैदां में आ रहा हूँ
ग़दर के मक़्तूल[2] सूरमाओं को मर्क़दा[3] से उठा रहा हूँ

मैं चौरी-चौरा के सोये शेरों को गीत गाकर जगा रहा हूँ
चमन के फूलों चमन में एक आग-सी लगा दो
लचकती शाख़ों फ़ज़ा में ज़ंजीर बन के फैलो
ज़मीं के धातो हवा में ज्वालामुखी उछालो
मिलों के पहियो, बग़ावतों के तराने गाओ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

1. वीरता, पराक्रम, 2. क़त्ल किए गए, 3. क़ब्रों

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहाँ हो ऐ नेकियों की फ़ौजो
बदी के ऊँचे महल गिरा दो
सदाक़तों[1] आओ झूठ के साँप को कुचल दो
हयात की तेज़ो-तुंद मौजो-फ़ना के ख़ाशाक[2] को बहा दो

सहर[3] की किरनो अँधेरी रातों के सर पे बरसो
अवाम के दुश्मनों का नामो निशाँ मिटा दो
अवध की ख़ाके-हसीं के ज़र्रो
जो सैकड़ों मील दूर से उड़के मेरे ख़्वाबों में आ गए हो
मिरे वतन की ज़मीं से मेरा सलाम कहना
उसे बताना
कि मेरे होठों पे संगो-आहन[4] की सर्द मुहरें लगी हुई हैं
वो काला क़ानून एक दीवार बनके रास्ते में आ गया है
जिसे अहिंसा का नाम लेकर
पुजारियों ने खड़ा किया है
मगर ये दीवार रोक सकती नहीं है मुझको
उबलते ज्वालामुखी को कोई दबा सका है ?
मैं आज मजबूर हूँ तो क्या है
मगर मैं उसके मुज़ाहिदों [5] की सफ़ों से बाहर नहीं गया हूँ

मेरा सफ़र

['हमचू सब्ज़ा बारहा रूईदा ईम' —रूमी]

फिर इक दिन ऐसा आएगा
आँखों के दीये बुझ जाएँगे
हाथों के कँवल कुम्हलाएँगे
और बर्गे-ज़बाँ[6] से नुत्क़ो-सदा[7]
की हर तितली उड़ जाएगी
इक काले समंदर की तह में
कलियों की तरह से खिलती हुई
फूलों की तरह से हँसती हुई
सारी शक्लें खो जाएँगी
ख़ूँ की गर्दिश, दिल की धड़कन

1. सच्चाइयों, 2. कूड़ा-करकट, 3. भोर, 4. पत्थर और लोहा, 5. धर्म-योद्धा, 6. पत्तेनुमा जीभ, 7. वाणी, आवाज़।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सब रागनियाँ सो जाएँगी
और नीली फ़ज़ा की मख़मल पर
हँसती हुई हीरे की ये कनी
ये मेरी जन्नत मेरी ज़मीं
इसकी सुबहें इसकी शामें
बेजाने हुए बेसमझे हुए
इक मुश्ते-ग़ुबारे इनसाँ पर
शबनम की तरह रो जाएगी
हर चीज़ भुला दी जाएगी
यादों के हसीं बुतख़ाने से
हर चीज़ उठा दी जाएगी
फिर कोई नहीं यह पूछेगा
सरदार कहाँ हैं महफ़िल में

लेकिन मैं यहाँ फिर आऊँगा
बच्चों के दहन[1] से बोलूँगा
चिड़ियों की ज़बाँ से गाऊँगा
जब बीज हँसेंगे धरती में
और कोंपलें अपनी उँगली से
मिट्टी की तहों को छेड़ेंगी
मैं पत्ती-पत्ती, कली-कली
अपनी आँखें फिर खोलूँगा
सरसब्ज़ हथेली पर लेकर
शबनम के क़तरे तौलूँगा
मैं रंगे-हिना[2] आहंगे-ग़ज़ल[3]
अंदाज़े-सुख़न बन जाऊँगा
रुख़्सारे-उरूसे-नौ[4] की तरह
हर आँचल से छन जाऊँगा
जाड़ों की हवाएँ दामन में
जब फ़स्ले-ख़िज़ाँ[5] को लाएँगी
रहरौ[6] के जवाँ क़दमों के तले
सूखे हुए पत्तों से मेरे
हँसने की सदाएँ आएँगी

---

1. मुख, 2. मेंहदी का रंग, 3. ग़ज़ल का स्वर, 4. नई दुल्हन के कपोल, 5. पतझर का मौसम, 6. राहगीर, पथिक।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरती की सुनहरी सब नदियाँ
आकाश की नीली सब झीलें
हस्ती से मिरी भर जाएँगी
और सारा ज़माना देखेगा
हर क़िस्सा मिरा अफ़साना है
हर आशिक़ है सरदार यहाँ
हर माशूक़ा सुल्ताना है

मैं एक गुरेज़ाँ[1] लम्हा हूँ
अय्याम[2] के अफ़्सूँ ख़ाने[3] में
मैं एक तड़पता क़तरा हूँ
मसरूफ़े-सफ़र जो रहता है
माज़ी[4] की सुराही के दिल से
मुस्तक़बिल[5] के पैमाने में
मैं सोता हूँ और जागता हूँ
और जाग के फिर सो जाता हूँ
सदियों का पुराना खेल हूँ मैं
मैं मर के अमर हो जाता हूँ

—एक ख़्वाब और से

हाथों का तराना

इन हाथों की ताज़ीम[6] करो
इन हाथों की तकरीम[7] करो
दुनिया को चलाने वाले हैं
इन हाथों को तस्लीम करो
तारीख़ के और मशीनों के पहियों की रवानी इनसे है
तहज़ीब की और तमद्दुन[8] की भरपूर जवानी इनसे है
दुनिया का फ़साना इनसे है, इंसाँ की कहानी इनसे है

इन हाथों की ताज़ीम करो
सदियों से गुज़रकर आए हैं, यह नेक और बद को जानते हैं
यह दोस्त हैं सारे आलम के, पर दुश्मन को पहचानते हैं
ख़ुद शक्ति का अवतार हैं यह, कब ग़ैर की शक्ति मानते हैं

---

1. भागता हुआ, 2. समय, काल, 3. जादूघर, 4. अतीत, 5. भविष्य, 6. अभिवादन; 7. सम्मान; 8. सभ्यता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन हाथों की ताज़ीम करो
हैं ज़ख़्म हमारे हाथों के, यह फूल जो हैं गुलदानों में
सूखे हुए प्यासे चिल्लू थे, जो जाम हैं अब मयख़ानों में
टूटी हुई सौ अँगड़ाइयों की मेहराबें हैं ऐवानों में

इन हाथों की ताज़ीम करो
राहों की सुनहरी रोशनियाँ, बिजली के जो फैले दामन हैं
फ़ानूस हसीं ऐवानो[1] के, जो रंग और नूर के ख़िरमन[2] हैं
यह हाथ हमारे जलते हैं, यह हाथ हमारे रौशन हैं

इन हाथों की ताज़ीम करो
ख़ामोश हैं यह, ख़ामोशी से सौ बर्बत-ओ-चंग[3] बनाते हैं
तारों में राग सुलाते हैं, तबलों में बोल छुपाते हैं
जब साज़ में जुंबिश होती है, तब हाथ हमारे गाते हैं

इन हाथों की ताज़ीम करो
ऐजाज़ है यह इन हाथों का, रेशम को छुएँ तो आँचल है
पत्थर को छुएँ तो बुत कर दें, कालिख को छुएँ तो काजल है
मिट्टी को छुएँ तो सोना है, चाँदी को छुएँ तो पायल है

इन हाथों की ताज़ीम करो
बहती हुई बिजली की लहरें, सिमटे हुए गंगा के धारे
धरती की मुक़द्दर के मालिक, मेहनत के उफ़ुक़[4] के सैयारे[5]
यह चारागराने-दर्दे-जहाँ [6], सदियों से मगर ख़ुद बेचारे

इन हाथों की ताज़ीम करो
तख़लीक़ यह सोज़े-मेहनत की, और फ़ितरत के शहकार भी हैं
मैदाने-अमल में लेकिन ख़ुद यह ख़ालिक़[7] भी मेमार[8] भी हैं
फूलों से भरी यह शाख़ भी हैं और जलती हुई तलवार भी हैं

इन हाथों की ताज़ीम करो
यह हाथ न हो तो मुहमिल[9] सब तहरीरें और तक़रीरें हैं
यह हाथ न हो तो बेमानी, इंसानों की तक़दीरें हैं
सब हिकमत-ओ-दानिश[10],
इल्म-ओ-हुनर इन हाथों की तफ़सीरें हैं

---

1. शाही महल; 2. ज्योतिपुंज; 3. वाद्ययंत्र 4. क्षितिज; 5. तारा; 6. हकीम, चिकित्सक;
7. स्रष्टा; 8. सृष्टि; 9. बेकार; 10. अक़्लमंद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इन हाथों की ताज़ीम करो
यह कितने सूबुक और नाज़ुक हैं, यह कितने सुडौल और अच्छे हैं
चालाकी में उस्ताद हैं यह, और भोलेपन में बच्चे हैं
इस झूठ की गंदी दुनिया में, बस हाथ हमारे सच्चे हैं

इन हाथों की ताज़ीम करो
यह सरहद-सरहद जुड़ते हैं और मुल्कों-मुल्कों जाते हैं
बाँहों में बाँहें डालते हैं, और दिल को दिल से मिलाते हैं
फिर जुल्मों-सितम के पैरों की ज़ंजीरे-गराँ बन जाते हैं

इन हाथों की ताज़ीम करो
तामीर तो इनकी फ़ितरत है, इक और नई तामीर सही
इक और नई तदबीर सही, इक और नई तक़दीर सही
इक शोख़-ओ-हसीं ख़्वाब और सही,
इक शोख़-ओ-हसीं ताबीर[1] सही

इन हाथों की ताज़ीम करो
इन हाथों की तकरीम करो
दुनिया को चलानेवाले हैं
इन हाथों को तस्लीम करो

गुफ़्तगू

(हिंद-ओ-पाक दोस्ती के नाम)

गुफ़्तगू बंद न हो

बात से बात चले
सुबह तक शामे-मुलाक़ात चले
हम पे हँसती हुई तारों भरी ये रात चले

हों जो अल्फ़ाज़ के हाथों में हैं संगे-दुश्नाम[2]
तंज़ छलकाये तो छलकाया करे ज़हर के जाम
तीखी नज़रें हों तुर्श अबरू-ए-ख़मदार[3] रहें
बन पड़े जैसे भी दिल सीनों में बेदार[4] रहें

---

1. स्वप्नफल, 2. गालियों के पत्थर, 3. तिरछी भौंहें, 4. जागृत।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बेबसी हर्फ़ को ज़ंजीर बपा[1] कर न सके
कोई क़ातिल हो मगर क़त्ले-नवा[2] कर न सके

सुबह तक ढल के कोई हर्फ़े-वफ़ा आएगा
इश्क़ आएगा बसद लग्ज़िशे-पा[3] आएगा
नज़रें झुक जाएँगी, दिल धड़केंगे, लब काँपेंगे
ख़ामुशी बोसा-ए-लब बनके महक जाएँगी
सिर्फ़ ग़ुंचों के चटकने की सदा[4] आएगी
और फिर हर्फ़-ओ-नवा की न ज़रूरत होगी

चश्मो-अबरू[5] के इशारों में मुहब्बत होगी
नफ़रत उठ जाएगी, मेहमान मुरव्वत होगी
हाथ में हाथ लिए सारा जहाँ साथ लिए
तोहफ़ा-ए-दर्द लिए, प्यार की सौग़ात लिए

रेगज़ारों[6] से अदावत[7] के गुज़र जाएँगे
ख़ूँ के दरियाओं से हम पार उतर जाएँगे

गुफ़्तगू बंद न हो
बात से बात चले
सुबह तक शामे-मुलाक़ात चले
हम पे हँसती हुई तारों भरी ये रात चले

—लहू पुकारता है से

ग़ज़ल

काम अब कोई न आएगा बस इक दिल के सिवा
रास्ते बंद हैं सब कूचए-क़ातिल के सिवा

बाइसे रश्क है तनहा रविए[8] रहरव-ए-शौक़[9]
हमसफ़र कोई नहीं दूरिए-मंज़िल के सिवा

हमने दुनिया की हर इक शै से उठाया दिल को
लेकिन इक शोख़ के हंगामए-महफ़िल के सिवा

---

1. जिसके पैरों में ज़ंजीर हो, 2. आवाज़ का क़त्ल, 3. लड़खड़ाते पैरों से, 4. आवाज़, 5. आँख और भौंहें, 6. मरुस्थल, रेगिस्तान, 7. वैमनस्य, मनमुटाव, 8. अकेले चलना, 9. प्रेम-पथिक।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तेग़े-मुंसिफ़ हो जहाँ, दारो-रसन[1] हों शाहिद
बेगुनाह कौन है इस शहर में क़ातिल के सिवा

जाने किस रंग से आई है गुलिस्ताँ में बहार
कोई नग़मा ही नहीं शोरे-सलासिल[2] के सिवा

ग़ज़ल

फिर शमीमे-गुल[3] नवेदे-जाँ फ़ज़ा[4] लाई है आज
मेरे गुलशन में बहारे-रफ़्ता फिर आई है आज

फिर उठा है वादिए-गंगा से अब्रे-नो बहार[5]
सिम्ते-रावी से हवाए-महरबाँ आई है आज

आज फिर है इत्तिहादे-शीशा-ओ-सागर[6] का दौर
महफ़िले-रिंदाँ[7] में जश्ने-बादा पैमाई है आज

चश्मे-साक़ी तुझमें सारा मैकदा आबाद है
क़ामते-रा'ना में मौजे-मय की अँगड़ाई है आज

खुल गए हैं इश्तियाक़े-दीद[8] में आँखों के दर
दोस्तों की ख़ानए-दिल में पज़ीराई[9] है आज

'आ मिले हैं सीना चाकाने-चमन से सीना चाक'[10]
शोर है महफ़िल में दीवानों की बन आई है आज

फिर वही गलियाँ वही अगला तवाफ़े-कूए-दोस्त[11]
इश्क़ को मज़्दा कि फिर सामने-रुस्वाई है आज

कौन है जिससे सँभाला जाएगा मेरा जुनून
ख़ुद ही पाए-शौक़[12] को ज़ंजीर पहनाई है आज

डर रहा हूँ जानो-तन को फूँक डालेगी ये आग
मेरे सीने में जो ज़ब्ते-ग़म ने भड़काई है आज

आज बेबाकी में है अहले-ख़िरद[13] की मस्लेहत
सरफ़रोशी ही में अहले-दिल की दानाई[14] है आज

---

1. सूली और फाँसी, 2. ज़ंजीरों की खनखनाहट का शोर, 3. फूलों की सुगंध, 4. शुभ सूचना, 5. नई बहार के बादल, 6. मदिरा पान की एकता, 7. पीनेवालों की महफ़िल, 8. दर्शन की उत्कंठा, 9. प्रशंसा, 10. दुःखी और सताये हुए लोगों का मिलना, 11. प्रिय की गली के फेरे, 12. चाहत के पैर, 13. बुद्धि की बात माननेवाले, 14. बुद्धिमानी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुस्कुराये ज़ख़्मे-दिल, हँसने लगे सीने के दाग़
रूहे-इतिस्बदाद[1] कैसी-कैसी शरमाई है आज

ख़ूने-नाहक़ लाला-ओ-गुल बन के फूटा ख़ाक से
तेशाज़न के ख़ूँ से दश्तो-दर[2] की ज़ेबाई[3] है आज

कह दो सैयादों से गुलचीनों[4] को कर दो होशियार
फ़स्ले-गुल ने दूर तक ज़ंजीर फैलाई है आज

हाँ यही है रोज़े-महशर[5], हाँ यही रोज़े-हिसाब
तेरी रुस्वाई है अब या मेरी रुस्वाई है आज

फिर है मीनारों पे रा'शा[6] फिर हैं गुंबद सरनिगूँ[7]
फिर नवा शाइर की ऐवानों से टकराई है आज

आज फिर क़दमों पे मेरे झुक रही है काइनात
मेरे क़ब्ज़े में जहाने-नो की दाराई[8] है आज

ख़ाक पर झुकती नहीं, अफ़्लाक[9] पर रुकती है आज
जो निगह तक़दीरे-आलम की तमाशाई है आज

एक साहिल है कि उभरा है भँवर की गोद में
एक कश्ती है कि तूफ़ानों से टकराई है आज

रंगे-मय, हुस्ने-निगाराँ, जश्ने-गुल, फ़स्ले-बहार
हिंदी की रूहे-जवाँ शे'रों में खिंच आई है आज

जल उठा नब्ज़ों में ख़ूँ रोशन हुए दिल में चिराग़
शाइरे-आतिश नवा[10] ने आग बरसाई है आज

---

1. अत्याचार या ज़ुल्म की रूह, 2. जंगल और घर, 3. सजावट, 4. फूल चुननेवाले, 5. हश्र या क़यामत का दिन, 6. कँपकँपाहट, 7. झुकना, 8. बादशाहत, 9. बहुत से आकाश, 10. वह शाइर जिसकी आवाज़ में आग हो, क्रांतिकारी शाइर।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग़ज़ल

आए हैं हम ग़ालिबो-इक़बाल के नग़मात के बाद
मुस्हफ़े-इश्क़ो-जुनूँ[1] हुस्न की आयात[2] के बाद

ऐ वतन, ख़ाके-वतन वो भी तुझे दे देंगे
बच गया है जो लहू के फ़सादात के बाद

नारे-नम्रूद[3] यही और यही गुलज़ारे-ख़लील[4]
कोई आतिश[5] नहीं आतिशकदा-ए-ज़ात के बाद

राम-ओ-गौतम की ज़मीं, हुरमते-इनसाँ [6] की अमीं [7]
बाँझ हो जाएगी क्या ख़ून की बरसात के बाद

हमको मालूम है वादों की हक़ीक़त क्या है
बारिशे-संगे-सितम, जामे-मुदारात [8] के बाद

तिश्नगी है कि बुझाये नहीं बुझती 'सरदार'
बढ़ गई कौसर-ओ-तस्नीम [9] की सौग़ात के बाद

---

1. इश्क़ और जुनून की किताबें, 2. आयत का बहुवचन, 3. एक अत्याचारी बादशाह नम्रूद की आग, 4. हज़रत इब्राहीम का बाग़ीचा, 5. आग, 6. मनुष्य की गरिमा, 7. रक्षक, अमानत रखनेवाली, 8. आवभगत, 9. जन्नत की दो नहरों के नाम।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और अंत में...

बरसों पुरानी बात है, मैंने एक बाङ्ला कहानी पढ़ी थी। अब न तो कहानी का नाम याद है, न उसका उनवान, सिर्फ़ किरदार याद है।

दुर्गा-पूजा का ज़माना था। बंगाल के एक गाँव में दोपहर ढलने के बाद कुछ लड़कियाँ तालाब में नहाने जा रही थीं। रास्ते में एक चूड़ीवाला मिला। मनिहार की टोकरी में काँच की रंग-बिरंगी चूड़ियाँ देखकर लड़कियाँ तड़प उठीं और चूड़ियाँ पहनने के लिए बैठ गईं। मनिहार को पैसे देकर सब हँसती-खेलती तालाब की तरफ़ चली गईं। इनके जाने के बाद मनिहार ने देखा कि एक बड़ी-बड़ी ख़ूबसूरत आँखों वाली लड़की ख़ामोश और उदास खड़ी हुई है। उसने पूछा कि तुमने चूड़ियाँ क्यों नहीं पहनीं, तो लड़की ने जवाब दिया कि मेरे पास पैसे नहीं हैं, अगर उधार दे दो तो पहन लूँगी। तुम गाँव में जाना और मंदिर के पुजारी से पैसे ले लेना। कहना कि तुमने उसकी बेटी को उधार चूड़ियाँ पहनाई हैं। वह उस पर राज़ी हो गया और लड़की की दोनों कलाइयों को लाल-लाल चूड़ियों से सजा दिया। वह ख़ुश-ख़ुश तालाब की तरफ़ चली गई और मनिहार गाँव के मंदिर की तरफ़। लेकिन जब पुजारी से बात की तो उसकी हैरत की कोई इन्तिहा नहीं रही, जब पुजारी ने कहा कि मेरी तो कोई बेटी नहीं है। मैंने तो शादी भी नहीं की है। लेकिन जब मनिहार की ज़बान से लड़की के हुस्न की तारीफ़ सुनी तो चीख़ उठा कि ये तो दुर्गा की तसवीर है। मैंने उम्र भर उनकी पूजा की लेकिन उन्होंने मुझे आज तक दर्शन नहीं दिए और एक अजनबी को जिसने कभी उनकी पूजा नहीं की, दर्शन देकर ख़ुश कर दिया। वह कहाँ गई है। जल्दी बताओ।

जब दोनों तालाब के किनारे पहुँचे तो वहाँ सन्नाटा था। लड़कियाँ नहाकर जा चुकी थीं। पुजारी ने फिर शिकायत शुरू की—दुर्गा माँ, ये कैसी नाइंसाफ़ी है कि तुमने अपने पुजारी को दर्शन नहीं दिए! थोड़ी देर में बीच तालाब में पानी के अंदर से दो निहायत ख़ूबसूरत हाथ बाहर निकले, वो लाल-लाल चूड़ियों से जगमगा रहे थे।

बंगाली कहानी यहाँ ख़त्म हो गई। मैंने उसमें ये इज़ाफ़ा किया है कि इतने में सूरज डूब गया और गाँव की छोटी-सी मस्जिद से शाम की अज़ान की आवाज़ आई। मनिहार मगरिब की नमाज़ पढ़ने के लिए हाथ बाँधकर खड़ा हो गया। वह उत्तर प्रदेश के शहर फ़ीरोज़ाबाद से चूड़ियाँ बेचने आया था। उसका नाम अब्दुल्लाह था और मस्जिद के गुम्बद पर कलस के नीचे शाम की सुरमई और गुलाबी रौशनी में कँवल का फूल मुस्कुरा रहा था।

यह फूल चार-पाँच हज़ार बरस का सफ़र तय करके मस्जिद के गुम्बद तक पहुँचा है और हिंदू, बौद्ध और मुस्लिम उत्तिहादे-बाहिमी की ख़ूबसूरत अलामत[1] है। ज़मान-ए-माक़बल तारीख़[2] में ये धान के खेतों, तालाबों और झीलों में नज़र आता था। फिर लक्ष्मी की

1. चिह्न, 2. इतिहास का शुरुआती दौर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाजू की आराइश बनकर ज़ाहिर हुआ। अजन्ता की दीवार पर एक बोधिसत्व के हाथ में मुस्कुरा रहा है। अदब और आर्ट की दुनिया में ये पैरों, हाथों और आँखों का इस्तिआरा है। जब कँवल की शक्ल के चिराग़दान बने तो कँवल चराग़ के मानो में इस्तिमाल होने लगा। बौद्ध विहारों से होता हुआ ये सूफ़ियों की दरगाहों में सामाने-आराइश बना और मस्जिद के मेहराबों और गुम्बदों को सजाने-सँवारने के काम आया। हुमायूँ के मक़बरे का गुम्बद, जिस पर कँवल का फूल नहीं है, इतना ख़ूबसूरत नहीं है जितना ताजमहल का गुम्बद या दिल्ली की जामा मस्जिद के गुम्बद। हिंदोस्तानी मस्जिदों के गुम्बद ईरान, इराक़ और अरब मुमालिक के गुम्बदों से मुख़्तलिफ़ हैं। उनका मिज़ाज हिंदोस्तानी है।

मैं सोच रहा हूँ कि ये कँवल का फूल अपनी लताफ़त[1] और नज़ाकत, पाकीज़गी और शराफ़त के साथ मुस्कुराता रहेगा या न्यूक्लियर जंग के शोलों में झुलसकर राख का ढेर बन जाएगा।

हमें चाहिए शांति, ज़िंदगी हमको प्यारी
हमें चाहिए शांति, सृजन की है तैयारी
हमने छेड़ी जंग भूख से, बीमारी से
आगे आके हाथ बँटाए दुनिया सारी।
हरी-भरी धरती को ख़ूनी रंग न लेने देंगे।
जंग न होने देंगे।

सारी इंसानियत का मुस्तक़बिल अम्न और शांति से वाबस्ता है। न्यूक्लियर जंग मौत का पैग़ाम है। मेरा नारा रोटी और किताब है।

---

1. कोमलता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचना भूमि

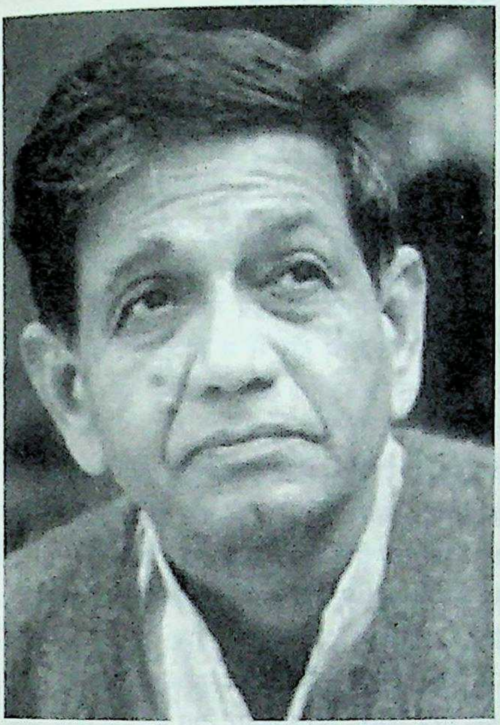

गोविंद मिश्र का जन्म एक अगस्त, 1939 को उत्तर प्रदेश के अतर्रा (बाँदा) में हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी में एम.ए किया और दो साल तक वे अंग्रेज़ी के प्राध्यापक भी रहे। 1961 में भारतीय राजस्व सेवा के लिए चुने गए। अधिकारी रहे श्री मिश्र केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अध्यक्ष और प्रतिनियुक्ति पर केंद्रीय हिंदी अनुवाद ब्यूरो के निदेशक भी रहे।

गोविंद मिश्र का पहला उपन्यास *वह अपना चेहरा* (1969) में प्रकाशित हुआ था। 1976 में उनका प्रसिद्ध उपन्यास *लाल पीली ज़मीन* काफ़ी चर्चित रहा। उनकी प्रकाशित कृतियों में ग्यारह उपन्यास और चौदह कहानी-संग्रह शामिल हैं। *निर्झरिणी* शीर्षक से दो खंडों में उनकी संपूर्ण कहानियाँ प्रकाशित हुई हैं। इनके अलावा पाँच यात्रा वृत्तांत और दो कविता-संग्रह भी प्रकाशित हैं। उनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ हैं— *पाँच आँगनों वाला घर, हुज़ूर दरबार, फूल...इमारतें और बंदर, अरण्य तंत्र* (उपन्यास) तथा *ख़ाक इतिहास, अर्थ ओझल, नए सिरे से, पगला बाबा* (कहानी-संग्रह)।

गोविंद मिश्र को उनके उपन्यास *धूल पौधों पर* के लिए के के बिड़ला फाउंडेशन की ओर से वर्ष 2013 का सरस्वती सम्मान दिया गया है। आपको *धीरे समीरे* के लिए, भारतीय भाषा परिषद् पुरस्कार एवं *कोहरे में क़ैद रंग* के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार (2008 ई.) प्राप्त हो चुके हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

संपर्क : एच.एक्स.-94, ई-7, अरेरा कॉलोनी, भोपाल 462016; मो. 09827560110

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आत्म-कथ्य

गोविंद मिश्र

जीवन के वे प्रसंग जो साहित्य में सीधे उतरते चले आते हैं, उन पर सीधे-सीधे लिखना कठिन क्या, लगभग असंभव होता है। लेखक के जीवन के ये वे प्रसंग हैं, जिन्हें लिखने से वह बचना चाहता है पर जिन्हें लिखे बिना भी नहीं रह सकता। लिखकर उनसे निजात पाना चाहता है ताकि फिर दूसरी चीज़ों को उठा सके। पर ये हैं कि उसे छोड़ते नहीं, उसके हर लेखकीय दौर में ये मौजूद दिखेंगे। दूसरी तरह से देखें तो उसके लेखन के अक्षुण्ण स्रोत भी हैं ये—कुआँ...जिससे जितना पानी निकालो उतना ही भर आता है।

जीवन में वह एक ही थी...लेकिन देखो तो उसने मेरे कितने उपन्यासों में कितने रूप धारण किए। उसकी छाया लगभग हर उपन्यास के इस या उस स्त्री पात्र में दिख जाएगी। मैं बीत गया, पर जीवन के आरंभ का वह प्रसंग नहीं बीता।...सिकुड़ता तक नहीं, उल्टे तनता-पसरता चला जाता है, कभी यह 'शेड' कभी वह, कभी यह आयाम कभी वह...कल्पना के साथ नए-नए आकार लेता हुआ। साहित्य इस तरह जीवन को विस्तार देता है, इसीलिए जहाँ जीवन तो समाप्त हो जाता है, साहित्य रह जाता है।

इसे दोहराव कैसे कहा जाए! अगर सिर्फ़ ऊपरी परत, स्थूलता पर नज़र फेरेंगे तो दोहराव लग सकता है, मगर जब भीतर लुकी-छिपी परतों को उकेरेंगे तो नया दिखेगा। जीवन में वह प्रसंग या अनुभव भले एक रहा हो, लेकिन उससे उपजी अनुभूतियाँ अनेक-अनेक, हर रचना के साथ नई होती चली जाती हैं। जीवन में उससे विछोह एक हुआ...पर क्या साहित्य का करिश्मा कि उसने रचना में एक और पैदा कर दिया। यही है सृष्टि...जीवन में जो ब्रह्मा करता है, काग़ज़ पर साहित्यकार। वह नए विछोह का नया दुःख पैदा कर, नए तरीक़े से उसे भोग भी रहा है...जैसे कोई सूखे हुए घाव की पपड़ी हर बार छीलकर उसे हरा कर ले...जिससे टीस उठती रहे, उसे मथती रहे।

क्या पता, प्रकृति ऐसे अनायास तरीक़ों से लेखक की संवेदना को सूखने से बचाए रखती है। ऐसे प्रसंगों पर बार-बार लौटने से भीतर का साहित्यकार जीवित रहता है?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"फिर तेरे कूचे को जाता ख़याल..."

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी

कशिश

पत्नी को गुज़रे एक साल से ऊपर हो गया।

उसे जाना ही था। हालाँकि वह मुझसे चार साल छोटी थी पर कमज़ोर थी, क्योंकि कामचोर थी। पहली उम्र में पढ़ाई-लिखाई से बचती रही तो दूसरी में कमाई से बच गई। तीसरी उम्र पहुँचते-पहुँचते उसने चौथी के बहाने घसीट लिए थे, ''मेरी उम्र हो गई, आख़िर मेरा भी बुढ़ापा है। हाथ से गिलास नहीं उठता। चक्कर आते हैं। कहीं अकेले जाने में डर लगता है।'' चौथी जब सचमुच आई तब तक इस्तेमाल न किए जाने के कारण उसके अंग जवाब देने लगे थे।

उसे जाना ही था। उसके जाने के फ़ौरन बाद मैंने हल्का महसूस किया। आगे उसे और भी शारीरिक तकलीफ़ें होनी थीं। जिन्हें आधा मुझे भी भुगतना पड़ता। दो जन जो कभी एक-दूसरे पर लाद दिए गए थे, ढो रहे थे एक-दूसरे को किसी तरह, उन्हें एक-दूसरे से छुटकारा मिला। बीच का समय यों कट जाता है कि पति काम पर जाता है, दिन में दूरी रहती है, रात को खाना और सोना ही तो है। बच्चों को पढ़ाने, सेटिल कराने जैसी-साझा ज़िम्मेदारियाँ भी ध्यान बटाए रखती हैं। उम्र के उतार पर उधर दफ़्तर छिना, इधर परिवार की ज़िम्मेदारियाँ ख़त्म हुईं। कोई काम नहीं और दोनों चौबीसों घंटे साथ—दो सेनाएँ लगातार आमने-सामने...समवेता युयुत्सवः!

सवेरे उसका मुँह सूजा-सूजा-सा होता था। रात-भर कैसे-कैसे, कटे-छँटे विचार-विकार अतृप्तियाँ-ग्रंथियाँ...और न जाने क्या-क्या लौट-लौटकर उस पर थपेड़े मारते रहते होंगे, जैसे समुद्र की लहरें किनारे पर छपाक-छपाक करती हैं...वे ही सवेरे तक उसके चेहरे पर चिपक जाते थे और उसका चेहरा फूला हुआ, सूजा-सा निकल आता था, जैसे समुद्र तट पर सवेरे-सवेरे रेत की मोटी तह जमी हो! मुझे देखते ही एक-एक करके स्फुलिंग छूटने लगते—यही है... यही...दोषी, मुस्तक़िल दोषी, भारतीय नारी का सतत् दोषी, उसकी ज़िंदगी बर्बाद करनेवाला, उसकी हर तबाही का सबब, उसके अपने हर कुकृत्य के लिए भी ज़िम्मेदार,पति! मैं सुनूँ-न-सुनूँ, वह सवेरे-सवेरे इधर-उधर आते-जाते, रसोई में कुछ उठा-पटक करते हुए बुदबुदाती रहती—जुमलों में, शब्दों में और नहीं तो होठों की फड़कन से ही मुझे लगातार लानत भेजती रहती। सामने कोई दूसरा न हो—जैसे सवेरे नहीं ही होता था तो शब्दों पर भी कोई रोक-टोक नहीं, श्लीलता-अश्लीलता की कोई छेंक नहीं। इस तरह सवेरे ही वह रात भर की पूरी भड़ास निकाल लेती थी। मैं दिखाता कि मैं नहीं सुन रहा, या मुझे कम सुनाई देने लगा है, लेकिन मैं एक-एक चीज़ सुनता था, ध्यान से सुनता था, क्योंकि मेरे पास दूसरा काम ही नहीं होता था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न सुनने का जो मेरा दिखावा था, उसका एक फ़ायदा तो हुआ। ख़ुद को बहरा दिखाते रहने की ख़ातिर मुझे चुप्पी ओढ़नी पड़ती थी और इस तरह युद्ध टल जाता था, जबकि मेरे माँ-बाप जो थे, वे सवेरे उठते ही अपने-अपने कमरों के बाहर मोर्चा सँभाल लेते थे और चिल्ला-चिल्लाकर एक-दूसरे को ख़ूब खरी-खोटी सुनाते थे, जैसे रात युद्ध नहीं हो पाया तो कितना वक़्त ज़ाया हुआ, उसकी भरपाई करनी थी। मोहल्ला-पड़ोस सुनेंगे-हँसेंगे, इसकी उन्हें चिंता नहीं होती थी, क्योंकि वे जानते थे—हमाम में सब नंगे हैं! मुझे और मेरी पत्नी को थोड़ी चिंता रहती थी। क्योंकि हम सभ्य ज़माने के थे, फोड़े-फुंसियाँ छिपाकर रखनेवाले। कितनी बार मैंने यह भी चाहा था कि मैं उसके पहले संसार से चला जाऊँ, ताकि मेरे अभाव का भाव उसे मालूम हो, खच्चर जो ज़िंदगी-भर उसे ढोता रहा, उसकी कमी महसूस हो! मैं उसे यह दंड देना चाहता था लेकिन वह भाग्यवान थी, पहले चली गई।

आख़िर बोझ, जो हम दोनों पचास वर्षों से पीठ पर लादे-लादे चल रहे थे—उतर गया—उसका भी, मेरा भी। अब मैं स्वतंत्र था। अपने लिए जो कभी कुछ नहीं कर पाया, वह अब कुछ भी कर सकता था। ख़ुद को यह याद दिलाते हुए एक साल गुज़र गया।

मेरी उम्र बहत्तर साल है। चुस्त-दुरुस्त हूँ। पत्नी के होने के सबब में पहले अपनी तरह से जीने के लिए स्वतंत्र नहीं था, अब हो गया हूँ। मुश्किल से हासिल इस स्वतंत्रता की याद दिलाता हूँ ख़ुद को कि जिसके लिए जीवन-भर चीख़ते-चिल्लाते रहे, वह आख़िर मिली है तो करो उस स्वतंत्रता का जो भी तुम करना चाहते थे, जिओ, जैसे जीना चाहते थे!

जब वह जीवित थी, तब मुझे अपने दोस्तों के घेरे पर बड़ा नाज़ रहता था। उनके साथ उठने-बैठने, उनकी रोज़-ब-रोज़ ज़िंदगी में भी शिरकत करने के लिए उत्साह रहता था। उनके सामने पत्नी के साथ वाली ज़िंदगी घिसघिस थी। दोस्तों की महफ़िल से देर रात घर आने पर मग़ज़ में हेकड़ी भरी होती। घमंड में अकसर पत्नी को बोल भी देता, ''मेरे दोस्त मेरे लिए तुमसे अधिक क़ीमती हैं, उनमें से कुछ तो मेरी ज़िंदगी में तुम्हारे आने से पहले से हैं!'' दोस्ती जो ऊँचे पायदान पर होती है तो इसलिए कि वहाँ हमें पता रहता है, कहाँ दूसरे की ज़िंदगी में दख़ल करना है, कहाँ नहीं—साथ भी और दूरी भी। इसलिए दोस्ती चलती भी ज़्यादा है जबकि पत्नी के साथ नज़दीकियाँ ज़रूरत से ज़्यादा होती हैं, दूरी ज़रा भी नहीं। परिवर्तन के लिए भी नहीं, दूसरे के लिए स्पेस छोड़ने की बात तो दूर। पति-पत्नी का साथ सोना, साथ जागना, साथ सोचना—पता नहीं बाथरूम बेचारे कैसे अलग से हो आते हैं! देर-सवेर एक-दूसरे से आजिज़ आ ही जाएँगे।

पत्नी नहीं थी तो अब दोस्तों की मजलिस के लिए समय ही समय था, लेकिन यहाँ एक दिक़्क़त बहुत ही महीन, घुस आई। मैंने देखा कि दोस्तों की जिस मंडली में बैठना पहले बड़े स्वाभाविक ढंग से होता था, अब जैसे दोस्तों को हमेशा मैं यह अहसास करा बैठता हूँ कि मेरे पास समय ही समय है और मैं उनके साथ ज़्यादा और ज़्यादा बैठने की फ़िराक़ में रहता हूँ। बैठक जब ख़त्म होती, हम चलने के लिए उठते तो दोस्तों की नज़रों में मेरे लिए थोड़ा दया-भाव होता था कि उनके पास पहुँचने के लिए एक जगह थी, मेरे पास नहीं; उनका घर था, मेरा नहीं, सिर्फ़ इसलिए कि उनके घरों में पत्नियाँ थीं, मेरे ही उनका इंतज़ार नहीं करती हुईं...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और मुझमें संकोच घर करता गया। दोस्तों से कतराकर मैं अधिक समय अपने घर में बिताने लगा। पहले हम दोस्तों के बीच औपचारिकता नहीं थी, कोई किसी के पास कभी भी जा धमकता था। अब मुझमें औपचारिकता आ गई थी—मैं बुलावे का इंतज़ार करता। बिन बुलाये किसी के पास, चाहे जितना अंतरंग हो, पहुँचने में मुझे हीनता महसूस होने लगी थी।

धीरे-धीरे मंडली में मेरी थोड़ी अलग क़िस्म की—अजीब-सी उपस्थिति हो गई, जो मुझे बर्दाश्त नहीं होती थी और पिछले एक वर्ष के दौरान दोस्तों से नाता ख़त्म होता चला गया। यह स्पष्ट हो गया कि दोस्त भले ही पत्नी से विपरीत पंक्ति पर खड़े दिखते हों, वे तभी हैं जब पत्नी है। दोस्तों की पत्नियों को एक छड़ा, अविवाहित या विधुर स्वीकार्य नहीं। गृहस्थों का दोस्त गृहस्थ ही हो सकता है। पत्नी गुज़र गई, तो उसकी जगह दूसरी हो, घर बने। तभी तुम दूसरों के घर जा सकते हो, वे तुम्हारे घर आ सकते हैं।

लड़के-बच्चे हैं। बच्चे क्या, पूर्ण विकसित मनुष्य, चालीस ऊपर, अलग-अलग इकाइयाँ, दूसरे शहरों में रहते हैं। हमारे संबंध अच्छे हैं, जैसे हिंदुस्तान के चीन से, या पाकिस्तान से अच्छे हैं। डायलॉग चलता रहता है, विज़िट्स होती रहती हैं पर भीतर डिप्लोमैसी है—एक-दूसरे को बेवक़ूफ़ बनाने, अपना स्वार्थ साधने की कला। हक़ीक़त खोदने चलूँ तो यह कि मैं एक हफ़्ते-से ज़्यादा किसी के साथ नहीं रह सकता। एक बुनियादी वजह है कि भाई लोग बहुत ख़र्चीले हैं। जिस देश में कितनों को दो वक़्त का खाना भी नसीब नहीं, वहाँ ऐसा अनाप-शनाप ख़र्च, सब अपने ऊपर? ज़्यादा है तो किसी ज़रूरतमंद को कुछ दिया करें। मुझसे देखा नहीं जाता। खटपट हो जाती है, जो फिर मनमुटाव में तन जाती है। वे कहते हैं—तुम अपने बाप की तरह सोचते हो और हमसे भी यही चाहते हो कि हम अपने बाप की तरह सोचें!

कुछ दिनों पहले, दूर-दराज एक शहर में रह रहे मेरे एक साथी के गुज़र जाने की ख़बर मिली। हम अलग शहरों में रहते थे। हमारा मिलना कम ही होता था। यह भी हो सकता था कि हम बाक़ी ज़िंदगी कभी मिलते भी नहीं, पर वह था तो मेरे भीतर एक कालखंड जीवित था—उसके साथ बिताया गया समय, वे दिन, वे बैठकें, वे महफ़िलें...। ये सब जो मेरे भीतर ठहरे हुए थे, उसके जाने के साथ चले गए। ऐसी ही एक ख़बर मुझसे कम उम्र, मेरे दोस्त की पत्नी के असमय चले जाने की मिली। मैं जब भी उनके यहाँ जाता, वे मेरे खाने-पीने का बड़ा ख़याल रखतीं, जो मेरी पत्नी ने कभी नहीं रखा। मुझे एक-से-एक चीज़ें बनाकर खिलातीं। इतनी उदारहृदया थीं कि कभी-कभी मेरे दोस्त भी बिन-बुलाए मेरे साथ जा पहुँचते। वे उनके लिए अजनबी होते थे, लेकिन उनकी भी वे वही ख़ातिर तवज्जो करतीं, जो मेरी करती थीं। वे यह सब बिना किसी स्वार्थ के करती थीं। इतनी अच्छी महिला को पूरा जीवन नहीं मिला, जबकि मुझ जैसे...। अच्छे लोग संसार से जल्दी क्यों उठा लिए जाते हैं, वे थोड़ा अधिक दिन पृथ्वी पर रहें तो अच्छाई की ख़ुशबू न फैले? उस परिवार के साथ बिताए गए अलग-अलग समय के टुकड़े—सब उनके जाने के साथ चले गए।

मैं ऐसी ख़बरों को सुनने के लिए जीवित हूँ—फ़लाँ गया, वह भी गया। मृत्यु दूर कहीं एक मित्र या परिचित की होती है और निकाल लिया जाता है मेरे जीवन से एक कालखंड, जैसे शरीर से गोश्त का एक टुकड़ा। ये अगर इसी तरह निकाले जाते रहे तो मैं क्या बचूँगा!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तुम्हें जिजीविषा चाहिए, नए कालखंड निर्मित करो, नई कोशिकाएँ...

मैंने उस महिला से संपर्क किया, जो एक समय मेरे विभाग में मेरी सहकर्मी थी। हम अच्छे दोस्त थे। सर्विस के दौरान उसे एक मंत्री के व्यक्तिगत स्टाफ़ में डेपुटेशन पर जाने का मौक़ा हाथ लगा। अपने आकर्षक व्यक्तित्व से उसने वहाँ अपना रंग जमा लिया। वे मंत्री जी जब मंत्री नहीं रहे, तब वह किसी दूसरे मंत्री के स्टाफ़ में नहीं गई। मंत्री जी को उसकी यह वफ़ादारी भा गई और जब वे फिर मंत्री बने तो उसे अपने पास बुला लिया। उसने अपनी पुरानी स्थायी सरकारी नौकरी छोड़ दी, मंत्री जी से हमेशा के लिए जुड़ गई। मंत्री जी ने उसे कॉन्ट्रैक्चुअल किवा कान्ट्रैक्चुअल अपॉइंटमेंट देकर उसकी स्थायी नौकरी के मुक़ाबले तनख़्वाह और रैंक—दोनों दृष्टियों से कई पायदान ऊपर चढ़ा दिया। मैं वहीं छूट गया और वह देखते-देखते कहाँ-से-कहाँ पहुँच गई थी। मैं पुराने विभाग से ही रिटायर हुआ, वह कभी रिटायर न होनेवाली स्थिति में आ गई थी। मंत्री जी मंत्री हों तो उनके मंत्रालय में, न हों तो उनके व्यक्तिगत स्टाफ़ की मुखिया—स्थायी सुप्रबंध, हमेशा के लिए, कम-से-कम तब तक तो ज़रूर, जब तक मंत्री जी जीवित थे।

फ़िलवक़्त वह एक महत्त्वपूर्ण मंत्रालय की महत्त्वपूर्ण शख़्सियत थी। जो कभी अपनी बीमारियों को कोसती पड़ी रहती थी (उसकी बीमारियों को लेकर जो मेरी लगातार पूछताछ और चिंताएँ उस तक पहुँचती थीं, उन्हीं से हमारी दोस्ती गहराई थी), उसे अब व्यस्तता ने एकदम चुस्त-दुरुस्त कर दिया है। वह भागती रहती है, जितनी व्यस्त होती है, उतना ही ख़ुद को तंदुरुस्त महसूस करती है।

अब जैसा कि हर महत्त्वपूर्ण पद वाले को महसूस होता है कि जो भी उसे फ़ोन कर रहा है, या मिलने आया है वह ज़रूर किसी काम के चक्कर में है। मेरी उस महिला-मित्र को भी मेरे बार-बार फ़ोन करने पर यही लगा होगा, जबकि मैं सिर्फ़ पत्नी के उठ जाने से उत्पन्न ख़ालीपन को भरने चला था। वह पब्लिक-स्पेस में तैर रही थी और मैं प्राइवेट स्पेस में। मेरे पास समय-ही-समय था, उसके पास एकदम नहीं। मेरे पास अब अपनी तरह से जीने की पूरी स्वतंत्रता थी, जबकि वह मंत्री जी के साथ महत्त्वपूर्ण तो बनी हुई थी, पर परतंत्र थी। वह समय, जब हमारा परिवेश एक था, हमारी व्यस्तता एक जैसी थी। वह गुज़र चुका था।

उसने फ़ोन पर आना बंद कर दिया, मैं उसके पी.ए. से ही टकराकर लौट आता। मोबाइल वह रखती नहीं थी, रखती होगी तो वह नंबर मुझे नहीं दिया था।

मैंने एक नए सिलसिले को चलाने की कोशिश की। यह एक गोरी-चिट्टी, सुंदर आँखों और मुख वाली, ख़ुशमिज़ाज महिला थी, नाम भी था—ख़ुशी। वह किसी के भी साथ उठती-बैठती थी, मेरे साथ भी उठी-बैठी। उन दिनों वह अपना तबादला अच्छी जगह कराने के लिए दौड़ रही थी और उसे पता चला था कि मेरा एक परिचित उसके काम का हो सकता था। वह मुझसे खुलने लगी, हम अंतरंग हो रहे थे। पत्नी के जाने के बाद एक नया जीवन मेरे सामने खुल रहा था। उम्र, जो मुझे ठंडाती चली जा रही थी, उसे नकारते हुए एक गरमाहट मुझमें प्रवेश कर रही थी। बूढ़ों की तरह छड़ी टकटकाते घूमने की बजाय मैं दौड़ने के मूड में आ रहा था। बैठे-बैठे सोचते रहने की बजाय रोमांस की अठखेलियों में उचकना-कूदना! [illegible] इसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में शेष जीवन आराम से निकल जाएगा और मुझे पता भी नहीं चलेगा। अपना महत्त्व बढ़ाने के लिए मैंने ख़ुशी की मुलाक़ात अपने उस परिचित से करा दी और तभी से ख़ुशी के मोबाइल से 'नो आंसर' आने लगा।

ये मोबाइल कमबख़्त जब से आ गए हैं, इनमें किसका फ़ोन है, पहले कितनी बार आया है। ये सब ब्योरे सिलसिलेवार मिल जाते हैं। इससे महिलाओं को बड़ी सहूलियत हो गई है। वे फ़ोन आने देती हैं, आने देती हैं, फिर बटन दबाकर लिस्ट पर नज़र डालती हैं, चुनाव कर फ़ोन करती हैं। इसे या उसे, या किसी को नहीं। मैं अब ख़ुशी की चुनाव-परिधि में नहीं आता था, क्योंकि अब तक वह मेरे उस परिचित के घर हो आई थी और उसे अपने घर डिनर पर बुलानेवाली सीढ़ी पर थी।

मैंने सोचा—औरतों को छोड़ो—समाज से जुड़ो—समाज, बृहत्तर परिवेश, अपने समय की समस्याएँ, बड़े मसले, उनके लिए संघर्ष। वह तुम्हारे जीवन को अर्थ देगा।

मैंने अपने समय में चल रहे आंदोलनों को गहराई से देखना शुरू किया। वे थोड़ा ही चलकर फुस्स हो जाते हैं, ख़राब पटाखे की तरह, सिर्फ़ धुआँ छोड़कर बैठ जाते हैं, क्योंकि उनके अगुवाओं में ही एका नहीं हो पाता, वे आपस में ही लड़ने लगते हैं (यह हमारा इतिहास भी है!)...और उधर जो नेता मंत्री-पदों पर क़ाबिज़ हैं, वे ऐसे चिकने घड़े हैं कि उन्हें कैसी भी गालियाँ दो, वे दाँत निपोरते रहेंगे, गालियों को तारीफ़ की तरह लेंगे और अपनी बगुला नज़र पैसा बनाने पर टिकाए रहेंगे...

मुझे लगा कि व्यक्तिगत, सामाजिक, देशीय...कहिए कि हर स्तर पर मुझे बेवक़ूफ़ बनाया जा रहा है। यहाँ तक कि टी.वी. पर क्रिकेट मैच देखने बैठूँ तो वहाँ भी मैच के पीछे, मैचफ़िक्सिंग चल रही होती है उसी समय। मैं बेवक़ूफ़, मुझ जैसे कई और भी। कुछ दिनों बाद तो ऐसा होने लगा कि जो भी मुझसे बात करने के लिए ठहरता, मेरे भीतर झट-से एक बल्ब-सा जल उठता कि ज़रूर वह मुझे बेवक़ूफ़ बनाने आया है।

वैसे, जहाँ देश के देश को बेवक़ूफ़ बनाया जा रहा हो, वहाँ मैं चीज़ ही क्या था!

कितना बचा है जीवन! दोस्त न सही, परिचित नए बनाए जाएँ तो आराम से कट जाए।

पर इस उम्र में नए दोस्त, परिचित ही बनते हैं क्या! मुझे जितने मिलते हैं, वे बेवक़ूफ़ नहीं तो कम अक़्ल तो बिलकुल होते हैं। मैं जानता हूँ कि मैं बुद्धिमान नहीं, पर उस वक़्त का हूँ, जब आदमी की नस्ल आज से बेहतर थी।

आज कहाँ हैं पहले जैसे नेता, डॉक्टर, अध्यापक, अफ़सर—कोई भी। हर चीज़ में गिरावट क्यों है—साहित्य, सिनेमा, शिक्षा, संगीत, कुछ भी उठा लीजिए। आज जो हैं उन्हें सामने जो दिखाई देता है, वे उसी से चालित होते हैं, कुछ और सोचने का बूता नहीं, इंटरनेट पर टिके, कल्पनाशीलता से शून्य, सूचनाओं से बजबज, नॉनसेंसिबल!

जितना भी बचा जीवन, मैं उसे नॉनसेंसिबल तरीक़े से नहीं, सोचते-समझते जीना चाहता हूँ। पुराने समय की नैतिकता मुझमें प्रवाहित है। उसी ईमानदारी का तकाजा है कि जो सवाल उठते हैं, मैं उनका सामना करूँ, उन्हें इधर-उधर दरी के अंदर सरकाता न चलूँ।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तो देखता हूँ कि कहीं, कुछ भी अच्छा नहीं हो रहा—व्यक्तिगत, परिवार, समाज, देश—यहाँ तक कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी नहीं। अब कहीं से प्रेम नहीं मिलनेवाला, जीवन में कुछ नया नहीं होनेवाला। लड़के-बच्चे हिदायतें देते रहेंगे—ऐसे रहो, वैसे रहो, उस तरह रहो जिस तरह तुम्हारा मन नहीं। रस्सियाँ और कसेंगी। देशों में युद्ध न भी हो तो युद्ध-जैसी स्थिति बनी रहेगी। पृथ्वी गरम होती चली जाएगी। पानी का संकट बढ़ेगा। आगे, बुरा-ही-बुरा दिखता है...सब ख़राब। अच्छे लोग, मेरे साथी, मेरे हमउम्र...एक-एक कर उठते जा रहे हैं। पीछे छूट जाने की पीड़ा ढोते हुए, उनके छोड़े गए स्पेस से जो ख़ालीपन उठता है, उसे घूरते हुए पड़े रहना। बेबस, मृत्यु की प्रतीक्षा में बैठे रहना! संसार मन का नहीं, साथ कोई नहीं, जीने का कोई मक़सद नहीं। है कोई एक वजह कि मैं जीवित रहूँ?

तुम जीवित हो, सिर्फ़ इसलिए कि मर नहीं सकते।

पर क्यों मरूँ मैं, क्यों मरने का सोचूँ? उठाने का काम उसका है जो यहाँ लाया। वह सोचे। जीता हूँ, तो जीने का सोचूँगा। मैं उसके साथ रह सकता हूँ।

पहला प्यार, जिसका जीवनसाथी बनने का सपना कभी साकार नहीं हुआ, जिस कारण से भी। दोनों अब क्यों साथ नहीं रह सकते, जीवन के उतार पर ही सही। कितना अजीब है कि जब हमारा जीवन खुल रहा था, तब हम अपने जीवन की रूपरेखा बनाने की स्वतंत्रता नहीं रखते थे, खूँटों से बँधे थे—परिवार, आर्थिक स्थिति, सबसे ऊपर जाति। आज स्वतंत्रता है तो जीवन ख़त्म होने को आया दीखता है, पर जितने दिन ही सही। उसके पति का देहांत हो चुका है। एक ही बेटा है। वह अब बेटा-बहू के साथ रहती है, जो उसे शहर वाला अपना मकान बेचकर अपने यहाँ स्थायी रूप से रहने के लिए ज़ोर दे रहे हैं, पर वह अभी पसोपेश में है। बेटे के पास आती है, कुछ दिनों रहती है, फिर लौट जाती है।

मौजूदा समय में हम दोनों स्वतंत्र हैं। इस उम्र में साथ रहने पर कोई बंदिश नहीं, विवाह-इवाह का पाखंड रचने की भी कोई ज़रूरत नहीं, नई पीढ़ी ही उसे उतार फेंक चुकी है! बस, साथ रहना और बन जाओगे गृहस्थ, पूर्ववत्।

उसके बेटे का घर क़रीने से सजाया हुआ। यहाँ-वहाँ छोटे-छोटे पौधे थे, क्यारियों में नहीं, गमलों से सजे हुए। छोटा-सा मध्यवर्गीय घर। दो दरवाज़े। सामने वाले मुख्य दरवाज़े की तरफ़ थोड़ी रौनक़ थी। पिछले दरवाज़े की तरफ़ बासीपन था। वह उस तरफ़ ही रहती थी। पिछवाड़े पहुँचकर इसने दस्तक दी।

यह था...देखकर वह मुस्कुराई। उस क्षण उसके चेहरे पर वही आभा फैल गई जो उन दिनों फैलती थी जब वह अपने शहर से यूनिवर्सिटी वाले शहर आती थी और यह उसे लेने पहुँचता था, रेलवे प्लेटफ़ॉर्म पर खड़ा मिलता था। इसे सामने पाते ही जो रंग उसका चेहरा ओढ़ लेता था।

"यहाँ रहकर ख़ुश हो?"

"वह जो मन नहीं, पर कोई परेशानी नहीं है। बेटा-बहू मेरा बड़ा ख़याल रखते हैं।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह इसलिए कहा जा रहा था, क्योंकि यही कहा जाता है। ख़ासतौर से तब जब आप लड़कों-बच्चों के साथ रह रहे हों। अगर यह सच था तो उसने अभी तक उस शहर का अपना घर, जिसमें पति के साथ रहती थी, क्यों नहीं बेचा ? माने विकल्प रखे हुए थी ! फ़िलहाल एक अरसे बाद उस तरह, एक-दूसरे के पास बैठे हुए दोनों के भीतर एक खुनक तो उठ रही थी।

"क्या हम साथ नहीं रह सकते ?" मौक़ा देखकर इसने फटाक से अपनी बात रखी।

एक पल को उसकी आँखें इसमें उतर गईं। बड़ी-बड़ी आँखें, जिनमें एक समय वह इसे भर लिया करती थी, पूरा-का-पूरा। उनमें थोड़ी नमी झिलमिला आई। कालखंड, जो दोनों ने कभी साथ जिया था, वह दीद-ए-तर में हिल रहा था, हल्की बारिश में सिहरते हरे पत्तों की तरह।

"मुझमें अब क्या बचा है !" वह अपने आप से उबरी तो कहा।

"मुझमें ही क्या बचा है, पर यों देखो तो हमारा पुराना समय तो है। हमारे भीतर ठहरा हुआ। हम उसे मुँह में ला-लाकर जुगाली किया करेंगे। एक-दूसरे का ख़याल रखेंगे।"

उसकी नम आँखों में सपने-तिरने लगे, पर उसने जल्दी ही सँभाला ख़ुद को।

"इस उम्र में, लोग क्या कहेंगे ?"

"लोगों से क्या ! हमारी ज़िंदगी है, जितनी भी बची। उसके बारे में हमें ही सोचना है।"

"हमारे बच्चे, वे क्या सोचेंगे ?"

"वे नई पीढ़ी के हैं, समझेंगे। उन्हें समझना चाहिए।"

वह चुप। अपने में सिमट गई, अपने उलझावों में झूल रही थी।

'नहीं, उसका बेटा यही सोचेगा कि उसके पिताजी को माँ ने धोखा दिया। माँ को उससे कोई प्रेम नहीं था, कभी नहीं था, तभी लड़के का घर छोड़कर उसके पास चली गई, जिसे विवाह के पहले चाहती थी, अपने पति से धोखा करती रही। दोनों तरफ़ लड़कों के बच्चे बड़े हो रहे हैं, वहाँ तक खलबली दौड़ जाएगी। दोनों के घरों में। सब सोचेंगे कि हम दोनों परम स्वार्थी हैं, वे जब तब आकर खरी-खोटी सुना जाया करेंगे, समाज में हमारी क्या साख रहेगी !'

"हमारी ख़ुशी इतनी महत्त्वपूर्ण है क्या जिसकी ख़ातिर घर उजाड़े जाएँ ?"

वह बलिदानी मुद्रा की पतली डगाल पर लपककर चढ़ गई थी, जैसा पहले करती थी।

"किसके घर ? लड़कों-बच्चों के, तो उनका हमारी वजह से कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं। वे हम पर निर्भर नहीं, हम उन पर निर्भर होते हैं। हम कहीं और रहने लगें तो वे हल्का ही महसूस करेंगे। अगर तुम उनसे अलग हमारे घरों की बात कर रही हो तो वहाँ बचा ही क्या है अब, जो उजड़ेगा !"

"अच्छा नहीं लगता इस उम्र में यह उखाड़-पछाड़। बच्चों, उनके बच्चों के यहाँ भी झंझावात पैदा करना। इससे अच्छा है कि हम यों ही जीते रहें, एक-दूसरे को भीतर की ख़ामोशी में लिए हुए। कभी-कभी आ जाया करो, मोबाइल पर फ़ोन कर लिया करो !"

दोनों ने अपने मोबाइल नंबर एक-दूसरे को दिए।

"तुम अकेलापन महसूस नहीं करतीं ?"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

"करती हूँ।"

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''पति का न होना सालता है?''

''हाँ, कभी-कभी।''

''उन्हें मिस करती हो?''

''करती तो हूँ।''

सुनकर सामनेवाले को अच्छा नहीं लगा। वह वैसे क्यों न रही जैसे यह रहा—आज भी पूरी ज़िंदगी उससे दूर रहने के बावजूद इसके लिए सबसे क़रीबी वही है, हमेशा रही...लेकिन स्त्री जिसके साथ रहने लगे, उसी की हो जाती है।

कड़वाहट तलुओं को झुलसा रही थी। यह तभी उठ जाता, ग़नीमत कि जो वह आगे कह रही थी, उसने सँभाल लिया।

''आदत पड़ जाती है। शरीर जैसे अनायास ही कुछ क्रियाओं की आदत पाल लेता है—इतने बजे नहाना, इतने बजे खाना या सोना—वैसे ही साथ रहनेवाले व्यक्तियों की भी आदत पड़ जाती है। फिर जब वे नहीं होते तो हम उन्हें 'मिस' करते हैं।''

''हम भी तो शादी से पहले कई साल साथ रहे थे। मेरे साथ रहने की आदत क्यों नहीं पड़ी, या पड़ी थी तो छूट गई। छूट गई...तो फिर नहीं डाली जा सकती क्या?''

''पचास साल से ऊपर हो गए। अब हम वही तो नहीं हैं। हमारे ऊपर से क्या-क्या गुज़र गया।''

''हम दोनों का ही वह पहला प्यार था। साथ बिताए अपने बचपन से उगा हुआ प्यार। उसकी मिठास पिछले जीवन में पड़ी खरोंचों को भरती रहेगी।''

''एक पैर क़ब्र में, अब यह सब अच्छा नहीं लगता। हमारे बच्चे हैं, उनके बच्चे हैं, सब हमसे कट जाएँगे।''

''पहले हम माँ-बाप की ख़ातिर मरे, अब बच्चों, बच्चों के बच्चों की ख़ातिर!''

''सबसे ख़ुद को काटकर हम साथ रहने भी लगे तो इसकी क्या गारंटी है कि एक-दूसरे से ऊबेंगे नहीं! और तब क्या करेंगे, कहाँ लौटेंगे, इन्हीं लड़कों-बच्चों के पास, तब ये हमें स्वीकार करेंगे? वह नहीं तो हममें से एक संसार से चला जाएगा, उसके बाद? यही स्थिति!''

''विदेश में लोग जैसे जो भी अपने जीवन को सुखी कर सकता है, उसे पकड़ लेते हैं, चाहे जितने थोड़े समय के लिए ही, हम भारतीय सोचते रह जाते हैं।''

''तुम हो आए हो विदेश, मैं नहीं गई। मैं नहीं जानती।''

''तुम्हारा वो, जिसे तुम आज 'मिस' करती हो, उसने क्या किया तुम्हारे लिए? अपना देश भी नहीं घुमाया। इतनी बड़ी ज़िंदगी में तुम वही तीन-चार शहर देख पाई जहाँ उसकी नौकरी रही!''

''जो गुज़र गए, हमें उनकी बात नहीं करनी चाहिए।''

''अच्छा छोड़ो! अपनी बात करें! तो बताओ हमारे पहले प्यार की क्या आज कोई अहमियत नहीं रही, सिर्फ़ इसलिए कि पचास साल गुज़र गए।''

''क्यों नहीं! भीतर दिया जलता रहता है।''

''जैसे हम पचास वर्ष उसे अपने भीतर लिए-लिए जीते नहीं, मरते रहे, वैसे ही आगे भी, क्यों?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"हाँ।"

"यह क्यों नहीं कि जो ग़लत चीज़ पचास वर्ष पहले हो गई, उसे सुधार लें!"

"क्या पता, सुधारने चलें और वही सबसे बड़ी ग़लती निकले!"

मेरे जीवन से चिपकी असंख्य स्मृतियाँ हैं। जीव स्मृतियों का पुलिंदा ही तो है—उनमें सबसे अधिक वे हैं, जिनमें वह मौजूद होती हैं। पचास वर्ष पूर्व, उसके साथ जिये हुए प्रसंग ज्यों-के-त्यों आकर मानसपटल पर सज जाते हैं—उसने साड़ी हाल ही में पहननी शुरू की थी, घर के कोनों में हम दोनों का पास-पास खड़े होना, मैं बाएँ हाथ को पीछे से उसके कंधे पर रख देता, उतने में ही जैसे एकाएक अपार संपदा का मालिक हो जाता था। कितना भरा-भरा लगता था! वहाँ से शुरू होकर आनेवाले दिनों में अलग-अलग जगहों पर बढ़ता हमारा सामीप्य। एक-पर-एक चित्र उभरते चले जाते हैं; उसके शरीर से उठती वही ख़ुशबू—जो उन दिनों थी, नई उम्र की ख़ुशबू—आज भी मेरे नथुनों में भर जाती है। अकसर विश्वास नहीं होता कि अब ये मात्र चित्र भर रह गए हैं। कैसे यह होता है कि एक वक़्त जो प्रसंग, जो घटनाएँ इतने जीवंत थे कि दो जीवों को हिलाकर रख देते थे, वे कपास के छोटे-छोटे फाहों की तरह यूँ उड़ जाते हैं। उसके जीवन में एक नया व्यक्ति क्या आया, नई मिट्टी का लेप मेरे साथ के प्रसंगों पर चढ़ गया, उन्हें थोप दिया। मुझ पर ऐसा कोई लेप नहीं चढ़ा...इसलिए वे चित्र भी मेरी स्मृतियों में अटके हैं। उसके यहाँ शायद वे नहीं बचे...इसीलिए जहाँ मैं चाहता था कि उसके साथ रहकर हम दोनों उन चित्रों को फिर जीवित करें, उन्हें फिर से जिएँ और इस तरह ज़िंदगी का जो यह अनिवार्य क्रम है कि सब कुछ बीत जाता है, कुछ नहीं ठहरता, हम इस क्रम को झुठला डालें। झुठलाते हुए जीवन का मौजूदा अध्याय जिएँ, वहाँ वह ऐसी किसी चाह के प्रति उदासीन है। मेरे साथ उसका जो जीवन था, वहाँ वह अपनी इच्छा से आगे-आगे चलती थी। पहल करती थी, लेकिन शादी के बाद उसे वही-वही जीना पड़ा, जो उसके सामने रख दिया जाता था और यह अधिक समय तक रहा, मेरे साथ बिताए समय के मुक़ाबले। लंबे अरसे तक जीने का वह क्रम तो उसकी आदत पड़ गई। मैं उसे अब भी उसी रूप में देख लेता हूँ जैसे वह विवाह के पहले थी। इसे इल्म भर है कि हाँ कभी हम वह थे!

विदेशी औरतों के बारे में ज़्यादा नहीं मालूम, पर भारतीय नारी को देख लिया। वह पति के बिना आराम से रह सकती है। इतनी सारी चीज़ें हैं जिनसे वह जुड़ सकती है—बेटा-बहू, बेटी-दामाद, उनके बच्चे। अपने लड़के-बच्चे न हों तो सौतेले चलेंगे। मौसियाँ-फूफियाँ-मामियाँ। और नहीं तो दूर बैठे नाती-पोतों के लिए स्वेटर बनाना, बड़ी बनाना, आलू के पापड़ बनाना या अचार डालना! भले ही विधवा हों, रिश्तेदारों के यहाँ शादी-ब्याह में धड़ाधड़ जाना, आनंद लेना। आदमी की ज़रूरत उसे होती है तो सिर्फ़ सुरक्षा के लिए—आर्थिक सुरक्षा, शारीरिक सुरक्षा। आज की नारी आर्थिक सुरक्षा की ज़रूरत को पीछे छोड़ती जा रही है, क्योंकि ख़ुद कमाने लगी है, दूसरी सुरक्षा की ज़रूरत उसे अब भी है, क्योंकि वह अबला है और बाहर भुक्खड़ समाज है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरी इस प्रेमिका को आदमी की ज़रूरत नहीं। उसके पास पति वाली पेंशन है, अपना मकान है। आड़ के लिए बेटा-बहू हैं। जिस उम्र में वह है वह अपने आपमें सुरक्षा है। वह अब क्यों आदमी का झमेला पाले, उसकी सेवा-सुश्रूषा में लगे प्रेम की ख़ातिर, वह भी पुराना?

जहाँ औरत आदमी के साथ के बिना आराम से रह लेती है, आदमी कमबख़्त नहीं रह सकता। उसके पति का देहांत हुआ, वह उतना ही रोई जितना बाहर दिखाना था, फिर चुपचाप नई जीवनशैली में बैठ गई। इसकी पत्नी गई तो घूमने लगा—दूसरी चाहिए!

एक और कोशिश की उसने।

"कुछ दूसरा सोचना, पुनर्विचार हुआ क्या?"

"किस बारे में?"

"वही, दो छोटी लकीरें, जो अभी अलग-अलग पड़ी हैं, अगर एक-दूसरे पर आ जाएँ तो प्लस बन जाएँगी।"

"देखो, उम्र जीवन की सबसे बड़ी हक़ीक़त है। तुम्हारे साथ रहने भी लगूँ तो क्या दे सकती हूँ तुम्हें अब। बीमार रहूँगी और तुम मुझे लिए अस्पताल दौड़ा करोगे।"

"उसमें भी तो प्रेम होगा।"

"इससे अच्छा है कि नई उम्र में जब हम साथ थे, उसकी यादें लिए बैठे रहें। तब एक-दूसरे की स्मृति में जो हम आएँगे तो वैसे ही तरोताज़ा, ऊर्जा भरे, जैसे तब थे।"

"तुमने मुझे हमेशा भावनात्मकता की तरफ़ ढकेला। ख़ुद व्यावहारिक थीं, पर मुझे रोमांटिक देखना पसंद करती थीं। विवाह के बाद फट से स्मृति में मुझे सरकाकर, ख़ुद पति से प्रेम करने लगीं।"

"और क्या कर सकती थी!"

"पर उसके साथ सचमुच प्रेम विकसित हो सका?"

"तुम मेरा पहला प्यार थे—बचपन से किशोरावस्था, युवावस्था तक सीढ़ी-दर-सीढ़ी चढ़ता हुआ प्यार, जो बुना नहीं गया, बुन गया अपने आप। जैसा तुम्हारे साथ रहा, हमने जो साथ-साथ किया, वह किसी और के साथ हो सकता था क्या! वहाँ, ससुराल में—घर में बंद, कमरे में बंद!"

"घुमा-फिराकर क्यों कहती हो! वह अब नहीं है। साफ़-साफ़ कहो न!"

"शुरू-शुरू में घृणा होती थी। सगाई हो गई थी, विवाह नहीं हुआ था और वे कभी भी यूनिवर्सिटी में मुझसे मिलने चले आते, जहाँ हम-तुम थे। मुझे बहुत ख़राब लगता था। विवाह के बाद, जब मुझे ब्लीडिंग हुई—तुम्हारे साथ तो सेक्स कभी हुआ ही नहीं—जिस तरह मेरे आराम के लिए वे दौड़े—कभी पानी गर्म कर लाते, रूई...मेरी वितृष्णा कम होनी शुरू हुई। उस पार यह अहसास भी खंभे की तरह खड़ा था, कि अब ज़िंदगी तो इन्हीं के साथ गुज़ारनी है। फिर साथ रहते-रहते थोड़ी आत्मीयता आ ही जाती है। आख़िर सब में थोड़ी-बहुत अच्छाई होती ही है, वह दिखने लगती है।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''तुम्हें यह नहीं दिखा कि उसने हमारा मिलना-जुलना बिलकुल ख़त्म कर दिया था जिससे कि तुम्हारे मन से मैं उतर जाऊँ और तुम उसके ही मन का करती चली गई!''

''तुमसे मिलती रही थी, जब तक मंगेतर थी। विवाहिता, पत्नी हो गई...तब मैंने उनकी बातें माननी शुरू कर दी। समझ रही थी कि कौन पति अपनी बीवी को दूसरे के पास देखना बर्दाश्त करेगा।''

''माने प्रोपर्टी, वह तुम्हें अपनी प्रोपर्टी मान रहे थे—तुम्हें यह नहीं दिखा! तुम्हें इसमें भी उसका प्रेम दिखा। प्रेम होता तो वह तुम्हारे मन का ख़याल करता, तुम्हें मुझसे मिलने देता। बाहर से चिकना-चुपड़ा, भीतर से वह तानाशाह था। याद है, कई वर्षों बाद जब मैं तुम्हारे यहाँ आया और मैंने तुमसे जिया के यहाँ चलने के लिए कहा—जिनके घर हम अकसर जाते थे—हम जब यूनिवर्सिटी में थे और जो तब जीजा जी के स्थानांतरण के बाद तुम्हारे शहर में रहने लगी थी—तुमने पति से अनुमति माँगी, उसने साफ़ मना कर दिया था किस क्रूरता से—और तुमने हँसते हुए उसकी आज्ञा शिरोधार्य कर ली थी, एक बार भी प्रतिरोध नहीं किया।''

''यह कितनी मज़ेदार स्थिति है! तुम प्रस्ताव लेकर आए हो कि हम दोनों साथ रहें। हमने साथ रहना शुरू भी नहीं किया है, और झगड़ा शुरू हो गया, उस बात को लेकर जिसकी अब कोई अहमियत नहीं बची, उस आदमी को लेकर, जो अब दुनिया में ही नहीं है।''

वह मेरे साथ नहीं आएगी। विवाहिता की तरह भी तभी आती, जब उसके और मेरे माँ-बाप ख़ुशी-ख़ुशी हमारा विवाह करते, जो वे करनेवाले नहीं थे। उसका जो होना है, उसे वह तय नहीं करती, कभी नहीं किया। उसके आसपास के लोग तय करते हैं। जहाँ माँ-बाप ने शादी तय कर दी, वहीं चली गई। पिता का घर निरामिष था, उसने ससुराल में मांस पकाना सीख लिया क्योंकि पति को कबाब बनाकर खिलाना था। जो दूसरे तय कर देते हैं, वह वैसे रहने लग जाती है, अपने को समझाने के लिए तरह-तरह के तर्क...यहाँ तक कि जीवन-दर्शन ढूँढ़ लेती है। पहले तय करने वाले माँ-बाप थे, बीच में पति और उसके माँ-बाप, अब बाल-बच्चे हैं।

छोड़ो! वह मेरा अतीत ही रहेगी, प्रेम के चौखटे में क़ैद तसवीर, चौखटे से बाहर नहीं आ सकती।

उम्मीद फिर भी बँधती थी, क्योंकि वह हमउम्र थी, हमहालात। एक वक़्त हमदम, हमरस, इसलिए कुछ समय बाद तीसरी कोशिश की।

''क्या कर रही हो?''

उसे आश्चर्य में डालने के लिए मैंने फ़ोन पर पहला जुमला सीधे-सीधे यही छोड़ दिया, निकल गया। अतिरिक्त अनौपचारिकता, अतिरिक्त आत्मीयता भरा। कभी ऐसे ही करता था। वह मेरी आवाज़ पहचान लेती थी, ख़ुश होती थी। अब हम ढलती उम्र में हैं, वह मेरी प्रेमिका नहीं, पूर्व-प्रेमिका है। हमारे बीच एक पूरे-का-पूरा जीवन जंगली घास की तरह फैला पड़ा था। प्रेम उगे, इसके लिए कुछ करना तो होगा, उसके दिवंगत पति को लेकर बातें एकदम नहीं, उन्हें एक तरफ़ सरकाकर मुझे प्रेम पर सीधे उतरना चाहिए। यही सब सोचकर एकाएक पुरानी अनौपचारिकता में बोल गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''क्या ?'' उधर से क़रीब-क़रीब चीख़ती हुई अचकचाहट आई।

''क्या है, कौन बोल रहा है, हलो...हलो...हलो ?''

वह नहीं, कोई दूसरी महिला थी। कड़क आवाज़, लड़ने पर उतारू। शायह वह हलो कौन बोल रहे हैं, किससे बात करनी है जैसी सभ्य-सभ्य भूमिकाओं वाली शैली की आदी थी। सीधे, शुरू में ही बरसा दी गई प्रेमभरी ऐसी अनौपचारिकता से बौखला गई थी।

घबराकर मैंने फ़ोन रख दिया। मोबाइल पर देखा तो नंबर तो वही लगाया था जो उसने दिया था। उसका फ़ोन इधर-उधर पड़ा रह गया होगा, उसकी बहू या उसकी पोती ने उठाया होगा! वह चिंचियाहट लड़की की नहीं किसी खुर्राट महिला की लगती थी। कोई प्रौढ़, बहू ही होगी। दूसरे का मोबाइल न उठाया जाए तो दूसरे के मामलों में ताक-झाँक न की जाए—ऐसी शालीनता का रिवाज उस घर में शायद नहीं था। सबको, सबका, सबकुछ जानना चाहिए—इसको आत्मीयता मानते होंगे!

मुझे यक-ब-यक उस तरह नहीं शुरू करना था, सुनिश्चित कर लेना था कि फ़ोन पर वही थी, लेकिन बाण तो अब छूट चुका था।

दो दिनों बाद उसका फ़ोन आया।

''क्यों किया था फ़ोन ?''

''ऐसे ही मन किया था।''

''अनाप-शनाप, कुछ भी बोलने का ?''

''नहीं, सिर्फ़ यह कहा था—'क्या कर रही हो ?' सोचा, ऐसे शुरू करके तुम्हें सरप्राइज़ दूँगा।''

''क्यों दोगे, यह जानने की क्या ज़रूरत कि मैं किस वक़्त क्या कर रही हूँ ?''

''वह नहीं, तुम बतातीं, न बतातीं, कुछ भी कहतीं, अंदाज़ा हो जाता।''

''किस बात का ?''

''किसी बात का नहीं, हालचाल मिल जाते।''

''हालचाल क्यों लेना ?''

वह एकाएक कितनी बदल गई थी।

''अब क्या, किसी की यह स्वाभाविक इच्छा नहीं हो सकती कि अपने दोस्तों का हालचाल जाना जाए। वह बीमार है या कि क्या और सहपाठी तो बहुत ही क़ीमती होते हैं, कितने कम बचे हैं, उनकी तबीयत ठीक-ठाक है—जानकर सुख मिलता है। तुमने भी कहा था—फ़ोन कर लिया करो।''

''इस तरह करने को नहीं कहा था। किसी को जताना कि मैं तुम्हारी यह थी, वह थी। अच्छा लगता है ?''

''मैंने कहाँ किसको जताया ?''

''तुम्हारे फ़ोन ने, उस तरह की बेतकल्लुफ़ी ने। अब दबे-दबे वे कहते हैं—अच्छा, तो इसीलिए मिलने आया करता था, बुढ़ापे में प्रेम का चक्कर चलाने।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अगर ऐसा लगता भी है किसी को तो उसे बुरा नहीं लगना चाहिए। हमारा प्रेम विवाह के पहले का था, किसका नहीं होता। यह तो हमारी तारीफ़ की बात है कि वह प्रेम आज भी बना हुआ है। आज वह तुम्हारे पति या मेरी पत्नी, किसी के कष्ट का कारण भी नहीं बन रहा, क्योंकि दोनों नहीं हैं। हमारा प्रेम...तब और अब भी...यह सच नहीं है क्या?"

"सच को ढोल बजा-बजाकर उजागर करने की ज़रूरत नहीं होती! जगज़ाहिर करना जगहँसाई के लिए। हम सत्तर पार हो गए, अच्छा लगता है?"

"सच को छिपाएँ भी क्यों, उम्र को लेकर क्यों बैठे रहें? क्या एक ख़ास उम्र में पहुँचकर सब कुछ ख़त्म कर देना चाहिए? जो सच है, उसे दबाकर रखो, जो मन में आए वह न बोलो, अपने ढंग से जीने की कोशिश न करो, कोई कशिश न पालो! वह हमारा अतीत था, किसी और का नहीं। उसमें जो अच्छा था, उसे हम क्यों न देखें, उससे बल क्यों न लें, उसे आज के अपने जीवन में क्यों न उतारें?"

"अपने जीवन में करो जो करना है, दूसरों को कैसा लगता है—यह भी देखना चाहिए। ढिंढोरा पीटते फिरना कहाँ की अक़्लमंदी है?"

"मैंने वह नहीं किया। मैंने सोचा तुम्हारा मोबाइल है, तुम्हीं होगी उस पार, इत्तफ़ाक़ से उधर कोई दूसरा था। अब अगर उसे कुछ अहसास हो भी गया तो क्या, तुम्हारे विवाह के पहले का प्रेम था वह। अब हम पहली उम्र के तो हैं नहीं कि मैं या तुम वासना से पीड़ित कहे जाएँ तो छिपाने की क्या ज़रूरत! तुम्हीं उनसे कह सकती हो—हाँ हमारा था।"

"इन सब बातों में घसीटा जाना मुझे अच्छा नहीं लगता! तुम इधर-उधर बोलते फिरते हो कि हम एक-दूसरे के लिए यह थे, वह थे?"

"एकाध! बहुत ही अंतरंग किसी से बोला होऊँगा, वह भी सत्य—कि मेरी कच्ची उम्र में तुम्हारे प्रेम ने ही मुझे सँभाला, सँवारा। तुमने मुझे वह बनाया जो मैं आज हूँ। मेरे जीवन में वैसा प्यार फिर नहीं आया। तुम्हारे लिए भी यह आदर की बात होनी चाहिए।"

"नहीं, बदनामी होती है।"

वही बात—उसकी चिंता इज़्ज़त की है। भले ही दिखावा। वह अपने बेटा-बहू, उनके बच्चों के आगे अपनी यह छवि रखना चाहती है कि उसका उनके पिता के अलावा किसी से लगाव नहीं था, शादी के पहले भी नहीं, इसलिए उसे बचपन के प्रेम-जैसी निष्कलुष चीज़ का ज़िक्र भी बदनामी लगती है। आम भारतीय की तरह वह यह भी सोचती है कि सत्तर की उम्र में पहुँचकर आदमी को बूढ़ा दिखना चाहिए, वैसा ही व्यवहार करना चाहिए। प्रेम सिर्फ़ बाल-बच्चों, पोते-पोतियों के लिए। वयस्कों वाला प्रेम तुमसे दूर-दूर तक जुड़ता नहीं दिखना चाहिए। उम्र बुढ़ापे की तो बड़े-बूढ़ों की तरह रहो, तभी लोग इज़्ज़त करेंगे।

"इज़्ज़त! इज़्ज़त!"

"मुझे फ़ोन न किया करो। मैं अब एक विधवा हूँ...तुम क्या जानो उसे किस तरह रहना होता है!"

आगे मैं नहीं सुन सका, कान बंद हो गए। इक्कीसवीं सदी में विधवा वाली बात, एक पढ़ी-लिखी औरत के मुँह से? अजीब है हमारा देश और यह समाज, जहाँ एक समय में ही

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कितने समय रहते हैं—मैं इक्कीसवीं सदी में था—इस उम्र में उसके साथ रहने की सोचता था, विवाह की भी क्या ज़रूरत, सिर्फ़ साथ रहना तो उसके भीतर अट्ठारहवीं सदी ठहरी हुई थी, वृंदावनी विधवा! उसे भी दोष कैसे दिया जाए! पचासवें दशक के पारंपरिक संस्कारों वाले एक परिवार में पली-बढ़ी वह। विवाह हुआ उससे भी अधिक तंगसोच वाले घर में। यह उसका क़ुसूर नहीं कि उसका जीवन चार-पाँच रिश्तेदारों के घरों और तीन-चार शहरों की चौहद्दियों में सिमटकर रह गया। अब अपने बेटा-बहू की आश्रिता है, जो इस उम्र में पहुँचकर सब हो जाते हैं। उससे यह शिकायत कैसे की जा सकती है कि वह मेरी तरह स्वतंत्रता-पीड़ित क्यों नहीं है। अगर मेरे साथ नहीं रह सकती, तो अपने पति वाले मकान में पेंशन के सहारे क्यों नहीं रहती, स्वतंत्र। क्यों नहीं निकलती वहाँ से, पर जो वह जीवन में पहले कभी नहीं कर सकी, वह इस उम्र में कैसे करेगी?

वह ख़ात्मा था।

एक समय में उसका साथ, हमारा प्रेम, उसे अपनी ज़िंदगी की सबसे ख़ूबसूरत चीज़ मानता रहा मैं, उससे दूर रहते हुए भी। यह जो आदर—उसे मैं तमाम ज़िंदगी देता चला आया था, वह हाथ से झर गया आज और यह हुआ मेरा उसे सशरीर खींचकर अपने घर ला बिठाने के लालच में।

और वह, उसके मन से तो वह ख़ूबसूरत भावना कब की निकल चुकी थी। जब हम दूसरे लोगों के मन का ज़्यादा और ज़्यादा करने लगते हैं तो उसी अनुपात से हमारे भीतर के सत्व का क्षरण होता चला जाता है। उसके भीतर क्या बचा अब? अब वह सिर्फ़ एक खोल है, जिसे वह ढो रही है। जिसे वह विधवा कहती है।

जिसे कभी अगर कुछ दिनों न मिले तो बेचैनी की कैसी हवा चोले में इधर-उधर होती थी, उसकी आवाज़ अब कभी नहीं सुन सकूँगा, फ़ोन पर भी नहीं। जिसका साथ एक वक़्त हमारे जीवन को भरे हुए था, जिसकी पेंगें मन को ऐसे उठाती-गिराती थीं कि कोई भी क्षण जीवन-मरण का प्रश्न बन बैठता था, साथ जो ज़िंदगी भर रहा, मानसिक ही सही, उसे यों ख़त्म होना था? जैसे सड़क पर पड़ा काग़ज़ का एक टुकड़ा। आते-जाते किसी ने उस पर जलती तीली यों ही फेंक दी। जल गया, कार्बन रेशा-रेशा इधर-उधर उड़ गया, देखते-देखते।

पत्नी जो जीवन-भर मुझ पर लदी रही, वह संसार से चली गई, फिर भी मुझसे चिपकी हुई है और यह, जिसे मैं आजीवन ख़ुद से चिपकाए रहा, जो संसार में अब भी है, उसे गरम चिमटे के बल खींचकर मेरे वजूद से अलग कर दिया गया जैसे। जो मेरे जीवन का सत्व था, कि अगर तराजू के एक पलड़े में उसके साथ बिताए गए कुछ वर्ष रखे जाएँ और दूसरे में जीवन के शेष सब वर्ष, तो भी उसके वाला पलड़ा भारी बैठेगा। उसे ख़त्म होना था, यों ही निकल गया एक लापरवाही भरे वाक्य से? अब क्या बचा, किसी दिन कहीं से उड़ते-उड़ते ख़बर मुझ तक आएगी कि इतने दिन, इतने माह पहले वह नहीं रही या उस तक यह जाएगी कि मैं नहीं रहा। सुननेवाले को ख़बर पर अचरज नहीं होगा। इस पर होगा कि क्या यह जीव वही था जिससे लिपटकर एक-एक साँस आया-जाया करती थी एक वक़्त?

कमबख़्त ज़िंदगी!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साक्षात्कार

गोविन्द मिश्र से उर्मिला शिरीष की बातचीत

गोविन्द जी! लेखन यात्रा का आरंभ कब हुआ ? कोई विशेष घटना, प्रेरणा या प्रभाव, जिसके कारण आप लेखन की ओर प्रवृत्त हुए ?

जब मैं इंटर में पढ़ता था, बाँदा में, सन् 53 से 55 के बीच, उम्र रही होगी कोई चौदह-पंद्रह साल—लेखन तब से शुरू हुआ और इत्तफ़ाक़ कि पहली रचनाएँ कहानियाँ ही बनीं। मेरे हाई स्कूल के अध्यापक—श्री देवेन्द्रनाथ खरे एक हस्तलिखित पत्रिका निकालते थे, उसमें एकाध वो रचनाएँ अगर कह सकते हैं कि छपीं तो छपीं। जिसे कहते हैं सर्जनात्मकता का आभास देना या प्रकटीकरण तो पहले-पहल वही हुआ। मेरे गणित के अध्यापक श्रीकृष्ण बिहारी श्रीवास्तव ने इंटर छोड़ने के समय जो सर्टिफ़िकेट दिया था, उसमें अंग्रेज़ी में एक जुमला यह भी लिखा था : 'ही हैज़ द मेकिंग्स ऑफ़ राइटर इन हिम।'

अब विशेष घटना तो याद नहीं पड़ती लेकिन ये जो कहानियाँ लिखी गई थीं, वह सिर्फ़ उस लड़की के लिए थीं, जिससे प्रेम मिलना शुरू हुआ। चरखारी में जो लड़का वहाँ की सामाजिक हिंसा के अक्स—*जो लाल पीली ज़मीन* उपन्यास में आए हैं—उन्हें लेकर बाँदा पहुँचा था, उसे प्रेम मिलना शुरू हुआ। विशेष घटना यही समझ लीजिए। कुछ उस तक पहुँचाने की ज़रूरत हुई, हमारे बीच कोई ग़लतफ़हमी, कोई द्वंद्व या हो सकता है मात्र प्रेम का इज़हार। इनके दबाव से निकली वे कहानियाँ बहुत जज़्बाती थीं। उनमें से कुछ के शीर्षक याद आते हैं—'पूर्णमासी का भोग' और 'चंदनिया अरज करे'।

क्या परिवार में साहित्यिक माहौल था ? या साहित्य ने आपके भीतर जाकर, आपकी भावनाओं को जगाया ? अपने बचपन तथा पारिवारिक संबंधों के बारे में कुछ कहेंगे ?

कोई साहित्यिक माहौल नहीं था। एक ही माहौल था कि माँ-बाप में ख़ूब झगड़े होते थे। घर में झगड़े, बाहर लोगों के झगड़े। शायद उसकी प्रतिक्रिया ने मुझे प्रेम और सर्जना की तरफ़ धकेला। पारिवारिक संबंधों के बारे में क्या कहा जाए। इस तरह बच्चों को तब नहीं पाला जाता था जैसे आज मध्यवर्ग अपने बच्चों को पालता है। माँ-बाप बहुत चिंता नहीं करते थे। पड़े रहो

जन्म : 1959। *केंचुली, रंगमंच, निर्वासन* चर्चित कहानी-संग्रह। कई संस्थाओं से पुरस्कृत। संपर्क : ई-115/12, शिवाजी नगर, भोपाल 462003, (म.प्र.)

CC-0.Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहीं भी, बड़े होओ अपने-अपने ढंग से। वैसे भी हम पाँच भाई-बहन थे। सब अपनी-अपनी राह पर...इसलिए शुरू से ही घर से बाहर की तरफ़ फिंक गया एक तरह से। यानी बाहर के लोगों में आत्मीयता ढूँढ़ना, उनसे जुड़ना, उनका प्रभाव पड़ना।

शुरू में आप किसे प्राथमिकता देते थे, नौकरी को या लेखन को ?

शुरू में नौकरी पाने की कशमकश थी इसलिए पढ़ाई में मेहनत करना, चाहे वह एम.ए. की परीक्षा हो या आई.ए.एस. कंपिटिशन की। उस समय लिखना क़रीब-क़रीब दब गया था, लेकिन नौकरी में आ जाने के बाद लेखन ने जैसे फिर पीछे से आकर पकड़ लिया और 1963 से सक्रिय लिखना शुरू हो गया। शुरू के एक-दो साल अपना माध्यम ढूँढ़ने में गए, पर जल्दी ही पता चल गया कि मैं ख़ुद को कहानियाँ और उपन्यासों में ही अच्छा व्यक्त कर सकता हूँ। बाद में पूरे जीवन भर मेरे लिए अपनी पहचान एक लेखक की ही रही। अफ़सरी सिर्फ़ रोटी कमाने की तरह देखी। मतलब वह नौकरी न करता तो कुछ और जीवन-यापन के लिए करता लेकिन आत्मिक रिश्ता तो लिखने से ही बना शुरू से ही और आजीवन रहा। नौकरी ज़रूरी लगती थी कि कभी किसी के आगे हाथ न फैलाना पड़े...पर उसके आगे नहीं।

आप ऊँचे-ऊँचे पदों पर रहे, लोग तो चिपक जाते हैं, उनसे। आपने साहित्य के प्रति गहरा अनुराग रखा कैसे ? क्यों ? अफ़सर लिखने में आते हैं, तो एक-दो किताबें लिखने के बाद साहित्य से दूर चले जाते हैं। नौकरशाही उन्हें निगल जाती है।

अब यह पता नहीं। शायद बचपन से ही इस तरफ़ प्रवृत्ति थी, जिसकी तरफ़ पहले इशारा किया है। पद मेरे लिए हमेशा एक नौकरी की तरह आया। उससे बड़ा मुझे अपना लेखकवाला क़द लगता था और हमेशा लगता रहा। मुझे अपने बॉस या मंत्री लोग भी क़द में ख़ुद से छोटे लगते थे। वे थे भी। मैं उनका अपमान नहीं करता था, लेकिन उन्हें ख़ुद से छोटा ज़रूर पाता था। यूँ कि मेरी चिंताएँ, मेरा सोचना उनसे बहुत व्यापक और गहरा था। साहित्य से लगाव जो गहराता गया तो इसी कारण कि वह मेरी सोच को अंतहीन फलक और अंतहीन गहराई दे सकता था। वो एक शे'र की लाइन है न—'क़ायम तो हो कोई रिश्ता गुहर के साथ'।

फिर तो आप अपने समकालीन कथाकारों से भी स्वयं को अलग देखते होंगे ? किन मायनों में ? आपके लेखन पर किसी का तो प्रभाव पड़ा होगा, जैसे आम तौर पर लेखकों पर पड़ता है।

शुरू में ही अच्छी नौकरी मिल जाने का एक फ़ायदा हुआ कि मैं अपने समकालीनों की तुलना में ख़ुद को अधिक स्वतंत्र रख सका। मैं देखता था कि जिस तरह उन लोगों को समझौते करने पड़ते थे, चापलूसी करनी पड़ती थी। यहाँ तक कि गिड़गिड़ाना पड़ता था या किसी ग्रुप में शामिल होना पड़ता था। मुझे इन सारी चीज़ों की ज़रूरत नहीं पड़ी क्योंकि शुरू में ही मैंने अपने परिश्रम से एक अच्छी नौकरी पा ली थी।

एक दूसरे मायने में भी मैं अपने समकालीनों से ख़ुद को अलग पाता था। मैं अंग्रेज़ी साहित्य में एम.ए. करके आया था। वह भी उस समय के इलाहाबाद विश्वविद्यालय से, जिसे तब 'ऑक्सफ़ोर्ड ऑफ़ द ईस्ट' कहा जाता था। मैंने बी.ए. में ही टॉमस हार्डी के सारे उपन्यास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पढ़ डाले थे, हालाँकि इंटर तक मेरी पढ़ाई का माध्यम हिंदी रहा था। मैं कोई कॉन्वेंट में पढ़ा विद्यार्थी नहीं था। साधारण म्यूनिसिपेलिटी के स्कूल—सरकारी स्तर के स्कूल—या राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में पढ़ा था। मुझे अपने समकालीनों में, याद नहीं आता जिसके लिए विश्व साहित्य का दरवाज़ा शुरू में ही यूँ खुल गया जैसे मेरे लिए खुला था। इससे साहित्य संबंधी सोच को फैलने के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र मिला। साहित्य क्या है, यह मेरी समझ में एक लेखक ताज़िंदगी सोचता रहता है, अपनी हर रचना में इस सवाल से टकराना होता है। उसकी बारीकियों को हम तभी छू पाते हैं जब हमारे शुरू के पढ़ाई वाले संस्कार तंग न रहे हों। हिंदी एम.ए. करके लिखनेवाले साहित्यकारों की इसीलिए ज़बरदस्त सीमाएँ बनती हैं। उनकी भाषा तो ख़राब होती ही है।

क्या समकालीन कथा साहित्य को भी आप इसी दृष्टि से देखते हैं या उससे प्रभावित भी हुए ?

प्रभावित बिलकुल नहीं। उस वक़्त जो चर्चित कहानियाँ थीं, वे या तो विशुद्ध नक़ल थीं या किसी से प्रभावित, जैसे—दूधनाथ सिंह की 'रीछ' कहानी, जो काफ़्का की 'मेटामोरफ़ोसिस' की क़रीब-क़रीब नक़ल थी या ज्ञानरंजन की 'बहिर्गमन' जो कामू की 'आउटसाइडर' से प्रभावित है। इस तरह का लेखन जैसे ख़ुद को विशिष्ट दिखाने की कोशिश करता था और संवेदना, जो सदियों से साहित्य की बुनियादी चीज़ रही है, उससे दूर होता था, तो समकालीनों ने मुझे क़तई प्रभावित नहीं किया। हाँ, हिंदी में नया था, हिंदी की मेरी शिक्षा इंटर तक ही थी तो भी पुराना हिंदी साहित्य क़रीब-क़रीब पूरा पढ़ा और उसने प्रभावित भी किया। मसलन सूर, तुलसी, कबीर कैसे आपको झनझनाते और रुलाते हैं। गद्य में भी वे लोग जिन्हें नया कहानीकार कहा जाता है जैसे रेणु, निर्मल वर्मा, शैलेश मटियानी—इन लोगों ने प्रभावित किया यह तो नहीं कहूँगा, लेकिन इन लोगों की रचनाएँ अच्छी लगती थीं इसलिए कि उनके केंद्र में भावनात्मकता रहती थी। एकदम सीधे-सीधे तो प्रभाव किसी का नहीं पड़ा। अगर मेरी रचनाओं में समानता ढूँढ़ी जाए तो शायद शैलेश मटियानी के लेखन से ढूँढ़ी जा सकती है क्योंकि उनकी तरह बाह्य और आंतरिक—दोनों एक साथ मुझमें हैं। अगर उनके यहाँ पहाड़ की आंचलिकता है, तो मेरे यहाँ बुंदेलखंड की है और हाँ (हँसते हुए) जैसे उनका सही मूल्यांकन होना बाक़ी है, वैसे ही मेरा भी।

मूल्यांकन होना बाक़ी है, तो क्या आपको लगता है कि आपको जो कुछ लिखना था वह लिख लिया या कहीं छूट गया है ? छूटा हुआ अंदर से थपथपाता होगा... ?

छूटा है, बहुत छूटा है। मैं सोचता हूँ कि जो प्रसंग जीवन से उठाकर आप साहित्य में लाते हैं, वह ख़त्म नहीं होते, उनके भूत पीछे छूट जाते हैं। जीवन और साहित्य में शायद ये बड़ा फ़र्क़ है कि जीवन में मृत्यु पर उस व्यक्ति का सब कुछ समाप्त हो जाता है जबकि साहित्य में किसी व्यक्ति (पात्र) का जीवन बराबर चलता रहता है। इसे साफ़ करने की कोशिश करूँ तो कह सकता हूँ कि हालाँकि मेरी माँ, मेरे पिता आज संसार में नहीं हैं बावजूद इसके कि मैंने उन पर ख़ूब लिखा है, लौट-लौटकर उन पर आया हूँ लेकिन वे मेरे साहित्य में आगे भी जीवित रहेंगे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS MoE 2025 Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और शायद फिर आएँगे। इस मायने में साहित्य, जो जीवन की अनुकृति कहा जाता है, जो जीवन से बहुत आगे जाता है। यहाँ वह व्यक्ति भी नहीं मरता जिसकी मृत्यु पर उपन्यास में आपने पन्ने रँगे हैं। तो छूटा तो बहुत है। अब मैं कितना अपने जीवन में या अपनी सामर्थ्य में उसे पकड़ पाता हूँ। वो कहावत है न 'लाइफ़ इज़ शॉर्ट, आर्ट इज़ लांग।'

वही छूटा हुआ रचनाकार को ख़ामोशी से बैठने नहीं देता है इसलिए रचनाकार की यात्रा कभी समाप्त नहीं होती...लेकिन इसके ख़तरे भी हैं—क्या निरंतर लिखते हुए स्वयं को दोहराने की बात नहीं आती ?

कुछ प्रसंग या परिवेश हर लेखक में बार-बार आते हैं। मुझमें भी आए हैं—जैसे एक आलोचक ने यह कहा भी और मुझे वह बात अच्छी लगी थी उसकी पकड़ कि आपके उपन्यासों में एक मंदिर का संकुल और कोई बड़ा पेड़ ज़्यादातर पीपल या बरगद बार-बार आता है। सही होगा। पर इसे दोहराव मानना ठीक नहीं क्योंकि उनसे तरंगें हर बार नई-नई तरह की उठती हैं, जैसे *हुज़ूर दरबार* में मंदिर का संकुल या *कोहरे में क़ैद रंग* का मंदिर का संकुल—ये परिवेश में एक हो सकते हैं लेकिन उनसे जो व्यंजनाएँ फूटी हैं, वे एकदम अलग-अलग क़िस्म की हैं। *पाँच आँगनों वाला घर* के बड़बाबा उस संयुक्त परिवार के सबसे बड़े सदस्य हैं जबकि *हुज़ूर दरबार* में पीपल के पेड़ के पत्तों का हिलना समय के बहने की व्यंजना देता है। कुछ दूसरे तरह के दोहराव भी हो सकते हैं—जैसे *उतरती हुई धूप* उपन्यास की नायिका और *कोहरे में क़ैद रंग* की सरस्वती वही है लेकिन *उतरती हुई धूप* लिखने के बाद लगा था कि जैसे मैंने उस पात्र और प्रसंग के साथ पूरा न्याय नहीं किया। उस उपन्यास में नकारात्मक पक्ष ज़्यादा था इसलिए उस पात्र और प्रसंग के सुंदर पहलुओं को फिर से जीने के लिए *कोहरे में क़ैद रंग* लिखना पड़ा।

तो हमेशा ही कुछ-न-कुछ छूट जाता है। कह सकता हूँ कि अकसर महत्त्वपूर्ण छूट जाता है। जिसे फिर से पकड़ने के लिए नई रचना लिखनी पड़ती है। इसी तरह रचना यात्रा जो आपने प्रश्न में कहा, थमती नहीं। कम-से-कम सच्चे रचनाकार की तो नहीं ही थमती। शैलेश मटियानी जीवन के आख़िरी दिनों में भी 'नदी किनारे गाँव' में अपने बचपन की जीवन स्थितियाँ जीते हैं—बावजूद इसके कि वे मानसिक व्याधि से पीड़ित थे, उन्हें बराबर सिरदर्द रहता था।

एक रचनाकार की दृष्टि बाह्य-जगत् से लेकर अंतर्जगत् तक विस्तार पाती है उम्र के साथ, अनुभव के साथ। उस लिहाज से आप भारतीय जीवन-दर्शन को किस रूप में देखते हैं ?

मुझे भारतीय जीवन-दर्शन में सबसे अच्छी जो चीज़ लगती है, वो यह है कि दर्शन हमारे यहाँ दैनंदिन जीवन में ढलकर आता है। इतना कि वह गूढ़ दर्शन बहुत सरल हो जाता है, बहुत ही सामान्य ढंग से हमारे जीवन को प्रभावित करता है, किताबी ज्ञान भर नहीं रह जाता। जैसे निस्संगता का भाव ही लीजिए! परिवार एक बुनियादी इकाई होने के बावजूद भारतीय व्यक्ति को उतना नहीं बाँध पाता। आपको हर भारतीय पिता यह कहता हुआ मिल जाएगा कि उनका

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बेटा एक अलग जीव है, वह अलग स्वभाव और अलग नियति लेकर आया है। तो एक तरफ़ इतना जुड़ाव कि हर हाल में परिवार को बनाए रखना है, दूसरी तरफ़ बराबरी से वो निस्संगता भी जो प्रकृति के अन्य जीवों में होती है कि बच्चे समर्थ हुए तो उन्हें अपनी राह जाने देना, उन्हें स्वतंत्र कर देना। ये शायद संभव भी इसीलिए हो पाता है कि निस्संगता भारतीय स्वभाव के मूल में है। इसलिए है कि वह अपने को सिर्फ़ आज के समय से जोड़कर नहीं देखता, उसका रिश्ता विस्तृत ब्रह्मांड और अंतहीन समय से होता है जिसे भवभूति ने साहित्यकार की यशकामना के संदर्भ में कहा था—'कालोहि निरवधिः विपुला च पृथ्वी'। यानी काल पर अवधि की सीमा नहीं है और पृथ्वी विपुल है। यह स्वयं का निस्सीम से जोड़ना भारतीय दर्शन की सबसे बड़ी चीज़ है और फिर उसे अपने छोटे-से-छोटे काम में उतार लेना भी।

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मैं भारतीय ही हो सकता था। ख़ूब अंग्रेज़ी पढ़ी, अंग्रेज़ी के माध्यम से विश्व साहित्य पढ़ा, ख़ूब विदेश घूमा, शायद संसार के हर कोने को थोड़ा-थोड़ा छूकर देख आया, लेकिन मैं भारत के बाहर कहीं नहीं रह सकता और एक भारतीय के अतिरिक्त किसी और जैसा सोच नहीं सकता। इसीलिए मुझे केवल भारत में रहना, छोटी जगहों पर रहना और वे लोग जो बहुत पढ़े-लिखे नहीं, उनसे रागात्मक संबंध बैठा पाना...मुझे आसान लगता है। संक्षेप में कहूँ तो प्रेम और वैराग्य को एक साथ जीना जो भारतीय दर्शन और भारतीय जीवन-पद्धति में है, वह कहीं और नहीं।

***पाँच आँगनों वाला घर, धीरे समीरे* तथा कहानियों में अलग-अलग जीवन-दृष्टियाँ आई हैं—आपने स्वयं को किन रचनाओं में रमा हुआ पाया ?**

मुझे नहीं मालूम कि उपन्यासों में अलग-अलग जीवन-दृष्टियाँ आई हैं। जिस जीवन को उठाया गया है, उसे देखने का नज़रिया में थोड़ा फ़र्क़ हो सकता है। ये भी हो सकता है कि एक ख़ास समय के बाद अगर लेखक की सोच में कोई मूल परिवर्तन आए। वरना तो कुल-मिलाकर जीवन-दृष्टि क़रीब-क़रीब एक ही रहती है। कोई लेखक चाहे भी तो अलग-अलग उपन्यासों में अलग-अलग जीवन-दृष्टि रख नहीं सकता, रखेगा तो आरोपित-सी लगेगी। इस बात की पुष्टि इससे हो जाती है—चाहे *पाँच आँगनों वाला घर* हो या *धीरे समीरे*, चलते-चलते, घूमते-फिरते आप उन्हीं मूल्यों पर पहुँचते हैं, जो लेखक के अपने मूल्य हैं। *पाँच आँगनों वाला घर* में पारिवारिक पृष्ठभूमि ज़्यादा हो सकती है, तो *धीरे समीरे* में धार्मिक या दार्शनिक हो सकती है। रही बात रमने की तो मैं जब तक पूरा डूब नहीं जाता, कोई रचना पूरी नहीं कर पाता। यही कारण है कि उपन्यास लिखने में चार-पाँच वर्ष लगते हैं और कहानियाँ वर्ष में दो-तीन से ज़्यादा नहीं हो पातीं।

स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतंत्रता के बाद के कथा साहित्य को आप किस तरह रेखांकित करना चाहेंगे ?

मेरा ख़याल है इसका आलोचक ज़्यादा अच्छा जवाब दे सकते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वतंत्रता के बाद जीवन-मूल्यों में तेज़ी से बदलाव आया है जिसे हम 'गिरावट' भी कह सकते हैं। आपकी दृष्टि में क्या कारण हो सकते हैं?

गिरावट निश्चित आई है और इसका मुख्य कारण हमारे राजनेताओं का पतन और उनकी दुकानदारी है। जब लोग ऊपर यह सब देखते हैं, तो गिरावट नीचे भी फैलती चली जाती है।

आपके कथा-साहित्य में मानवीय मूल्यों, पीढ़ियों के अंतराल तथा मानवीय संबंधों पर ख़ासा ध्यान दिया गया है, क्या आप व्यक्तिगत जीवन में भी इन बातों को तवज्जो देते हैं?

मेरी नज़र तो जीवन पर रहती है, समूचे जीवन पर। ये ज़रूर है कि जहाँ मनुष्य की बात होगी तो उनके आपसी संबंधों की बात भी होगी, भी क्या, निश्चित ही होगी। उसी से तो बात निकलेगी। व्यक्ति-व्यक्ति की टकराहट और टकराहट में जुड़ाव को भी हासिल कर लीजिए, उन्हीं के बीच से सारी बातें निकलती हैं। पीढ़ियों का अंतराल ज़रूर यूँ माना जा सकता है कि मैं इस पर लौट-लौटकर आया हूँ। बहुत चुभता है यह देखकर कि आज पहले जैसे नेता तो छोड़िए, वैसे अध्यापक, वैसे अधिकारी, वैसे समर्पित लोग, वैसे साहित्यकार भी क्यों नहीं हैं? फिर भी हम कहते हैं कि हम प्रगति कर रहे हैं, तो इसकी खोज करने चलो तो पीढ़ियाँ या पीढ़ियों के नुमाइंदे आमने-सामने बैठते ही हैं। वैसे विशुद्ध रूप से साफ़-साफ़ तरीक़े से पीढ़ियाँ एक *पाँच आँगनों वाला घर* उपन्यास में ही उतरी हैं, दूसरे उपन्यासों में इस तरह नहीं दिखाई देतीं। थोड़ा-बहुत *कोहरे में क़ैद रंग* में भी। वहाँ एक तरफ़ सरस्वती है तो दूसरी तरफ़ रेवा, जिसे सरस्वती का विस्तार कह सकते हैं।

आज मानवता, करुणा, प्रेम तथा परोपकार आदि को आदर्श कहकर ख़ारिज कर दिया जाता है जबकि भारतीय जीवन के मूल में 'आदर्श' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इन सबको केंद्र में रखकर यदि आप लिखते हैं तो क्या ख़तरे रहते हैं?

मैं इनमें से किसी को केंद्र में रखकर नहीं लिखता। जिस जीवन को, जीवन के जिस पक्ष को उठाना है, उसको उसके पूरेपन में पकड़ने की कोशिश करता हूँ। जहाँ जीवन के कुछ अच्छे रूप आए हैं—जैसे *पाँच आँगनों वाला घर* में कम्मोबाई का व्यवहार। उन्हें आदर्श की तरह प्रस्तुत नहीं किया गया है, उनके व्यक्तित्व से वैसा व्यवहार स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित है, वह यह माँग नहीं करता कि इसे माना जाए या ख़ारिज किया जाए। लेखक का अभिप्राय सीमित है कि अगर जीवन में कुरूपता है तो सुंदरता भी है। अगर खींचतान, घरेलू क्रूरता है तो पात्रों के अच्छे व्यवहार भी हैं, कर्म भी और ये आज भी हैं। मुझे अपनी एक कहानी 'तुम हो' याद आ रही है। उसमें एक असफल विवाह पर लड़की के पिता आज के दहेज़ क़ानून का फ़ायदा उठाते हुए लड़की को ससुराल वालों पर तरह-तरह के आरोप लगाने के लिए उकसाते हैं ताकि वर पक्ष से ज़्यादा-से-ज़्यादा ऐंठ लिया जाए, उन्हें परेशान कर दिया जाए, दंडित किया जाए, लेकिन एक बिंदु पर पहुँचकर वह लड़की झूठ का साथ देने से इनकार कर देती है। कहती है कि जब लड़के के माँ-बाप ने उसे प्रेम का ही व्यवहार दिया है, तो मैं कैसे कह दूँ कि उन्होंने मुझे जलाने की कोशिश की। यह आज के जीवन का एक सुंदर पक्ष है और इस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर क्यों नहीं लिखा जाना चाहिए? इसे आप 'आदर्श' नहीं कह सकते। बेशक उस एक लड़की से यह निकलता है, सब लड़कियों से नहीं...लेकिन उस लड़की की बुनावट से बड़े ही स्वाभाविक ढंग से यह उतरता है। यह फ़र्क़ है। इसलिए यह आदर्श नहीं, यह भी यथार्थ है।

आपके साहित्य में स्त्री पात्रों को ख़ासी जगह मिली है। एक व्यक्ति के रूप में, एक संवेदनशील लेखक के रूप में—प्रेमचंद से लेकर आज तक के साहित्य में स्त्री की बदलती हुई छवि को आप किस रूप में देखते हैं?

मैंने यह सोचकर नहीं लिखा कि स्त्री पात्रों पर ज़्यादा लिखना चाहिए, पुरुष पात्रों पर कम। हाँ, स्त्री पात्र मेरे लेखन में ज़्यादा आए या पुरुष पात्रों के मुक़ाबले ज़्यादा सशक्त होकर आए, तो इसमें यह हो सकता है कि पुरुषों के मुक़ाबले स्त्रियों से मेरे संबंध ज़्यादा स्वाभाविक रूप से बन जाते हैं। नारियों में पुरुषों के मुक़ाबले ज़्यादा अच्छाइयाँ, ज़्यादा जीवन-शक्ति दिखाई देती है। इस वजह से भी हो सकता है कि पुरुषों के मुक़ाबले मेरा स्त्रियों के अच्छे पक्षों की तरफ़ ज़्यादा ध्यान रहा। वैसे स्त्री जीवन का 'उत्स' है इसलिए हर भाषा में, हर युग में, वह साहित्य का केंद्रबिंदु रही है। प्रेमचंद के ज़माने से आज के ज़माने में नारी की छवि कितनी बदली है, इसके जवाब में मैं कहूँगा कि प्रेमचंद के समय में जो सब कुछ सहनेवाली नारी थी वो आज नहीं है। उसमें आत्मविश्वास आया है क्योंकि वह काम पर निकली है, आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हुई है...लेकिन स्वतंत्र वह आज भी नहीं है—यह बात मैं भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य में कह रहा हूँ।

आपका साहित्य आत्मकथात्मक साहित्य कहा जाता है। क्या अपने जीवनानुभवों के अलावा आपको अन्य पात्र नहीं मिलते? क्या यह आपके साहित्य का कमज़ोर पक्ष नहीं है कि आप स्वयं को केंद्र में रखकर ही लिखते हैं जबकि साहित्यकार को पूरे मानव समाज या विश्व समाज के बारे में सोचना चाहिए?

आत्मकथात्मक इस मायने में कि मेरा लेखन निरा काल्पनिक नहीं है। इससे इतना तो होता है कि वह लेखन प्रभाव छोड़े बिना रह ही नहीं सकता, लेकिन ऐसा नहीं है कि सारा लेखन मेरे ही जीवन की घटनाओं या पात्रों से संबंधित हो, जैसा कि आपके इस प्रश्न से झलकता है। *पाँच आँगनों वाला घर* मेरे जीवन की कहानी नहीं है। *धीरे समीरे* नहीं है। हाँ, *तुम्हारी रोशनी में, फूल...इमारतें और बंदर* हो सकते हैं लेकिन *हुज़ूर दरबार* में मैं कहीं नहीं हूँ। इसी तरह कहानियों में भी अनुपात पचास प्रतिशत का होगा! बेशक जब मैं दूसरों की कहानियाँ उठाता हूँ तो उन्हें पहले अपनी मज्जा, अपने ख़ून में घोल लेता हूँ। एक तरह से परकथा को भी आत्मकथा बना लेता हूँ। क्या इसे आप लेखकीय सफलता नहीं कहेंगी कि दूसरों के जीवन और कहानियों को लेखक ऐसे प्रस्तुत कर सका, जैसे वह उसके अपने जीवन की हों।

साहित्यकार को पूरे मानव समाज, विश्व समाज के बारे में सोचना चाहिए—यह कहने की ज़रूरत इसलिए नहीं है क्योंकि ऐसा होता ही है—लेखक कुछ भी लिख रहा हो, संदर्भ कुछ भी हो। जब वह आत्मकथा लिख रहा है, तब भी सोच उसकी परोक्ष रूप में वही रहती है, जो आपने कहा। हर साहित्यकार की नज़र मनुष्य पर रहती है जो न जाने कैसे-कैसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE 2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमरीकी है, सिर्फ़ मनुष्य है और उसी के मार्फ़त अपनी बात कहता हुआ वह पूरे मानव समाज और विश्व समाज के बारे में भी कह जाता है।

कृपया आप अपनी सृजन-प्रक्रिया के बारे में बताएँ कि कोई रचना किस स्तर पर आपको सृजन में प्रेरित करती है ?

हर रचना अलग-अलग तरीक़े से उतरती है और अलग-अलग तरीक़े से ख़ुद को लिखवाती है, कुछ नहीं भी लिखवा पाती। अपने बारे में मोटे तौर पर कह सकता हूँ कि पहले एक बड़ी धुँधली-सी तसवीर उगती है जिसके नीचे कोई पीड़ा या कोई दुःख रिसता होता है। उससे भागता फिरता हूँ लेकिन वह पीछे-पीछे आती जाती है, आगे फिर अपने में गोते लगवाना शुरू करती है। पहले ऊपर-ऊपर फिर नीचे-नीचे। एक तरह का 'कन्फ़्यूज़न' होता है, जिसे साफ़ करने के क्रम में कई-कई बार लिखना पड़ता है, बेकार लिखी हुई चीज़ों को काटना पड़ता है। आख़िर में जाकर वह एक शक्ल लेती है।

अपने साहित्य के माध्यम से आप समाज को क्या देना चाहते हैं ?

फिर वही बात! आपको नारे पकड़वा दिए गए हैं, शायद! अरे भाई! समाज के पास बहुत कुछ है, देनेवाले भी बहुत हैं। मुझे तो जो साहित्य से मिला—सहने की शक्ति, जीवन-शक्ति, जिजीविषा—वही मेरे पाठक चाहें तो ले लें। मैं इतना न तो क़ाबिल हूँ, न समर्थ, न ज्ञानवान कि समाज को कुछ देने का दंभ पाल सकूँ। कौन पाठक मेरी किस रचना से क्या निकाल लेता है, उससे किस हद तक प्रभावित होता है—यह उस पाठक के सामर्थ्य की बात है, मेरे सामर्थ्य की नहीं। इस दृष्टि से मेरे सामर्थ्य की सीमा है, लेकिन एक रचना की देने की और पाठक की लेने की—दोनों ही निस्सीम हैं।

आपकी भावी योजनाएँ...सपने...क्या हैं ? इन दिनों क्या लिख रहे हैं ?

इन दिनों पूरा-का-पूरा ख़ाली हूँ। अभी चंद दिनों पहले मेरा उपन्यास *धूल पौधों पर* आया है। नहीं मालूम आगे क्या लिखूँगा, लिख पाऊँगा भी क्या ? आपने खेती की ज़मीन का वह दृश्य देखा ही होगा जब ज़मीन को यूँ ही पड़ा रहने दिया जाता है ख़ाली...बाहर से दिखती है बेकार। बंजर ज़मीन ज़रूर नहीं हूँ मैं, लेकिन ख़ाली ज़मीन तो हूँ ही फ़िलहाल।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता

डोगरी

पद्‌मा सचदेव

बहती धारा

अक्षरों की धारा हूँ मैं
पन्नों संग ब्याही हूँ मैं
धारा बहती बिना बोले
बिना कोई आवाज़ किए
बूँद-बूँद पानियों की
मोतियों की तरह करके इकट्ठा
बना रही है एक माला

मैंने, अक्षर अक्षरों के संग पिरोए
एक-एक मोती एक-जैसा
अक्षरों-से
एक जितने एक जैसे
रचा एक नया संसार

अक्षरों में दो अक्षर हैं अलग
एक 'घ' एक 'र'
इनके साथ ही बनता है घर
हर किसी का

दीवारों पर हाथ से
सिंगारी सफ़ेदी
उनके ऊपर कई लकीरें
पालकी की परदों की
पीछे आती एक
घोड़ी पर बन्ना सवार

छतों पर शहतीर डालकर ही
सिर को मिलती है छत

जन्म : 1940। हिंदी तथा डोगरी में अनेक पुस्तकें। साहित्य अकादेमी, जम्मू-कश्मीर कल्चरल अकादमी, सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार से सम्मानित। संपर्क : बी-242, चित्तरंजन पार्क, प्रथम मंज़िल, नई दिल्ली 110019;
मो. 9811147654.

अनु. स्वयं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बही में लिखी जाती है
किसी मेरे जैसे की जायदाद

आँगन में चरख़ा डालकर
कौड़ियों वाला
बैठ गई है घर की नार
पूनी पूनी कातकर
गोले सजाकर
सपनों में देखती है
कपड़ों के थान
डोगरी पोशाक में लगती है
अपने घर की रानी

मैंने भी पकड़ी क़लम
जैसे चरख़े में से धागा निकालकर
गाने लगी है वह स्त्री
डोगरी के लोकगीत

सुबह का पहर

सुबह का पहर
सुबह का आसमान
उठते ही कहता है
मैं आ गया मेरी जान
सूरज कुछ ही देर में खिल उठेगा
सामने पहाड़ के सिरे पर

बिछ जाएगा सोना
चीड़ की पत्तियाँ लद जाएँगी
गहनों के संग
सोने के बाज़ूबंद हिला-हिलाकर
सौदाई हो जाएँगी

बिछौने उठाकर ख़लकत
दरिया में नहाने को उतावली हो उठेगी
मंदिरों में बज उठेंगे
घंटियाँ, शंख और खड़ताल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घर की स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी
नदी में डुबकियाँ लगाकर
मंदिरों की सीढ़ियाँ चढ़कर
नंदी के सिर पर लटकता
घंटा बजाकर
डरा देंगी कबूतरों को
उड़ जाएँगे तोते, चिड़ियाँ, कबूतर
घबराकर
आसमान पंखों की उडारी के साथ
भर जाएगा

पक्षियों को गोद में भर
आसमान कह उठेगा—
मैं बेऔलाद नहीं
भरी हुई है मेरी गोद
बाल-बच्चों के साथ
मैं भारत का आसमान हूँ।

हिंदी

रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति

जन्म : 1970। रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क : टॉप-12, हाई लाइफ़ कॉम्प्लेक्स, चर्च रोड, जहाँगीराबाद, भोपाल - 462002 (म.प्र.). मो. 09826782660.

तो फिर युद्ध कौन करता है

वे युद्ध नहीं करते
वे सिर्फ़ हथियार बनाते हैं लेकिन युद्ध नहीं करते

मुझे कहना पड़ रहा है—हथियार बनाना युद्ध करना नहीं है
वे मुनाफ़ा कमा रहे हैं दुनिया भर से
और मुनाफ़ा कमाना युद्ध करना नहीं हो सकता
मुझे ऐसा कहना पड़ रहा है

वे आक्रामक विज्ञापन और तूफ़ानी माहौल बनाते हैं
वे लॉबिंग करते हैं बाज़ार, ब्रांड और हथियारों की
मैं फिर कहना चाहता हूँ कि विज्ञापन करना युद्ध करना नहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वे रिसर्च करते हैं धरती, आसमान और अंतरिक्ष में
वे परमाणु से बिजली बनाते हैं और उससे कुछ बल्ब जलते हैं
वे बड़े-बड़े बाँध बनाते हैं और उनके सूखने के बारे में सोचते हैं

बिजली से बल्ब जलाना और नदियों के बारे में सोचना
युद्ध नहीं हो सकता, हाँ मेरा ऐसा कहना ज़रूरी है
और भी चीज़ें हैं—वे शांति की बहुत-सी बातें करते हैं
कोई भी कह सकता है, शांति की बातें युद्ध नहीं हो सकती हैं?

वे संसाधनों को अपने हक़ में लिखते रहे हैं
वे क़ब्ज़ा करते हैं और व्यापार का समझौता
वे धरती से ख़ूब सारा तेल निकाल लेते हैं
तेल निकालना युद्ध करना कैसे हो सकता है?

वे दुनिया में बाज़ार देखते हैं
परंपराएँ शहर और गाँव उनके लिए
बाज़ारों से ख़ाली जगहें हैं
देश बाज़ार का क्षेत्रफल है—जहाँ सरकारें संधियाँ करती हैं
उनके और हमारे देश को परस्पर तौलते हैं—
वे अपने साथ कोई फ़ौजी नहीं लाते, कुछ व्यापारियों के अलावा
व्यापारियों को लाना युद्ध है? इसे युद्ध कौन कह सकता है?
मेरे देश के परंपरागत बाज़ार को तोड़ना और अपनी चीज़ें रखना
युद्ध कैसे हो सकता है—युद्ध तो हथियारों से लड़ा जाता है?
इसीलिए मुझे कहना पड़ रहा है कि वे युद्ध नहीं करते

वे शांति के प्रस्ताव लाते हैं और शांति से आते हैं
उन्हें पता है अशांति उनके बाज़ार को प्रभावित करती है
इसलिए मैं शांति की बात को युद्ध नहीं कह सकता

दुनिया में कई चीज़ें हैं जो युद्ध नहीं हो सकतीं
जैसे कि फ़सलों के बीजों को बदल देना और
नई तकनीक की खेती के लिए किसानों को तैयार करना
सरकारों को अपने प्रस्तावों पर साइन के लिए राज़ी करना
समझौतों को तैयार करना और लागू करना
यह युद्ध कैसे हो सकता है और
युद्ध कैसे कहा जा सकता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबसे बड़ी बात है कि 'वे' कौन हैं ?
वे हम भी हो सकते हैं और वे, वे भी हो सकते हैं

कभी-कभी हम जब सोकर उठते हैं तो 'वे' हो जाते हैं
विज्ञापन देखकर और अख़बारों को पढ़कर नहीं समझा जा सकता
हम का 'वे' हो जाना वे का 'हम' हो जाना

इसीलिए मुझे कहना पड़ रहा है कि पक्षों का बदल जाना
युद्ध नहीं होता—क्या आप जानते हैं युद्ध क्या है ?
ताकि युद्ध के बारे में सही सही कुछ लिखा जा सके!

प्रेम रंजन अनिमेष

मोरनाच

एक तो दिखना दूभर
दिखते भी
तो वैसे नाचते नहीं
जैसे परदे पर

क्या मोरों को भी गया मार
ग़मे रोज़गार
या इंसानों की तरह
उनके पास भी अब
कलाओं के लिए वक़्त नहीं ?

या फिर नाचते हैं वे
छुपकर जंगलों में
जो ख़ुद ग़ायब होते जा रहे
जहाँ कोई
देखता नहीं

जो हो
सावन आँखों में भर
क्या मन मयूर
नाचेगा अब
केवल परदे पर
उन्हें नाचता देखकर... ?

जन्म : 1968। *मिट्टी के फल, संगत* कविता-संग्रह प्रकाशित। भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित। संपर्क : एस.-3/226, रिज़र्व बैंक अधिकारी आवास, गोकुलधाम, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई 400063. मो. 09930453711.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिंदी कोश

जो जानते उन्हें
कोई चिंता नहीं
जो जानते नहीं उन्हें क्यों परवाह

वैसे इस देश इस दौर में
बिरले ही मिलेंगे आज ढूँढ़े
जो पूरी तरह जानते इसे
या पूरी तरह नहीं जानते

शब्दकोश हिंदी का
कौन देखता
इस देश में इस दौर में
उसमें भी 'ठ' अक्षर वाला हिस्सा

पर चाहिए देखना
जो देखें
तो पहला शब्द मिलेगा 'ठँसना'
जैसी कि हालत है
जैसी कि नौबत है
इस देश इस दौर में
ठस्समठस्स हर ओर पूरी तरह
ठेलमठेल रेलमपेल हर जगह
बस, रेल हो या सड़क, बाज़ार

मगर आख़िर में मिलेगा 'ठौर'
एक उम्मीद की तरह
एक भरोसे जैसा

सारी मुश्किल सारी तंगी
हर परेशानी के बावजूद
यहीं और सिर्फ़ यहीं
अपने बीच
हाँ, इस देश इस समाज में ही

पर यह देखने के लिए
अपनी ओर देखना होगा
अपनी भाषा की ओर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह कोश कोर तक भरा
जो यूँ ही अदेखा पड़ा...

शेष

आज अगर जाना हो जीवन से
तो होगा अफ़सोस
कितने ऐसे
मिल न सका जिनसे
जिन तक जा न सका
जिन्हें बुला न सका
कितनी ठौर इस दुनिया के
न देख सका न जान सका जिन्हें
कितने दुःख और सुख जिनमें
शरीक होने से रह गया
आज जाना जो होगा

कसक रह जाएगी
कितने कम जिनको
अपना सका
अपना बना सका

आज जाना हो जीवन से
तो अफ़सोस होगा
कितने रंग इसके
न देख सका
कितनी गंध
साँसों में भर न सका
कितनी धुनें कितने गीत
न सुन सका
चख न सका कितने रस
पा न सका कितने परस
बातें रह गईं कितनी अनकही

सबसे मिलना
सब देख पाना तो शायद
कभी संभव नहीं होगा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर आज होगा जाना
तो हूक उठेगी
कि रह जाएँगीं यूँ ही
कविताएँ कितनी
मुझसे होकर जिन्हें
इस दुनिया में था आना

आज अभी होगा अगर जाना
तो उमड़ेगा भीतर हाहाकार-सा
कि कितना कुछ इस जीवन इस जग का
रह गया अजाना...

नेपाली

मैना थापा 'आशा'

वे हाथ

अनगिनत हाथ हैं
खुरदरे... चिकने...
या कठोर?
लालायित हो तुम्हारी ओर
बढ़ने वाली
असंख्य दृष्टियाँ हैं
तुम्हारी सुंदरता
और सुरभि के प्रति आकर्षित हो...
तुम्हें तोड़ने की चाह रखनेवाले
पर मैं कभी न दूँगा
तुम्हें यों ही तोड़ लेने को।

सौंदर्य प्रेमियों के
सौंदर्यबोध की रक्षा के लिए
एक ही डाल पर सजग प्रहरी बन
सदैव साथ निभाया है मैंने,
हर उन हथेलियों को

नेपाली की सुप्रसिद्ध लेखिका। नेपाली-हिंदी में परस्पर अनुवाद। संपर्क : एल.आई.जी. 8/2, हेंग्राबारी हाउसिंग कॉम्पलेक्स, दिसपुर, गुवाहाटी, (असम)

अनु. स्वयं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो लालायित हो बढ़ते हैं;
सदा तुम्हारी ओर
बाँध दिया जाता है।

हाँ, पता है मुझे
तिरस्कार करनेवाले
और विषैला समझकर
मेरी उपेक्षा करनेवालों की
कोई कमी नहीं है यहाँ।
लेकिन मैं तो तुम्हारी ढाल बनकर
फ़र्ज़ अपना निभाता रहा हूँ
बताओ,
क्या मैं तुम्हारा
शुभचिंतक नहीं ?

गाँव में शहर

अश्क की बूँदें होती हैं
शबनम की बूँदों-जैसी
पर इसकी चंद बूँदें
पिघला देती हैं
कठोर से कठोर पाषाण हृदय को भी
बस एक ही पल में,
क्षण भर में।

मन की व्यथा व्यक्त करने का
सशक्त संबल है अश्क।
बिना अश्क के
पाषाण बन जाता है हृदय
और
गहरा सदमा लगने पर भी
सहज ही टपकता नहीं।

लेकिन कभी-कभी
थोड़ी-सी चोट लगते ही
सैलाब बनकर फैल जाता है यह
चतुर्दिक्।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनों की याद आते ही
पलकें नम हो आती हैं
कभी आत्मीय जनों के वियोग में
उमड़ पड़ता है बिन रुके
शबनम की बूँदों की तरह ही

बड़ा मोल है अश्क का
हर मनुष्य के
जीवन में।

पंजाबी

मनमोहन

अफ़ग़ानिस्तान

एक

वीरान-बियाबान में
काँपते हाथों के साथ
छूता हूँ अपना चेहरा
कोहरे के सिवाय
कहीं कोई चिनगारी नहीं
न कहीं कोई मेरे सिवाय
तब भी देखूँ स्वयं को
आनंद मग्न।

दो

ठहरो रे मन
धूप निकलेगी अभी
इतना उतावला मत हो...

आख़िर यह अफ़ग़ानी धूप
पहाड़ी बकरी की तरह
धीरे-से उतरेगी बर्फ़ से...

पंजाबी के सुप्रसिद्ध कवि कविता संग्रहों के साथ कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। संपर्क : जी-208, विवेकानंद हाउसिंग सोसायटी, प्लॉट नं. 5, सेक्टर-5, द्वारका, नई दिल्ली 110075;
मो. 9868252946.

अनु. **केवल गोस्वामी।** जन्म : 1940। कई कविता-संग्रह प्रकाशित। पंजाबी-ओड़िया से हिंदी अनुवाद। संपर्क : जे-363, सरिता विहार, मथुरा रोड, नई दिल्ली 110076;
मो. 9871638634.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यहीं कहीं चरेगी
दूर तक फैले चरागाहों में
हिज़ाबी औरतों के संग सुस्ताएगी
दिलों की घुंडियाँ खोलेगी
काबुल नदी के जल पर तैर जाएगी...आख़िरकार
दिन ढलने के बाद
सूरज की भूखी बेटी
किसी नानबाई के तंदूर से
रोटी ख़रीदने के लिए
कई दिन से बंद दरवाज़ा खटखटाएगी

फिर शाम को
दूध बेचकर लौट रहे
कूची क़ुनबों के संग
पीठ पर ख़ौफ़ का बोझ उठाए
जहाँ से उतरी थी
उधर लौट जाएगी

अफ़ग़ानी बकरी...धूप

तीन

पोस्त के फूलों का
ख़ूनी लाल रेशम
छिपाए बैठा भीतर
स्याह जोखिम

देखता नहीं तू
इसमें छिपे
भावी पन्नों को

मेरे अफ़ग़ानी मित्र...

चार

पूछा अपने अफ़ग़ानी मित्र से
तुम्हारे जिहाद का क्या मक़सद?
उसने कहा,
जब निमरोट, पैग़म्बर ने इब्राहीम को
जलाने के लिए चिता सजाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब पपीहे ने अपनी चोंच में पानी भर
आग बुझाने की कोशिश की
तब किसी ने पूछा,
क्या दो बूँदें पर्याप्त हैं शोले बुझाने के लिए?
पपीहे ने कहा, मालूम नहीं...
मैं इतना जानता हूँ
अल्लाह ने दो सूचियाँ बनाईं
एक, जिन्होंने आग लगाई
दूसरी, जिन्होंने आग बुझाई
मैं चाहता हूँ मेरा नाम दूसरी सूची में हो

अफ़ग़ानी मित्र की बात सुनकर
मैं सोच रहा हूँ
मेरा नाम किस सूची में दर्ज है... ?

पाँच

रमज़ान के दिन
हर अफ़ग़ानी बशर रोज़े में
...सिवाय बच्चों के

प्रौढ़ भीतर बैठे मग़रिब की नमाज़ के बाद
इफ़्तार की प्रतीक्षा में हैं
बाहर गलियों में खेलते हुए बच्चे
मैं आँगन में बैठा पुस्तक में मगन
पीटर बरजन की *ओबामाज़ वार*

अचानक दरवाज़े पर दस्तक हुई
साँकल खोलता हूँ
बच्चों के भाव से समझ जाता हूँ
उनकी गेंद छत पर गिरी है
सीढ़ियों की ओर संकेत करता हूँ
तीन-चार बच्चे छत पर चले गए
गेंद मिल जाने पर उनके चेहरों पर
उत्साह देखते ही बनता है

बाहर जाते हुए अग्रिम बच्चा
हाथ में पकड़ी किताब पर
फ़ोटो देखकर कहता है—उबामा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसका नाम पूछता हूँ, 'सुमा इस्म'... ?

वह घूरकर कहता है...'उसामा'

पुस्तक दोबारा पढ़ना चाहता हूँ
मन कहीं और है।

कन्नड

सतीश कुलकर्णी

चेहरे

1

चेहरा ढोकर
हँसी लादकर
सदा काट रहे हैं च'र
फिर वही अनुभव
युग-युग के
नये स्वाँग

कभी परदा ओढ़कर
चोर की तरह दिखनेवाले

कभी फूल-सी मुस्कुराहट के साथ
जिगरी दोस्त की तरह
पास आकर खड़े हो जाते हैं

धोखाधड़ी का
किसी साज़िश का मसविदा
हैं बड़े चालाक
सूर्योदय से पहले
गुलाब लेकर
खड़े हो जाते हैं

तिलमिलाहट की टकराहट से
आग लगानेवाले
चालाक लोग

छह कविता-संग्रह प्रकाशित। अनेक पुरस्कारों से सम्मानित। संपर्क : 242, बसवेश्वर नगर, 9वाँ क्रॉस, बी-ब्लॉक, हावेरी 581110;
मो. 09845408934.

अनु. **धरणेन्द्र कुरकुरी**। सात कविता-संग्रह प्रकाशित। कन्नड-हिंदी में परस्पर अनुवाद। कई पुरस्कारों से सम्मानित। संपर्क : 'दिशा' 3, के.एच.बी. कॉलोनी, हुबली रोड, शिवानी होटल के पास, शिरसी 581402;
मो. 09448408610.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चाल चलने से पहले
कई रंग
अंदर और बाहर

जाति के जोगन
वर्ग विकारी
आते हैं रेंगते हुए
सैकड़ों मरीज़ों की तरह

हवा-पानी को भी रोग लगाते हुए
राहगीरों को
ग़ुलाम बनानेवाले
संभ्रांत सर्वाधिकारी
चारों ओर

फिर वही अनुभव
फिर वही स्वाँग

2

हाँ, यहाँ देखे
इस झोंपड़ी में
मासूम इंसान के चेहरे

पटिया पुस्तक
पड़ती हैं पीछे जिसके
ग़रीब बच्चों के नेत्र सागर में
अंकुरित करोड़ों
सूरज देखे

टूटे बर्तनों को
रखकर आग पर
खाना पकाने की
वह संख्या, अँधेरे की
धुँधली रोशनी में राजमहल के
खंभों को गिरते देखा

रास्ते में
राशन की दुकान की क़तार में
पाठशालाओं की टपकने वाली छत के नीचे
मोगरे की कलियों को देखा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गर्भवती,
नंगे लड़के
शराबी के मवेशीख़ाने वाले बाड़े में
पालतू बकरियों के
मायाजाल में अपने आपको देखा

रास्ते का कूड़ा उठानेवाले
के कूड़े के ढेर में
अपने सपनों के टुकड़ों को देखा।

3

स्वाँग
मुखौटा
कपूर जैसे बनावटी लोग,
कुर्सी के सामने
गिरकर धन्य हो गए

बातों की गहराई में
लूट-मार के हज़ारों सूत्र
हर चाल, बोल से करोड़ों
मोड़ बन गए

राक्षस रास्ते पर
कुचलते सब कुछ
भूलते सब कुछ
चलने वाले अनगिनत चेहरे
देखे

4

भूत में
अभूत रचनेवालों ने इतिहास में
सुंदर चित्र खींचा

वर्तमान के
जूतों के नीचे दबकर कराह उठे

हर एक ये
चेहरे बो चुके हैं
मेरे सीने के छापेखाने में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी-कभी
उछलकर
निकलेगा चमकती तलवार का जुलूस
निकलेंगे बाहर
हर अक्षर सेना बनकर

सिंधी

मोहन हिमथानी

सिंधी कवि। तीन कविता-संग्रह प्रकाशित। संपर्क : सी.पी. 192, मौर्या एनक्लेव, पीतमपुरा, दिल्ली 110088;
मो. 9818717388.

अनु. **सिन्धु भाग्य मिश्रा।** सिंधी-हिंदी में परस्पर अनुवाद प्रकाशित। संपर्क : सहायक सचिव, साहित्य कला परिषद्, 18-ए, सत्संग विहार मार्ग, इंस्टीट्यूशनल एरिया, नई दिल्ली 110067

यूँ ही कहीं थोड़ा रुककर...

रफ़्तार
बहुत तेज़ हो गई है
कहीं थोड़ा रुककर
साँस लेने की जगह
ढूँढ़ने में भी
समय निकलता दिखाई दे रहा है—
कहाँ पहुँचेंगे—पता नहीं
घोड़ा भी दौड़ते-दौड़ते थक गया है—
लगाम पकड़े रहने की
शक्ति भी अब ढीली पड़ने लगी है—
दूर कहीं
खुला-सा हरा-भरा मैदान जैसा
कुछ दिखाई तो दे रहा है
वहाँ पर लगता है
हवा होगी, पानी मिलेगा,
हरी घास होगी—देखने के लिए
और घोड़ा भी ख़ुश होगा।
उस हरे-भरे मैदान तक
पहुँचने में देर क्यों लग रही है?
दूर से तो बहुत पास नज़र आ रहा था?
कि बस अब पहुँच ही गए?
घोड़ा भी थकी हुई निगाहों से
हरे-भरे मैदान तक पहुँचने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आशा आँखों में लिए
दौड़ रहा है—वहाँ जल्दी पहुँचने के लिए
वहाँ हवा होगी
पानी होगा
और हरी घास भी मिल जाएगी।

मराठी

प्रकाश किनगावकर

उत्तर

जुताई से लेकर कटाई तक की गई
जी तोड़ मेहनत
और
बीज-खाद और बिजली-पानी पर
आए ख़र्च को
तराजू के दाँये पलड़े में रखा
तो पलड़ा पत्थर की तरह बोझिल होकर
ज़मीन से चिपक गया।

उधर
खेती की उपज से मिले माल
और बाज़ार भाव से मिली
उसकी क़ीमत को
बायें पलड़े में डाला तो पलड़ा
चुनने से बची कपास की तरह
हल्का होकर अधर में लटक गया।
वैश्वीकरण के शक्तिशाली चुंबक ने
बिगाड़ दिया पलड़ों का संतुलन
और
उसी में खो गया किसान का वजूद।

उत्पाद को सही मूल्य देकर
और उत्पादन का ख़र्च घटाकर
शायद सरकार कम कर सकती थी

मराठी कवि। संपर्क : 'फ़िनिक्स', 84/31, श्रीरामनगर, दादावाडी, जलगाँव - 425002. (महा.); मो. 09403255081.

अनु. **तेजपाल चौधरी**। संपर्क : जलगाँव (महा.); मो. 08446236545

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह अंतर
लेकिन नहीं...
आख़िर किसान ने ही
ढूँढ़ लिया इस प्रश्न का उत्तर
बाँये पलड़े के हुक में
फाँसी का फंदा डालकर।

वंश बेल

पढ़ने-लिखने की उम्र है
जब तक हमारी हैसियत है
पढ़ ले
हमने कहा था उसे
परंतु वह
तहसील के कॉलेज में
मौज़-मस्ती करता रहा।

पढ़कर आया तो हमने कहा ,
'बीघा-दो बीघा ज़मीन बेच देंगे
चपरासी-क्लर्क की जगह के लिए अर्जी कर'
लेकिन उसने एक न सुनी और कहा
'इतनी कम तनख़्वाह में
शहर में गुज़ारा होगा भला ?'

हमने कहा,
'अरे गाँव छोड़कर
शहर में नौकरी मिले बिना
कोई इज़्ज़त नहीं आदमी की'
देखो!
वह पड़ोस का सुपड़ू
चपरासी है शहर के स्कूल में
पर जब गाँव में आता है
तो ऐसी डींग हाँकता है कि
लोग उसके चारों ओर
जमा हो जाते हैं अपने आप
तब लगता है अपनी बीस एकड़ वाली
उपजाऊ ज़मीन किसी काम की नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब उम्र ढलने लगी है लड़के की
लेकिन किसी लड़की का बाप
उसकी ओर मुड़कर नहीं देखता।
आख़िर बीवी की
किटकिट सुनकर घर से निकला मैं
गाँव-गाँव भटका
रिश्तेदारियों में घूमा
लड़की वाले पूछते हैं,
'लड़का नौकरी करता है?'
क्या उत्तर दूँ?
उम्र निकल गई
नौकरी कहाँ से लाऊँ?
किसान के घर लड़की देने को
कोई राजी नहीं।

घरवाली के बिना झूठ है सब
ज़मीन-जायदाद सब कुछ
कैसे करें खेती-बाड़ी
कैसे बढ़े वंश बेल?

खूँटी पर टँगी लालटेन

पाँत की रस्सी टूटकर झिंगला हुई
उसकी खाट पड़ी रहती है
घर के एक कोने में
शरीर का संतुलन सँभालता
बीच-बीच में बीड़ी फूँकता
और
खाँसी के दौरे को
छाती में दबाकर रखता
वह बैठा रहता है
किसी के इंतज़ार में।

चाय-पानी
खाना-कपड़ा सब कुछ
मिल जाता है समय पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर भी वह इंतज़ार करता है
कि कोई उसे आकर पूछे—बापू,
मूँग के खेत में क्या बोया जाए इस बार ?
या फिर
कपास के टींट
पीले होकर झड़ने लगे हैं
कौन-सी दवा छिड़की जाए उन पर ?
या कोई कहे कि तिल की फलियाँ
पकने को आ गई हैं
बाजरे के टुस्सों में बूर निकल आया है
और ज्वार के टुस्सों से दाने झाँकने लगे हैं।

लेकिन कोई नहीं आता
मानो उसका व्यक्तित्व है—
कोने में टँगी
फूटे काँच वाली पुरानी लालटेन-जैसा।

उद्धार

पूज्य बापू, तुमने कहा था,
'गाँव की ओर चलो।'
तेरी बात सुनकर
हम गाँव में ही रुके रहे
और पसीना बहाते-बहाते
एकरूप हो गए
यहाँ की माटी से
जैसे ढेला पिघलकर
माटी बन जाता है।

हम इंतज़ार करते रहे
कि किसी दिन तुम्हारी आवाज़ सुनकर
कोई मसीहा आएगा
गाँव के उद्योग-धंधों को बढ़ाएगा,
गुटों का संघर्ष रुकेगा,
नारी को सम्मान मिलेगा
और बच्चों को शिक्षा।
लेकिन कोई नहीं आया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे कितने ही भाई
गाँव छोड़कर शहर चले गए
हराम की कमाई खाकर
घूस की तरह मोटे हो गए
और यहाँ आकर
हमारे मुँह का निवाला छीनने लगे।

हम दुबले होते गए
कभी एक रत्ती सोना ख़रीद न पाए
बीवी के लिए
और न खपरैल उतारकर स्लैब डाल सके।
बापू, तू तो चंपारन में लड़ा था
अंग्रेज़ ज़मींदारों से
किसानों के हित के लिए
पर यहाँ तो हमारी उपज का
ज़रा-सा भाव बढ़ते ही
निर्यात बंदी की जंगली बिल्ली
हमारे ऊपर गुर्राने लगती है

तेरे उत्तराधिकारियों ने
मुहाल कर दिया है हमारा जीना
मुश्किल हो गया
खेती करके पेट पालना
फिर भी
इसी ज़मीन से चिपके
जी रहे हैं हम
सूखी ज़मीन में नमी तलाशते
मेंढक की तरह।

बापू,
हमारे माथे पर लगा दिया गया है
किसान का ठप्पा
जन्मजात अपराधियों की तरह
उसे पोंछने किसी राम को भेजो
जो हमारा उद्धार कर सके
अहिल्या की तरह।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

मराठी

लक्ष्मण गायकवाड़

म्हसणजोगी की पंचफुली

लातूर ज़िले के एक छोर पर बसा है लांबजणा गाँव। गाँव से होकर आते-जाते यात्रियों के जत्थों की यहाँ काफ़ी भीड़ रहती थी। फिर, यहाँ से होकर उमरगा और निलंगा की ओर जानेवाली महाराष्ट्र राज्य परिवहन की बसें यहाँ रुकती थीं, जिसके कारण यहाँ भीड़ बनी रहती, लोगों की आवाजाही होती रहती।

इसी लांबजणा गाँव के श्मशानघाट में एक दिन म्हसणजोगी समाज के चार-पाँच परिवारों की एक टोली ने आकर डेरा डाला। इनका प्रधान था गंगाराम सिदगुड़। वैसे वह इनका नेता तो था ही, साथ ही इनकी जाति-पंचायत का पंच भी था। सो, उनकी फ़रियादें सुनना, निर्णय लेना, उन्हें न्याय देना उसके काम का एक भाग था। हर गाँव में म्हसणजोगियों की हालत अत्यंत दयनीय थी। ऐसी, जैसे गाँववालों ने कुल्ला करके गाँव की सरहद के बाहर पानी थूक दिया हो! अमावस-पूनम के दिन तो गाँव के बड़े-बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ इन म्हसणजोगियों के आस-पास भी नहीं फटकते। उनमें एक भय था इस जाति के प्रति। क्योंकि उनकी धारणा थी कि अमावस के दिन भूतों की पालकी श्मशानघाट में आती है और वहाँ भूत नाचते हैं। ऐसे निर्जन और भयावह स्थान पर म्हसणजोगियों के इन चार-पाँच परिवारों ने आकर डेरा डाला था।

इनके हर परिवार में एक गधा, एक शिकारी कुत्ता, चार-पाँच मुर्ग़ियाँ थीं। यही इनकी पूँजी थी। किसी भी गाँव के पास डेरा डालने के बाद इसकी सूचना पुलिस प्रमुख को देने का क़ानून था। अपने डेरे की सूचना देने के लिए गंगाराम उस दिन पुलिस चौकी पहुँचा। प्रथानुसार दूर से ही हाँक लगाई, "माई-बाप, आपके गाँव में बिना

जन्म : 1956। *दुभंग* उपन्यास चर्चित। *उचाल्या (उठाईगीर)* के लिए 1988 ई. में साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत। संपर्क : जी-304, न्यू पद्मावती नगर, फ़िल्म सिटी रोड, गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई-400063; फ़ोन : 022 - 28414060.

अनु. : **उषा बन्दे**। अंग्रेज़ी में कई पुस्तकें एवं समीक्षात्मक आलेख। संपर्क : 'वेक्सलॉ' बिल्डिंग, लोअर कैथु, शिमला-171003; मो. 09816114490.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गाँववाले, बिना अस्मिता वाले, गाँव-गाँव भटकनेवाले म्हसणजोगी जाति-जमाती आए हैं। श्मशानघाट में आठ दिनों का डेरा है। हमारी हाज़िरी लगा लें जीऽऽ!''

हाँक देने के बाद पुलिस अधिकारी को गंगाराम ने अगला ब्योरा दिया, ''हमारे परिवारों में हरेक के पास एक गधा, एक शिकारी कुत्ता और कुछ मुर्ग़ियाँ हैं। माई-बाप हम आपके हवाले हैं। हमें सँभाल लेना, मालिक!'' गंगाराम ने झुककर सलाम किया और आगे बोलने लगा, ''हम चोरी-उचक्कागिरी नहीं करेंगे। किसी की खेती में नहीं घुसेंगे। दाना-पानी, जो कुछ चाहिए हो, माँग कर लेंगे। चार-छह दिन गाँव के लोग जो भिक्षा देंगे, वही लेंगे। पिछले गाँव में जहाँ हम रुके थे, हमारा रिकॉर्ड अच्छा है। वहाँ के चौकी-अफ़सर ने हमें अच्छे बर्ताव का सर्टिफ़िकेट भी दिया है, जो हमारी ईमानदारी का सबूत है, माई-बाप!''

''ठीक है, ठीक है, जा अब! सुन लिया! हवलदार जाकर गिनती कर लेगा, तुम्हारे गधे, कुत्ते, मुर्ग़ियों की। तुम्हारी बताई चीज़ों का ब्योरा ले आएगा।''

क़ानूनन परंपरा के अनुसार पुलिस ने गिनती की—उनके लोग, गधे, कुत्ते, मुर्ग़ियाँ—सबका ब्योरा लिखा गया। गंगाराम टोले में से एक जवान मुर्ग़ा उठा लाया—भरा-भरा, चमकीले रंग, हाल ही में निकली उसकी लाल कलगी और सुबह-सवेरे ज़ोर-से बाँग देनेवाला। वह मुर्ग़ा हवालदार के हाथ सौंपते हुए गंगाराम ने कहा, ''सा'ब, गाँव-मालिक से कहना, यह मुर्ग़ा हम ग़रीबों की ओर से भेंट है। स्वीकार करें।''

और इस प्रकार गंगाराम की टोली उस सुनसान स्थान पर जा बसी। उस दिन एक शव वहाँ लाया गया था और उसका अंतिम-संस्कार चल रहा था। वह एक जच्चा-माँ थी, जिसकी बच्चा अटक जाने के चलते मौत हो गई थी। म्हसणजोगियों के बच्चे और स्त्रियाँ ख़ुश थीं। यहाँ आते ही उन्हें मानों दावत मिल गई थी। स्त्रियाँ-बच्चे अपने-अपने हिसाब से सपनों के ताने-बाने बुनने लगे, 'अब उस मृतदेह पर नई साड़ी, ब्लाउज़ चढ़ेंगे, गोद में छुहारे, बादाम, नारियल भरेंगे, पास में दालें-अनाज रखे जाएँगे। फिर शरीर पर पहना सोना-गहना भी हम राख से निकालेंगे...!'

गंगाराम ने प्रथानुसार कोड़ियारा देवी की पूजा की और प्रार्थना करते हुए बोला, ''हे माता, सोने से मढ़े दाँतवाले अमीर, इस गाँव के अमीर घरों की बड़ी-बूढ़ियाँ इन दिनों मर जाएँ, ऐसी लीला करो! ताकि उनका सोना-गहना हम राख से निकाल सकें। उन पर चढ़े कपड़े हमें मिलें। दया करो, माँ...''

दूसरे दिन गंगाराम मुँहअँधेरे ही उठा और पहले ही दिन दाह की गई राख के ढेर के पास बैठकर टटोलने लगा। उस स्त्री के गहने अब आग में तपकर गुठलियाँ बन गए थे। गंगाराम जल्दी-जल्दी राख में हाथ घुमाने लगा। जो कुछ मिला, जल्दी से थैले में डाला और गाँववालों के वहाँ पहुँचने से पहले ही वहाँ से चला गया। मृत स्त्री की देह पर चढ़े कपड़े, खाने की चीज़ें वग़ैरह कल ही म्हसणजोगी स्त्रियों और बच्चों ने उठा ली थीं। वह एक बाल-बच्चेवाली सुहागन स्त्री थी, जिसकी गोद छुहारे-बादाम, नारियल-गोले से भरी गई थी। ये चीज़ें बच्चे चट कर गए थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इधर गंगाराम गाँव में फेरी लगाने की तैयारी करने लगा। सबसे पहले श्मशान से लाई राख चेहरे पर मली, उस पर लाल और गुलाबी रंग पोता। रंग-बिरंगी चिंदियों-चीथड़ों से बना चोगा शरीर पर चढ़ा लिया, किसी मरघट पर पिछली बार मिला एक कोट उस पर पहना, ताँबे और पीतल की पट्टियों से बना टोप सिर पर रखा, उसमें एक मोरपंख खोंस दिया और इस प्रकार, विचित्र-सा वेश बनाकर वह अपनी फेरी के लिए तैयार हो गया। फिर उसने एक हाथ में लोहे की घंटी और दूसरे में डंडा उठा लिया और सुबह-सवेरे गाँव की ओर चल पड़ा। घंटी की घन-घन ध्वनि, डंडे की ठक-ठक, गंगाराम की भयानक वेशभूषा! कुल मिलाकर डरावना ही था।

गंगाराम म्हसणजोगी को देखते ही गाँव के बच्चे डर के मारे घर में दुबक गए। घंटी की आवाज़ सुन स्त्रियाँ भी सहम गईं। गाँवों में मान्यता है कि म्हसणजोगी को यदि कोई भीख नहीं देता तो वह अपनी जादुई ताक़त से उन्हें कुत्ता बना देता है। ये म्हसणजोगी बच्चों को उठा लेते हैं। उन्हें कंकड़-पत्थर बनाकर जेब में ठूँसकर ले जाते हैं और फिर उन्हें बच्चा बनाकर उनसे भीख माँगने का धंधा करवाते हैं। इन अंधविश्वासों के कारण ग़रीब-से-ग़रीब घर से भी भर-भरकर भीख मिल जाया करती है। गंगाराम को भी हर घर से अनाज मिला। बच्चे भय के मारे छिप-छिपकर उसे देखते , उनकी आँखों में डर और कुतूहल था; स्त्रियों के मन में डर और आशा थी—डर, म्हसणजोगी की तांत्रिक विद्या से और आशा, कि उसे दान देने से पुण्य मिलेगा और घर में समृद्धि रहेगी। गाँववालों की ऐसी ही धारणाओं पर म्हसणजोगियों का उदर निर्वाह होता था।

गंगाराम गाँव से भीख लेकर लौटता तो उसकी झोली कई प्रकार के अनाज से और बासी रोटियों से भरी होती। उस दिन भी भरी-भरी झोली उठाए गंगाराम डेरे पर लौट आया। उसे आया देखकर डेरे में इधर-उधर बिखरे बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ उसे घेर लेते और इस प्रकार उस मरघट में बसे लोग अपना पेट भर लेते।

एक दिन म्हसणजोगी बस्ती के गधे चरते-चरते पानी की खोज में भरी दोपहर को गाँव की ओर चल पड़े और लांबजणी के पटेल के गन्ने के खेत में घुस गए। कुएँ का ठंडा पानी गन्नों के बीच बने पतले-पतले कूहल से धीरे-धीरे बह रहा था। गधों ने पानी की ओर दौड़ लगाई, और प्यास बुझाने लगे।

पंचफुली इन गधों को ढूँढ़ रही थी। सोलह-सत्रह वर्ष की पंचफुली अभी-अभी ब्याही थी और म्हसणजोगी डेरे से अपने गधों को ढूँढ़ती फिर रही थी। गधों के खुरों के निशान देखते-देखते वह बढ़ती गई और सीधी गन्ने के खेत में चली गई। हरा-भरा गन्ना उस समय पूरा बढ़ चुका था और काफ़ी ऊँचा हो गया था। भोली, निश्छल, निर्भय पंचफुली अपनी ही धुन में आगे बढ़ रही थी कि अचानक ज़मींदार के बेटे ने रास्ता रोका। पंचफुली को देखते हुए मूँछों पर ताव दिया और बोला, ''क्यों री, तो तेरे हैं ये गधे? इन्हीं को ढूँढ़ रही है न? हमारे खेत में पानी पीने के लिए घुस आए और हमारी फ़सल खा गए। कौन पूरा करेगा ये नुक़सान, तेरा बाप? वो देख, तेरे गधे खेत के दूसरे छोर पर हैं।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह झूठ था। पर पंचफुली भला क्या जाने? वह उस ओर जाने लगी। अब वह अनजाने ही ऐसे बियाबान में पहुँच गई, जहाँ आस-पास कोई नहीं था। वह नौजवान उसे देखता रहा और मौक़ा देख उसे गन्ने के घने अँधेरे में खींचकर ले आया। अपने गधों की खोज में आई पंचफुली एक हैवान का शिकार हो गई।

रोती हुई वह जैसे-तैसे उठी, खेत से बाहर निकली, गधों को पुकारा और उन्हें हाँकती हुई, रोती-बिलखती डेरे की ओर जाने लगी। तभी सामने से उसकी सास आती हुई दिखाई दी। पंचफुली को लौटने में देर हो गई थी। अपनी जवान बहू को देर क्यों हुई, कहीं कोई परेशानी तो नहीं हुई? इसी चिंता के मारे वह उसे ढूँढ़ती हुई उसी रास्ते जा रही थी, जहाँ से पंचफुली आ रही थी। सास ने देखा गधे हाँकती हुई पंचफुली सिसक रही थी। सास ने पूछा, ''क्या हुआ पंचफुली, रो क्यों रही है? कहीं चोट तो नहीं लगी? पैर में काँटा तो नहीं चुभा?''

पंचफुली बिफर गई। रोते-रोते जैसे-तैसे बताने लगी, ''सासू माँ, उस ज़मींदार के बेटे ने मेरी इज़्ज़त पर हाथ डाला, मुझे खींचकर गन्ने के बीच ले गया। कहने लगा, 'तेरे गधों ने हमारे खेत को तबाह किया है, उसका मुआवज़ा दे...' और उसने मेरी इज़्ज़त लूट ली, सासू माँ, क्या करूँ मैं? अब मेरा क्या होगा?''

पंचफुली को साथ लिए सासू माँ डेरे पर आ गई। गधे भी पीछे-पीछे चुपचाप चलते रहे। म्हसणजोगियों की बस्ती में हलचल मच गई। जात-पंचायत के नियम के अनुसार गंगाराम ने बिरादरी को इकट्ठा किया और बोला, ''देखो साथियो, हम ठहरे बेघर, बिना गाँव के, दर-दर भटकनेवाले, घर-घर भिक्षा माँगनेवाले म्हसणजोगी! जिस गाँव में हम डेरा डालते हैं, वहाँ के छोकरे-छाकरे हमारी जवान बहू-बेटियों पर बुरी नज़र रखते हैं। आज पंचफुली को अकेली देख ज़मींदार के छोरे ने उसकी इज़्ज़त पर हाथ डाला। इन लोगों के ख़िलाफ़ हम कुछ कर नहीं सकते! पुलिस भी हमारी औरतों की शिकायत दर्ज नहीं करती। वह गाँव के रसूख वाले लोगों की तरफ़दारी करेंगे या हमारी? ऐसी कई घटनाएँ हम म्हसणजोगियों के साथ घटती हैं।''

''वह तो ठीक है, पर मेरी पंचफुली तो मैली हो गई, उसका क्या? मैं क्या करूँ?'' पंचफुली का जवान पति बोला।

बात ठीक थी। सब चुप थे मानों साँप सूँघ गया हो!

दूसरे दिन गंगाराम ने फिर पंचायत बुलाई। उन दिनों साथ के एक गाँव के बाहर श्मशान में पंचफुली के बाप का डेरा पड़ा था। बाप का नाम था मंगल्या। मंगल्या को सारी बात की ख़बर भेजी गई। वह भी लुगाई के साथ लांबजणा गाँव में आया। गंगाराम ने जात पंचायत की शुरुआत की।

''हमारी पंचफुली तो अब अशुद्ध हो गई है, उसे शुद्ध करना पड़ेगा। जिस औरत के क़दम भटक जाते हैं, उसे छोड़ देने का रिवाज हमारी जाति में है। उसे जाति बाहर कर दिया जाता है। पर कल जो कुछ हुआ, उसमें पंचफुली की कोई गलती नहीं है। उसे अकेली देख

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घेर लिया ज़मींदार के छोरे ने, ख़राब किया। गधों के किए नुक़सान को उसे भरना पड़ा। उस पर जुल्म हुआ है! अब उसे शुद्ध करके जात-जमात में वापिस लेना होगा।''

जात पंचायत को यह मान्य था। 'पंचफुली निर्दोष है' ऐसा निर्णय सर्वसम्मति से पारित हुआ। पर क्योंकि वह दूषित हो चुकी थी, इसलिए रीति-रिवाज के अनुसार शुद्धि करनी आवश्यक थी।

सबसे पहले उसके पति सोपान से कहा गया कि वह उसके गले का मंगलसूत्र तोड़कर निकाले। फिर मंगलसूत्र में गँठी हुई सोने की कटोरी निकाली गई। गोबर के दो उपले जलाकर उस आग में उस कटोरी को लाल-लाल तपाया गया। अब पंचफुली को शुद्ध करना था। इसकी विधि शुरू हुई। दो पंच उठे, उन्होंने उसकी बाँहें कसकर पकड़ीं और उसे जीभ निकालने को कहा गया। फिर उस सुर्ख़ लाल सोने की कटोरी से उसकी जीभ दाग़ी गई। गरम-गरम धातु जीभ पर लगते ही पंचफुली तड़प उठी और ज़ोर से चीख़ी। बलि चढ़ते बकरे की तरह उसने आवाज़ निकाली। जीभ जलने की वेदना असह्य थी। वह ज़ोर से रो पड़ी। फिर धीरे-धीरे जली जीभ पर उसने थूक लगाकर कुछ ठंडक महसूस की।

पंचायत ने सोपान को हिदायत दी, ''अब पंचफुली को दुबारा गोद में बिठा! उसके गले में नए सिरे से मंगलसूत्र बाँध! जीभ दाग़ने से पंचफुली अब शुद्ध हो गई है। उसे स्वीकार कर ले!''

पंचायत के निर्णय के अनुसार ही सोपान ने किया और पंचायत को आश्वासन दिया, ''मैं इससे कोई बुरा सलूक नहीं करूँगा।''

फिर बोला, ''पत्नी के नाते आजतक जैसा सलूक मैं करता था, वैसा ही करूँगा। उसे किसी भी तरह से तंग नहीं करूँगा।''

उस रात म्हसणजोगी रीति के अनुसार पंचफुली के बाप मंगल्या ने सारी बिरादरी को बकरे-दारू की दावत दी।

दूसरे दिन पौ फटने से पहले ही म्हसणजोगी डेरे में हलचल शुरू हो गई। बस्ती जाग गई थी, बच्चे-बूढ़े, स्त्री-पुरुष सब अपनी-अपनी झोंपड़ी की चीजें समेटने लगे। गठरियाँ बाँधी गईं और अपने-अपने गधे पर लादी गईं। इधर-उधर फुदक रही मुर्ग़ियाँ इकट्ठी कीं और 'अब इस गाँव की तरफ़ फटकेंगे भी नहीं,' यही फ़ैसला कर म्हसणजोगियों ने लांबजणा गाँव छोड़ दिया। गाँव छोड़ते समय उनके मन में कोई शिकवा-शिकायत नहीं थी, कोई दर्द नहीं था, कोई लगाव नहीं था।

बाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष, बड़े-बूढ़े चल पड़े। पीछे-पीछे कुत्ते भी जल्दी-जल्दी चलने लगे।

लांबजणी में सोचे हुए समय तक रहना था, पर नियत काल से पहले ही डेरा उठ गया और म्हसणजोगी दूसरे गाँव की ओर चल पड़े। हवा के साथ भटकनेवाली यह क़ौम फिर से बेघर-बेदर होकर भटकने लगी। फिर से रास्ते पर आ गए। भटकन शुरू हुई कभी न ख़त्म होनेवाली...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

हिंदी

कुसुम अंसल

ये हमारा मकान

वह दरवाज़ा खोलकर बाहर आई तो रतिका खड़ी थी।

''ओह तू! एक मिनट ठहर, ज़रा बीजी को बताकर आऊँ, नहीं तो वह आवाज़ लगाती रहेंगी।''

''तू पोते-पोतीवाली हो गई सुम्मी, पर बीजी का अभी भी कितना मान करती है! क्या ज़रूरत है अब?''

''रतिका, मेरी जब से शादी हुई है, उन्हें मान देती रही हूँ। वह बड़ी हैं घर की, मुझे अच्छा भी लगता है।'' और वह मुड़कर बीजी के कमरे में चली गई, ''बीजी...भजन ग्रुप में जा रही हूँ।'' बिस्तर से लगी बूढ़ी बीजी को सुनाई भी कम देता था, फिर भी।

कॉलोनी के अगले मोड़ पर एक स्कूल पड़ता था। उसके सामने भीड़ जमा थी।

''लगता है कोई हादसा हुआ है!''

निकट पहुँचने पर पता चला कि भीड़ के झुरमुट में एक औरत दीवार से टिकी खड़ी थी और दो पुलिसवाले उसे हटाने के प्रयास में लगे थे। रतिका भीड़ को फलाँगकर देख आई, तभी किसी की आवाज़ आई, ''अरे उसने तो वहाँ चारपाई बिछा ली है। नीले प्लास्टिक की छत भी तान ली है। लोग बता रहे हैं, चार-छह दिन से यहीं पड़ी है। स्कूल का चौकीदार समझा-बुझाकर हार गया, पर मानती नहीं!''

पुलिसवाला चिल्ला रहा था, ''तू यहाँ नहीं रह सकती! सीधे-सीधे चली जा, नहीं तो जेल में डाल दूँगा!''

तभी एक समाज सेविका-जैसी खादी में लिपटी बहन जी आ गई। भीड़ छँट गई। उसने पुलिसवाले से कहा, ''आप छोड़िए साहब, मैं सँभालती हूँ, इसे समझाकर अपने आश्रम में ले जाऊँगी।''

जन्म : 1940 ई.। साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखनरत। अब तक 25 कृतियाँ प्रकाशित। *एक और पंचवटी, तापसी, रेखाकृति, ख़ामोशी की गूँज, वह आया था* आदि चर्चित पुस्तकें। साहित्य भूषण सम्मान, उ.प्र. हिंदी संस्थान, साहित्यकार सम्मान, हिंदी अकादमी, दिल्ली, आईवेक द. अफ्रीका (2010) आदि सम्मान प्राप्त। संपर्क : 'विश्रांति', 26, फ़िरोज़शाह रोड, नई दिल्ली 110001; मो. 9810016006

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"अरे कुछ बोलेगी तब न! दो घंटों से बक-बक कर रहे हैं, पर ये है कि चुप्पी साधे है, जैसे गूँगी हो!" पुलिसवाला बड़बड़ाता रहा, लेकिन वह, वह स्त्री, तमाम बिखरावों के बीच अपनी परिधि में सिमटी रही।

भीड़ कम होने पर रतिका और सुम्मी निकट चली गईं। समाज सेविका के बहुत पूछने पर उसने कठिनता से दो वाक्य बोले, "मेरा कोई घर नहीं है बहन जी, बूढ़ी माँ हूँ और बोझ नहीं होना चाहती, न आप पर, न पुलिस पर! वह जो है न ऊपरवाला, उसकी छत के नीचे रह लूँगी।" उसका चेहरा पत्थर-जैसा सख़्त था। उसकी आँखों में धधकता-सा ज्वालामुखी था, जिसे उसने अपनी पलकों से ढाँप लिया और दीवार की तरफ़ पीठ फेरकर बैठ गई, जैसे दीवार पर कोई सुरंग उसे तलाशनी हो! कुछ था, उसके शालीन स्वर में, आत्मसम्मान का लावा जैसा, कि भीड़ छँट गई। बहन जी भी 'आश्रम में चलो' कहती-कहती थककर चली गई। उसने अपना चेहरा नहीं घुमाया, उसका अटूट मौन फिर से धुंध-सा उसके चारों ओर घिर गया, जैसे उसे भीड़ के चंगुल से बचा रहा था। एक पटाक्षेप दृश्य का, अनखुले अंत:करण की प्रतिसृष्टि का। खुले आकाश के नीचे खड़ी थी वह। सत्य क्या आकाश से कम असीम है या कम अनंत?

सुम्मी और रतिका ने भी उसे, उसकी निरर्थकता में अकेले छोड़ दिया और चली गई, क्योंकि भजन के लिए देर हो रही थी। लेकिन पूरे रास्ते उनमें बातचीत की शक्ति नहीं बची थी। स्थितियों में तालमेल बैठाना कभी-कभी बहुत कठिन होता है।

मंजरी दी का घर बाहर तक फूलों से सजा था, जैसे कोई शादी-ब्याह का आयोजन हो, रतिका ने सुम्मी की तरफ़ देखा, "पता है रतिका, रेवा बता रही थी कि मंजरी दी ने बहुत मेहनत की है, ढेर सारे फूल बाज़ार से मँगवाए हैं। आज की सजावट में जी खोलकर ख़र्च किया है। लो भजन में भी कंपिटीशन शुरू हो गया! सुम्मी, याद है! उर्मी ने कैसे सजवाया था मंदिर? किसी प्रोफ़ेशनल को बुलाकर और सबको द्वार पर ही लाल दुपट्टे दिए और सबकी कलाई पर ख़ूब क़ीमती मौली बाँधी थी, जिस पर साईं बाबा का चित्र बना था। बता रही थी कि उसका पति 'बाबा' का भक्त है। बहुत बड़ा प्रॉपर्टी डीलर है वह।"

"और रूपा ने प्रसाद के रूप में मीठे बादाम बाँटे, सबको सुना रही थी कि मेरा बेटा बड़ा अफ़सर हो गया है।"

"यह नहीं बताया ऊपर की कमाई, वेतन से कहीं ज़्यादा है।" भजन के बाद मात्र यही चेतना की पूर्ण सजगता या अवेयरनेस प्राप्त हुई थी उसकी सहेलियों को? सुम्मी ने टोका, "फिर परनिन्दा!" स्वामी जी ने ही तो बताया था, "परनिन्दा करना पाप है, नरक का द्वार है। और भजन का दर्शन चिंतन?" उसके प्रोफ़ेसरी मन ने सोचा, शायद व्यक्ति की वास्तविक पीड़ा यही है कि उसमें विविधताभरी इच्छाओं की भीड़ है—और उनके सारे स्वर अंतर्विरोधी नहीं, असंगत भी हैं।

भीतर भजनीक भजन गा रहा था, 'जिन मात पिता की सेवा की, तीरथ धाम कियो न कियो...' सुम्मी के मन में कहीं गड़ा रह गया था वह वाक्य। उसे बड़ा अच्छा लगा था स्वर की उस लहरी में सार्थक कुछ हो जाना। लेकिन दीवार से सटी वह पथराई औरत? मन के आंदोलनों में डूबती-उतरती जाने किस कश्ती के इंतज़ार में वहाँ खड़ी थी। सपाट दीवार की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सर्द छुअन में सिमटी हुई। उसे भूल नहीं पा रही थी सुमित्रा, पता नहीं क्यों? अपनी भीतरी शक्तियों से लड़ने का परिणाम क्या यही अंतर्द्वन्द्व होता है?

और फिर कुछ ही महीनों बाद भजन उसके घर में भी हुए। पति की शोक सभा, घंटियों, मंजीरों, तबले, बाँसुरी—पता नहीं कौन-सा स्वर देवताओं को जगाने का प्रयास कर रहा था! कौन-सा? वह भगवान जो पत्थर की प्रतिमाओं में विराजमान थे, या वह जो इंसानों के भीतर सो चुके थे, गहरी नींद। सुम्मी इन तीन-चार दिनों में अपने बेटों, बहुओं की आवाज़ें सुन रही थी। मृत्यु के बाद का बदलता समय, एक पतझर, जैसे घर में सेंध लगा गया था, और बच्चों की बातचीत सूखे निर्जीव पत्तों-सी झर रही थी। सुम्मी उस कूड़े के ढेर की अंधी विक्षिप्तता से बचने का प्रयास करना चाहती थी। लेकिन?

शायद वह भी घर की एक सूनी-सपाट दीवार की तरफ़ मुँह फेर लेना चाहती थी, जहाँ निःशब्द बह रहा था एक अकाट्य सूनापन। किसने क्या कहा, पता ही नहीं चला। रतिका, मंजरी दी, उर्मी—उसको सहलाती, पर वह भी तो पथरा गई थी—सार्थक लगनेवाले तत्त्व भाषा-संस्कार, खो-से चले थे। तभी तो सुम्मी भी उस दिन अपने ही घर की दीवार से सटी, फटी आँखों से देख रही थी, बनता-बदलता परिदृश्य। जैसे घुप्प अँधेरी रात में जलता दीया अचानक बुझ गया था।

पहले उन्होंने उस लड़ी को मंदिर के परिवेश से उतारा, जिसमें बिजली के छोटे-छोटे रंगीन बल्ब जलते-बुझते थे। काफ़ी साल पहले किसी दिवाली मेले से उन्हें ख़रीदा था। फिर उन्होंने छोटे लकड़ी के उस फ्रेम को चौकी से हटाया सीधे तने खड़े, हाथ जोड़े श्री हनुमान जी, उनका 'राम-दरबार'। उनके वस्त्र, छोटी-छोटी मालाएँ, चरणों में चढ़े फूल गिरकर इधर-उधर बिखर गए। किसी एक हाथ ने समेटा, अख़बार के पुराने काग़ज़ में उन्हें बेदर्दी से लपेट दिया। कुछ वैसे जैसे घर का और बेकार सामान।

''व्हेयर इज़ डस्टबिन?'' महिमा का स्वर उसे चौंका गया। भोग की थाली भी सारी प्रक्रिया में खन्न से धरती पर जा गिरी। जिसमें कितनी बार वह हलवा रखा गया था, जिसे सुवीर के कहने पर वह सवेरे-सवेरे उठकर बनाती थी। सुवीर कहता था, ''माँ कल अगर हलवा नहीं बनाया तो मैं स्कूल नहीं जाऊँगा।''

वह सवेरे उठकर चाय के पानी के साथ-साथ, सूजी की कढ़ाही गैस पर रख देती। चाय बनाते-पीते सूजी घी के साथ खदबदाने लगती और उसकी सोंधी ख़ुशबू घर में फैल जाती। सुवीर उठकर सीधा रसोई में आता, ''ओह माँ थैंक यू, चलो पहले मुझे दो हलवा!''

''अरे ठहर बेटा, पहले भगवान को भोग लगा आ! ये ले भोग की थाली, मंदिर में रख और हाँ पहले पाँच बार गायत्री मंत्र पढ़ना, बाद में...''

वह थाली लेकर भागता, ''ओउम् भूर भूवः स्वः।...'' जब तक मंदिर पहुँचता मंत्र समाप्त हो जाता और वह थाली चौकी पर रखकर माथा टेकता और भागता हुआ लौटता, ''अब जल्दी कर माँ..!'' ''हाँ सबर कर, अभी देती हूँ!'' वह जल्दी-जल्दी भोग का हलवा कढ़ाही के हलवे में मिलाकर पहली कटोरी सुवीर को पकड़ाती, ''ये ले मेरे गिरधर गोपाल, चल भोग लगा!'' सुवीर हँसता-हँसता अपनी कटोरी उठाकर दौड़ जाता। दूसरी कटोरी सुनील

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की और तीसरी अपने पति रघुबीर जी को सजाकर, चौथी में हलवा डालकर अपनी सास के पास ले जाती, ''लो बीजी हलवा खा लो, अभी गरम है!''

''आज कोई दिन-वार है क्या? सुमित्रा, इस कोठरी में पड़े-पड़े मुझे तो याद ही नहीं रहता, कब अमावस होती है, कब पूरणमासी! तू बल्लिये अच्छा निभा रही है घर का धरम!''

''अरे बीजी जब बच्चे कहें कुछ खाना है, वह दिन त्योहार हो जाता है! आज कुछ नहीं है। हाँ सुवीर की फ़रमाइश थी हलवे की, सो बना डाला!''

''कहाँ रखें इस डब्बे को!'' एक मैले से डिब्बे में मंदिर राम-दरबार दीये-जोत-भोग के पात्र पैक हो चुके थे। सुमित्रा ने अपनी तंद्रा से उबरकर कुछ नहीं कहा, केवल देखती रही। सुवीर ही बताने में लगा था, कौन-सी चीज़ कहाँ रखनी है। लकड़ी का छोटा-सा छत से टिका एक फट्टा था, जिस पर पुराने समय के दो टीन के बक्से रखे थे वह भी उस टाँड के खींचे जाने पर ज़मीन पर आ गिरे। एक बक्सा खुला, उसमें भगवान के पुराने वस्त्र टूटी मालाएँ विभिन्न मंदिरों से प्राप्त लाल-पीले दुपट्टे तहाए रखे थे। एक पीला वाला चदरा भी था, जिसे मनकामेश्वर के महंत जी ने दिया था, जब उसने वहाँ सुवीर का नामकरण करवाया था। दूसरा रामनामी वाला चदरा, वह एक बार वृंदावन से लाई थी और अकसर कीर्तन के समय उसे ही चौकी पर बिछाती थी। मुहल्ले वाली महिलाएँ कितना सराहती थीं उसे, ''अरे कितना अच्छा सजाती है मंदिर! सुमित्रा तू तो बड़ी कलात्मक चीज़ें जमा करती है।'' वीना ने उसके मोर के आकार के लंबे दीये को देखकर कहा था, जो वह, दिल्ली हाट की कर्नाटक की दुकान से ले आई थी। उसमें रूई की बाती देर तक जलती थी।

दूसरे बॉक्स में किताबें थीं *भागवत गीता, रामायण* और बिलकुल नीचे एक थैली में उसके अपने बचपन के घुँघरू की जोड़ी, जो झम्म से गिरकर उसे सुम्मी, सुमित्रा के खोल में लौटा लाई थी। उसने झपटकर घुँघरू की थैली उठा ली और कहा, ''इन बक्सों को मेरे कमरे में पलंग के नीचे रख दो, इनसे मेरी साझेदारी है, बहुत पुरानी।'' सुम्मी की इतने वर्षों की 'उसकी आध्यात्मिकता प्रोफ़ेसरी या भजन के शब्दों-जैसी अनुमानित नहीं थी—वह तो उसमें डूबकर उसकी विधायकता को अनुभव कर चुकी थी, लेकिन उसके अपने बेटे ऑब्जेक्टिव, विषयगत जीवन तट पर खड़े थे—तो? ''तो बी प्रैक्टिकल!''

''माँ, इनको भी जाने दो पीछे के सर्वेंट क्वार्टर में, जब सब ठीक होगा तब निकाल लेना।''

तब तक मंदिर वाला डिब्बा जा चुका था। उसने भरी-भरी आँखों से देखा, डिब्बे पर ब्लैक लेबल ह्विस्की की पर्चियाँ चिपकी हुई थीं। उसके भीतर कुछ हुमककर बाहर आना चाहता था, वह भागकर भीतर चली गई अपने कमरे में। पर तब तक वह भी भर चुका था, सामान से। बीजी की खटिया दीवार से सटी थी। पेशाब की बास का भभका उसे और भी अन्यमनस्क कर रहा था। एक कोने में सुवीर की पुरानी टेबल, कुर्सी और तीन-चार बक्से एक-दूसरे पर चढ़े अपने पुराने की बास छाती में दबाए पड़े थे। उसका माथा भन्नाने लगा। बाथरूम में जाकर एक प्रपात-सी उलटी उसके अंदर के कसैलेपन को बाहर लाने का प्रयास कर रही थी, लेकिन कसैलापन जाता है कभी? बाथरूम में भी तो बीजी का पिसपॉट और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उपयोग की हुई धुली-अनधुली चादरों का अंबार, जिन्हें सुवीर की आर्किटेक्ट पत्नी कभी का फिंकवा गई थी, कमरे की असह्य गंध। कुछ वैसी गंध, जिसने उसे रूपा के घर के परिवेश में ला खड़ा किया था। न चाहते हुए भी उन गंधाती भित्तियों को फलाँग गई थी।

भजन के समाप्त होने पर वह रूपा के कमरे से जुड़े बाथरूम में चली गई तो दंग रह गई, इतना गंदा? दीवारों के पीलेपन पर रेंगते कॉकरोच, वह बाहर भाग आई, लेकिन बदबू का भभका यहाँ भी पूरे परिवेश पर पसरा हुआ था, जैसे कोई चिर प्रदेश की छाया वहाँ ठिठकी रह गई थी। परंतु बाहर खड़ी रूपा रेशमी कपड़ों और रंगीन मोतियों की माला से सजी अपना बड़ा-सा चमचमाता पर्स सबको दिखा रही थी। उसकी दृष्टि, उसकी अभिव्यक्ति में दंभ घुला था, उपलब्धियों का गौण परिणाम।

''पता है मेरे बेटे ने 'मदर्स-डे' पर मुझे गिफ़्ट भेजा है—है न ख़ूबसूरत...इज़ंट इट?''

वीणा ने फुसफुसाकर समझाया, ''यह पर्स बड़े महँगे होते हैं, पचास-साठ हज़ार से ऊपर...ये पर्स स्टेटस सिंबल समझे जाते हैं। जिसके पास जितना बड़ा, वह उतना अमीर। गिनती धनवान की।''

सुम्मी ने अपना कॉलेज के ज़माने का काला पुराना पर्स शॉल के नीचे सरका दिया, जिसकी जेबों में थोड़े-बहुत रुपये, चढ़ावे के लिए दस-दस के कुछ नोट थे, बस!

''अच्छा!'' रतिका ने पूछा, ''ये रूपा इतना ख़र्च कहाँ से करती है, इसके घरवाले का तो बहुत साल पहले मर्डर हो गया था। हम सबको जब तक पता चला, इसके ऊपर के फ़्लैट वाले किरायेदार ने पुलिस वालों को पैसे देकर सारा मामला रफ़ा-दफ़ा कर दिया था।''

''हाँ, छपी तो थी अख़बार में ख़बर, पर हुआ कुछ नहीं।''

''ऊपर वाला किरायेदार, इसका पुराना प्रेमी है, बॉय-फ्रेंड, पायलेट है शायद, हवाई यात्राएँ करता है। तभी तो छलकती थी महँगी शराब हर रात, रूपा का ड्रॉईंगरूम भरा होता था शौक़ीन दोस्तों से—शराब, कबाब और सिगरेटों में रूपा का हुलिया बदला-बदला होता था।'' रमेश जी बता रहे थे, ''कैसी है तुम्हारी दोस्त, पंद्रह साल का पोता है उसका...और?'' वीणा ने होंठ पर उंगलियाँ दबाकर एक राज़ खोला। सत्ताधारी लोगों का रहस्य।

''और, और भजन के दिन? कैसी भक्तिन बनती है, आँखें मूँदकर, किसी ट्रांस में गुम हो जाती है।''

''ओह वह ट्रांस लगता है तुम्हें, अरे रात भर की ख़ुमारी होती है! लीनता, भजन...भजन वह तो हमसे जुड़े रहने का बहाना है वीणा!''

''बिना किसी का अंतर्मन जाने, ऐसा कैसे कह सकती हो वीणा?'' सुम्मी की चेतना उसे स्वीकार नहीं कर पा रही थी।

''ओह हो, सुम्मी दी! आप ठहरी फिलॉसफ़ी की प्रोफ़ेसर...छोड़िए अपना फ़लसफ़ा! अब दुनियावी होकर देखिए ना, उस यार के जाने के बाद कितनी मुसीबतें झेल रही है रूपा!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऊपर का फ़्लैट बेच दिया, सामने वाली बैठक और बरामदा किराए पर उठा दिया। उन्हीं से चलता है घर का ख़र्च।''

''तो बस यही एक कमरा बचा है उसके पास?''

''हाँ, और देखिए ना बाथरूम को ही पार्टीशन डालकर रसोई बना ली है।''

''सुम्मी बाथरूम देख आई ना, अब ज़रा रसोई भी देख आ, तो खाना नहीं खा पाएगी जो उसने परोसा है!''

''ओह रियली! पर देखिए न वह मंजुला, प्लेट भरकर ऐसे खा रही है, जैसे कभी खाना देखा ही नहीं!''

''मजबूरी, मजबूरी इंसान से बहुत कुछ करवा लेती है। बहुत कुछ, जो उसने सपने में भी नहीं सोचा होता! हो सकता है मंजुला की भी कोई मजबूरी हो!'' रेवा ने कहा। ''और मजबूरी धनाभाव, बदबू, मैली सीलन से कहीं अधिक कचोटता है इंसान की आत्मा को, और अपनी प्रतिबद्धताओं से हटकर करने पड़ते हैं ये दुनियादारी वाले काम, क्योंकि जीना तो पड़ता है न!''

''सुम्मी दी, प्लीज़ आपकी फ़िलॉसफ़ी...''

''हाँ।'' सुमित्रा ने जैसे अपने आपसे कहा, उसका अपना ज्ञान, अभिरुचि, उसका बीता हुआ कॉलेजी जीवन, चेतना की किसी दीवार पर आकर टिक गया था। प्रयास कर रही थी दुनियावी हो जाए। 'बी प्रैक्टिकल!' रघुबीर उसे हमेशा समझाता था, लेकिन दुनियादारी उसे पारस्परिक धोखे जैसी लगती थी, पता नहीं क्यों?

पिता की तेरहवीं होते ही सुवीर की दृष्टि में अजीब-सा उपार्जन प्रतीत हुआ सुम्मी को। कैसी रिक्त, ख़ाली दृष्टि और कैसी स्नेह संवादविहीन भाषा। उसका हलवे, मठरी, अचार पर ठुनकता सुवीर महिमा के लुनाई भरे चेहरे की परतों में कहीं धँसा-सा प्रतीत हुआ। जीवन की अलग-अलग वास्तविकताओं को गिनती में उतार रहा था। गणनाएँ चल रही थीं, बता रहा था अब उसकी पोस्टिंग दिल्ली में हो जाएगी, वह और महिमा यहीं रहेंगे। ''तो रहो ना!'' सुमित्रा की दलील पर महिमा का आर्किटेक्चर आड़े आ खड़ा हुआ। ''मैं इस घर को तोड़कर नया बनाना चाहती हूँ, सुवीर! इतनी फ़ेमस आर्किटेक्ट हूँ मैं... ऐसे दक़ियानूसी मिडिल क्लास घर में कैसे रह सकते हैं हम? देन आई विल क्रिएट माई ऑफ़िस ऑलसो! सेंट्रल एरिया है यह, बड़ी वैल्यू बढ़ गई है इस मकान की, मैंने स्टडी की है। यहाँ मैं आर्किटेक्चरल वंडर क्रिएट करूँगी, तुम देखना!'' उसके चेहरे पर अजीब-सी झमझमाहट थी।

महिमा का वाक्य सुनील के भीतर धँसता चला गया। उचककर बोला, ''सुवीर भाई, आप अकेले हक़दार थोड़े ही हैं, डोंट फ़ोरगेट, मैं भी हूँ! अगर आप घर को रैनोवेट कर रहे हैं तो एक फ़्लोर मेरा भी बनाइये, मैं अपना हिस्सा क्यों छोड़ दूँ...ह्वाय?'' अब तक सुनील हस्तक्षेप नहीं कर रहा था। ''मैं भी तो इस घर का बेटा हूँ...!''

उन दोनों में से किसी ने भी मुड़कर सुमित्रा की ओर नहीं देखा। न जाने क्यों सुमित्रा के मन में स्कूल के पिछवाड़े नीले प्लास्टिक में ढँकी उस महिला का चेहरा कौंध गया, जो दीवार की किसी अदृश्य सुरंग में अपने अपनत्व के सत्य को तलाशती गहरे मौन में पथराई खड़ी थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"देखो सुनील!" सुवीर उसके कंधे पर हाथ रखकर उसे समझा रहा था, "साढ़े तीन सौ गज़ की इस ज़मीन पर एक ही परिवार रह सकता है—तुम्हें तो अच्छा-ख़ासा क्वार्टर मिला है, सरकारी नौकरी है, जहाँ भी तुम्हारी बदली होगी, ठाठ से रहोगे। फिर क्यों परेशान होते हो,...प्लीज़...लीव दिस टु मी!"

"मैं रहूँ या किराए पर चढ़ाऊँ, प्रोपर्टी तो होगी मेरी! जहाँ रिटायरमेंट के बाद मैं और देविका आराम से रह सकेंगे। सारी उम्र तो नौकरी नहीं करता कोई! फिर यहाँ से कंपनी बाग़ पास ही है। बाबूजी सैर करते थे रोज़, हम भी करेंगे।"

माँ की तरफ़ तब भी किसी की दृष्टि नहीं गई। स्वार्थ के सामने संवेदनाएँ क्या दफ़न हो जाती हैं? या उनकी अवहेलना अधिकार बन जाता है?

दोपहर सिर पर सवार थी। अंदर-बाहर सामान फैला था, तभी दरवाज़े की घंटी बजी, महिमा दो बड़े-बड़े डिब्बे हाथ में उठाए भीतर आई अपने चमकते बड़े-से पर्स से पैसे निकालकर पिज़्ज़ा वाले को दिए। "कम सुवीर, चलो पहले पिज़्ज़ा खा लो, दो-तीन बज गए हैं। भूख लगी होगी!" उसने डिब्बे मेज़ पर रखे और कोक की बड़ी बोतल से दो गिलासों में कोक डाली। "लो न., चीयर्स!" उसने गिलास उठाकर कहा। सुमित्रा और भी पथरा गई। अपने ही घर में कैसे बेगानी जैसी खड़ी थी, पति के जाते ही सारी क़ायनात भरभरा गई। रघुबीर के साथ जीया जीवन भी कम कष्टपूर्ण नहीं था, आर्थिक चुनौतियाँ थीं। नौकरी थी, लेकिन अब आगे, कितने समझौते और?

पिज़्ज़ा मुँह में डालते हुए उसने माँ की ओर देखा, "ओह माँ, आइए आप भी लीजिए!" सुवीर को जैसे चेत आया।

"पर सुवीर वह नॉनवेज है, माँ कैसे खाएँगी!"

"तो वेज ले आती न!"

"सॉरी, मुझे ध्यान नहीं रहा!"

एक-एक शब्द तीखे। तेज़ाब सिर्फ़ द्रव्य नहीं होता! दंड भी मात्र शारीरिक नहीं होते। सुमित्रा रसोई में चली आई। उसे अपना नहीं, बीजी का ख़याल आया, अब तक भूखी होंगी। पानी में खँगालकर दाल-चावल प्रेशर कुकर में चढ़ा दिए, खिचड़ी बन जाने पर कमरे में आई। "लो बीजी, खाना खा लो!" उसने उनके स्टूल पर थाली टिकाकर उन्हें बैठा दिया।

"रोटी नहीं बनाई...दो दिन से खिचड़ी खिला रही है।"

"शाम को बना दूँगी।" कहकर सुमित्रा वहाँ से खिसक गई।

चार-छह दिन ऐसे ही बीते, महिमा ने नाक-भौं चढ़ाकर सूचना जैसी दी, "यहाँ इंडिया में आसानी से कुछ नहीं होता! इट ऑल टेक्स टाइम, नक़्शे अभी तक पास नहीं हुए। कब से दिए हुए हैं। याद है जब तुम्हारे बाबूजी को पहला स्ट्रोक हुआ था, टू ईयर्स बैक! दो साल में भी नक़्शे पास नहीं हुए इस मकान के। इट इज़ ए लिमिट!"

"ओह तो इतने दिन से चल रही है प्लानिंग!" सुनील ने देविका का हाथ दबाते हुए कहा, "हम तो बड़े बेवक़ूफ़ हैं!"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुमित्रा ने पथराई आँखों से अपने बेटों को देखा और अनदेखी उन सभी कार्यवाही को, जिसमें एक तिरोहित भविष्य साफ़-साफ़ दिखाई पड़ रहा था। ''सुनील, तुमने बाबूजी की वसीयत की कॉपी तो रख ली है ना... ?'' देविका ने सुनील की पकड़ को और मज़बूत करने का प्रयास किया।

''वसीयत की कॉपी तो माँ के पास है।''

''रीयली, मैंने सोचा तुमने लिखवा लिया होगा बाबूजी से।'' सुनील ने माँ की तरफ़ देखना चाहा, लेकिन सुमित्रा मुड़कर भीतर चली गई।

''चलो सुवीर, मैंने टिकिट्स करा ली हैं, माई बॉस इज़ कॉलिंग, मुझे कल ऑफ़िस ज्वाइन करना है। अगले महीने फिर आ जाएँगे। तब तक तो पास हो जाएँगे रेनोवेशन प्लान।'' दो दिन बाद महिमा ने एक एनाउंसमेंट-जैसा किया। सीधे मुँह तो वह किसी से बात नहीं करती थी।

''आय एम स्योर...हो जाएँगे, मैं आज सुबह भी गया था एन.डी.एम.सी. के ऑफ़िस...ओह माँ चाय!'' वह रसोई में आ गया।

सुमित्रा ने ट्रे में दो कप चाय छान दी, ''तू ले जाएगा या मंगलो को बुलाऊँ...'' वह जानती थी महिमा तो आएगी नहीं, स्थितियाँ अपने आप साफ़ हो जाती हैं।

''मैं ही ले जाऊँगा, घर में भी तो मैं ही...'' महिमा को देखकर वह चुप हो गया और चाय की ट्रे लेकर बैठक में चला आया।

''हमलोग अगले महीने आएँगे माँ, तब तक आप घर का बेकार सामान बेच-बाच देना।'' सुवीर ने भी एनाउंसमेंट-जैसा किया।

''बेकार सामान...कौन-सा... !'' उसने बीजी और बदबूदार चादरों के ढेर को देखा।

सुवीर और सुनील के अपनी पत्नियों के साथ चले जाने पर सुमित्रा ने जैसे खुलकर साँस ली। उनके बने रहने पर कितना घुटा हुआ था वातावरण—कितना बिखर गया था उसका करीने से सजा घर। उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि ये उसका अपना घर है, तिनके-तिनके जोड़कर बनाया हुआ। लेकिन शायद अपना कुछ नहीं है इस संसार में। उसके अपने ही बच्चे उसे ठीक से समझा गए हैं एक विडंबनापूर्ण यथार्थ। बहुत देर तक एकांत में बैठकर सोचती रही—सत्य क्या आकाश से कम असीम है या कम अनंत? समस्याओं से रू-ब-रू करते बच्चों के फ़ोन आते रहते थे। सुनील ही बहुत बार कह चुका था कि ''देविका का प्रसव पास है, आप आ जाओ, आपका भी चेंज हो जाएगा माँ!''

''चेंज?'' बीजी की इतनी देखभाल जो एक दंडसंहिता-सी वर्षों से उसके शरीर से चिपकी थी—फिर बीमार पति का एक साल घिसट-घिसटकर चले जाना—उसे धनाभाव और क्रूर वास्तविकताओं की कँटीदार झाड़ी में उलझा गया था। इस बीच उसकी ट्यूशनें भी छूट गई थीं। सोच-समझकर घर चलाना होता था।

उस दिन सब्ज़ी ख़रीद रही थी तो दूसरी गली की मंजुला आकर पास खड़ी हो गई। उसकी आँखें सब्ज़ी के ठेले से हट ही नहीं रही थीं—अज़ीब-सा भाव था उनमें, तो सुम्मी ने ही कहा, ''मंजुला ले लो सब्ज़ी! बहुत ताज़े हैं टमाटर और पालक भी, देखो तो?''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

"हमलोग सब्ज़ी नहीं खाते। वी लिव ऑन लिक्विड्स, दूध पीते हैं।" भागता-सा उसका भाई जाने कहाँ से आ गया, और बहन को घसीटता हुआ ले गया। सुमित्रा ने ध्यान से देखा, उन दोनों के चेहरे बहुत कमज़ोर और पीले-से थे...लड़खड़ाते क़दमों से चले जा रहे थे। उसे याद आया कभी-कभी मंजुला ह्वील चेयर पर भी बैठी दिखाई देती थी।

रतिका ने एक बार बताया था कि मंजुला अपने भाई के साथ रहती है। भाई कुछ काम-धंधा नहीं करता। मंजुला का पति फ़ौज में था, किसी लड़ाई में शहीद हुआ था और उसके पति की हर माह मिलनेवाली पेंशन पर ही दोनों बहन-भाई गुज़ारा करते हैं।

कुछ दिन बाद जब कॉलोनी में बदबू फैली, तो रूपा के एक किरायेदार ने पुलिस को फ़ोन किया। पुलिस ने ही आकर दरवाज़ा खुलवाया। जब तक सुमित्रा, रतिका, वीणा वहाँ पहुँचते वह मंजुला का शव बाहर ला चुके थे। चादर से ढँक देने पर भी उसके शव से काला-सा ख़ून टपक रहा था। शायद अंदर की शिराएँ फट गई थीं। मृत्यु हुए दो-तीन दिन बीत चुके थे। दुर्गन्ध से सारा वातावरण प्रदूषित-सा हो गया था।

मंजुला के भाई को भी स्ट्रेचर पर बाहर लाया गया, उसी ने बताया कि इस महीने पेंशन नहीं मिली इसलिए दोनों बहन-भाई ने आठ दिन से कुछ नहीं खाया था—रोटी-पानी कुछ भी नहीं। मंजुला ने भूख से प्राण त्याग दिए थे... उसका एकमात्र बेटा अमेरिका में रहता था, उससे पुलिस ने अपने मोबाइल से बात करने की कोशिश की और एक एस.एम.एस. भी भेजा, लेकिन कोई उत्तर न आने पर पुलिस वाले मंजुला का शव पोस्टमार्टम के लिए ले गए। भास्कर को भी अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। रूपा के किरायेदार ने ही अंतिम क्रिया-कर्म की सारी कार्यवाही की। मंजुला का तो और कोई नहीं था, कोई नहीं। मरणासन्न भाई अस्पताल में साँसों की नली के सहारे अटका पड़ा था।

उसी दिन सुम्मी के मोबाइल पर सुवीर की छह मिस कॉल थीं और मैसेज था कि वे लोग अपना सामान पैक करा रहे हैं—हो सकता है महीना भर लग जाए, पर अब आकर दिल्ली में ही रहेंगे। जब तक सिर पर नहीं बैठेंगे, नक़्शे कैसे पास होंगे? उसका अपना अनुभूतियों का अविजित क्षेत्र था जो मोबाइल के 'मैसेज' से परिभाषित हो रहा था।

सुम्मी के पास एक महीने का समय था—केवल एक महीना...तीस दिन। पुश्त-दर-पुश्त चलती व्यवस्थागत स्थितियों में बँधे पिता की संपत्ति के दावेदार वही तो थे। उसके अपने बेटे सुवीर और सुनील।

सुनील ने भी सूचना दी, बेटा हुआ है—'उसका पोता'। सुमित्रा और रघुबीर की विरासत का एक और दावेदार। किसी ने भी बीजी या उसके स्वास्थ्य के बारे में कुछ नहीं पूछा। यह टेलीफ़ोन था या दंडसंहिता? यह सब अपनी टुनटुनाहट से उसकी तंद्रा तोड़ रहा था, पता नहीं क्या था? एक लावा-सा आत्मसम्मान पर अग्निशिखा-सा चिलचिलाया। वह उठी, आलमारी से अपना पर्स उठाया और रतिका के साथ रघुबीर के पुराने मित्र के घर चली गई।

एक महीना बाद सूटकेसों से लदी टैक्सी से सुवीर और महिमा जब घर के सामने आ खड़े हुए तो उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। चारों ओर दृष्टि दौड़ाई, हाँ परिवेश तो वही था, आसपास के घर जैसे के तैसे, फिर ये उनका अपना घर, उसे क्या हुआ? साथ वाली पतली

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गली से मंगलो चली आ रही थी। महिमा ने उसे रोककर पूछा, ''अरे मंगलो बताना, इस घर को किसने तोड़ डाला, किसकी इजाज़त से?''

सुवीर ने मोबाइल पर माँ का नंबर मिलाया पर स्विच्ड ऑफ़ आ रहा था। झुँझलाकर फिर सुवीर ने पूछा, ''अरे बोल क्यों नहीं रही! ये हमारा मकान था, तोड़ा क्यों? किसने, तुझे तो पता होगा?''

''अरे भैया अब हमें क्या पता?'' उसने पिच्च से थूका, और झटककर चली गई।

''हाऊ रूड शी इज़?'' महिमा ग़ुस्से से चिल्लाई, ''देखा, नमस्ते तक नहीं की इसने, जैसे हमें पहचानती ही नहीं! ह्वेयर इज़ योर मदर...एंड द ओल्ड लेडी?''

बहुत बार मोबाइल मिलाने पर भी कोई जवाब नहीं मिला, तो वह रतिका के घर की तरफ़ चले गए। ''रतिका माँ की बेस्ट फ्रेंड थी। उन्हें पता होगा—चलो उनसे पूछ लेते हैं।'' बुदबुदाता रहा सुवीर, ''माँ ने कभी कुछ बताया नहीं, अभी हफ़्ता पहले तो बात हुई थी! बड़ी नॉर्मल थी, तब तो! मुझे तो कॉन्फ़ीडेंस में लेती!''

सुवीर के घंटी बजाने पर रतिका बाहर आ गई—कड़ी धूप के बावजूद उसने उन्हें घर के अंदर आने को नहीं कहा। सुवीर और महिमा ने भी अभिनंदन की भूमिका के बिना ही गरजकर कहा, ''आपको तो पता होगा यह हमारा घर किसने तोड़ डाला...किसकी इजाज़त से?''

''ओह...'' रतिका ने 'मकान' की बात सुन ली, ''अरे सुवीर! मकान-मकान करे जा रहे हो, एक बार भी माँ के बारे में पूछा? शाबाश बेटा, शायद इसीलिए सुम्मी ने यह मकान बेच दिया, और यहाँ से चली गई।''

''ओह हाऊ क्लेवर...!'' महिमा क्रोध से फड़फड़ा रही थी, ''कहाँ चली गई...ह्वेयर इज़ द मनी?''

''शायद किसी वृद्धाश्रम में—वहीं जमा करा दिए सारे पैसे। अपनी सास को भी इज़्ज़त से साथ ले गई हैं। उन्हें भी इस घर के मलबे में सड़ने के लिए नहीं छोड़ा! सुना तुमने?''

''यस, लेकिन उनका पता तो बता दें आंटी... ?'' पहली बार रतिका को 'आंटी' कहा उसने। हालाँकि कोई आदर नहीं था उसके स्वर में।

''नहीं, मैं उसका पता नहीं बता सकती, आय विल नॉट, और फिर उसका कोई फ़ायदा नहीं, सुम्मी ने वहाँ अपने आप को अनाथ लिखवाया है। साथ में यह भी कि मर जाने पर, उस संस्था के लोग ही उनका क्रिया-कर्म कर दें। क्योंकि उनका इस पूरे संसार में अपना कोई नहीं है—न कोई संतान, न भाई-बहन, न रिश्तेदार!''

रतिका के चेहरे पर आँसू बह आए थे—परंतु महिमा और सुवीर उसे निःशब्द घूर रहे थे— एक मरणासन्न सन्नाटा बीच में गहरा रहा था, इससे पहले वह और कुछ कहते-पूछते, रतिका पीछे मुड़ी और अपना दरवाज़ा कसकर बंद कर लिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

ओड़िया

दीप्ति पटनायक

निस्संग

"वह क्या आपका मरद था?" कंपार्टमेंट के नीम अँधेरे में सीट के नीचे अपना सामान सहेजती सुजाता यह सवाल सुनकर चौंकी ।

चेन्नई से ट्रेन के खुलने का समय रात के ग्यारह बजे है, लेकिन आते-आते अकसर देर हो ही जाती है। गाड़ी जैसे ही आई उसकी बहन के बेटे आदित्य ने जल्दी-जल्दी एक-एक कर सारा सामान डिब्बे के अंदर फेंका। ऊपर चढ़कर वह मौसी का पाँव छूने के लिए झुका ही था कि गाड़ी खुल गई। वह हड़बड़ाकर नीचे उतर गया। सुजाता ने राहत की साँस ली। कुछ देर बाहर की ओर देखती रही, फिर दरवाज़े के पास पड़े हुए सामान को घसीट-घसीटकर अपने बर्थ के पास ले गई। सीट के नीचे वह एक-एक सामान को अच्छी तरह सेट कर रही थी, इसी बीच पास वाले बर्थ से अचानक इस सवाल को सुनकर उसका मन खिन्न हो उठा। हाल ही में दाहिने हाथ की हड्डी टूट जाने के कारण उसकी कलाई कमज़ोर हो गई थी। डॉक्टर ने भारी चीज़ उठाने से मना किया था। फिर भी, मन नहीं मानने के कारण सुजाता ने ढेर सारी मार्केटिंग कर ली थी। आगामी पूजा की छुट्टी में देवर-देवरानी, बेटा-बहू, बेटी-दामाद, भतीजा- भतीजी आदि परिवार के अनेक लोग घर आएँगे, इसलिए नहीं-नहीं करते हुए भी सबके लिए कुछ-न-कुछ ख़रीदना ही पड़ा। छोटे पोते के लिए ढेर सारे खिलौने लेने से वह अपने आपको बिलकुल नहीं रोक पाई। दुर्गा पूजा के अवसर पर घर के रसोइया से लेकर नौकरानी तक की आशा लगी रहती है। उनके लिए भी कपड़े लेने पड़े। ये सब कटक में भी मिलते हैं, लेकिन बाहर से लाने पर उसकी क़ीमत बढ़ जाती है। इसलिए दो दिन के सेमिनार के बाद दीदी के बेटे आदित्य और उसकी पत्नी शुभश्री के साथ चेन्नई के बाज़ार में काफी समय बिताना पड़ा था। जिसके चलते इतनी सारी

जन्म : 1945। कहानी, उपन्यास की कई पुस्तकें प्रकाशित। कई संस्थाओं से पुरस्कृत। संपर्क : श्याम चंद्रिका, (गीता अस्पताल के नज़दीक), दास साही, जोबरा, कटक 753003 (ओड़िशा);
मो. 09437850092.

अनु. **मधुसूदन साहा**। कवि-कथाकार। कविता, कहानी, उपन्यास की कई पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : सौरभ सदन, डी-90, कोयल नगर, राउरकेला 769014 (ओडिशा);
मो. 09861564729.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीज़ें ख़रीदने में उसको ढेरों परेशानियाँ उठानी पड़ी थीं। और इन्हीं परेशानियों के बीच एक ऐसा बेहया सवाल!

सुजाता मन-ही-मन सोचने लगी कि 'यह कैसा आदमी है! एक अकेली स्त्री को इतने सारे सामान के साथ ट्रेन पर चढ़ते देखकर उसकी मदद करनी चाहिए या अपनी सीट पर टाँग पसारे इस तरह का बेहूदा सवाल पूछना चाहिए!' उसी समय फट से लाइट जलाकर वह उठ बैठा। सुजाता ने मुड़कर देखा, लगभग छह फ़ुट लंबा एक ताम्रवर्णी विदेशी उठकर अपनी सीट के सामने खड़ा है। वह इस तरह सीधा तनकर खड़ा था कि यह समझना मुश्किल हो गया कि वह एक वयस्क आदमी है। लेकिन उसके चेहरे पर मकड़ी के जाले की तरह झुर्रियों को देखकर उसे लगा कि वह कम-से-कम अस्सी-पचासी वर्ष का होगा।

सुजाता को बड़ा आश्चर्य हुआ कि एक विदेशी इस तरह की गँवई हिंदी कैसे बोल लेता है? वह उत्तर प्रदेश के पहाड़ी अंचल में रहनेवाले लोगों को इस तरह की भाषा में बोलते-बतियाते सुन चुकी है। एक बार उसकी ओर देखकर वह सोने के लिए अपनी चादर वग़ैरह ठीक से बिछाने लगी।

वह स्लीपर पहनकर शायद बाथरूम की ओर चला गया। लगभग पंद्रह मिनट बाद वापस आने पर उसने दोबारा पूछा, "आपके हाथ में चूड़ियाँ हैं, माँग में सिंदूर है, आप सुहागिन हो। जो छोड़कर गया, वह आपका मरद नहीं था क्या?"

घृणा से सुजाता का शरीर थरथरा उठा। ऐसा अशिष्ट आदमी उसने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था। कोई सोच भी नहीं सकता कि एक विदेशी पुरुष किसी अनजान महिला से इस प्रकार का व्यक्तिगत प्रश्न कैसे कर सकता है! सुजाता ने अत्यंत विरक्त भाव से अंग्रेज़ी में कहा कि उसके बारे में इतनी सारी जानकारी की उसे क्या ज़रूरत है? उसे वह इस तरह तंग न करे, तो अच्छा होगा।

भानजा सुख-सुविधा में पला-बढ़ा है। किसी चीज़ की कभी कोई दिक़्क़त नहीं रही। बचपन से ही उसे खाने-पीने का शौक़ रहा है। मिठाई हो तो फिर क्या कहना? उस पर सॉफ़्टवेयर इंजीनियर। दिन-रात कंप्यूटर के सामने बैठे रहना पड़ता है। मोटी पगार और उस पर पत्नी भी सर्विस में। अब तक कोई बाल-बच्चा भी नहीं हुआ है। वक़्त मिलते ही किसी अच्छे होटल-रेस्तराँ में जाकर खाना उसे बड़ा अच्छा लगता है। यही वजह है कि तीस वर्ष की उम्र में ही वह शरीर से काफ़ी भारी-भरकम लगता है।

सुजाता हमेशा संयम-नियम से रही है। खाने-पीने में काफ़ी सावधान। प्रतिदिन योगासन-प्राणायाम। इसलिए वह अपेक्षाकृत अधिक दुबली-पतली दिखती है। शायद यही कारण है कि उस हल्के-अँधेरे में उसके भानजे को देखकर उस विदेशी ने ऐसा सोचा होगा! सुजाता को लगा कि इन विदेशियों में संस्कृति-सभ्यता नाम की कोई चीज़ नहीं होती। वे केवल एक ही रिश्ता जानते हैं—पुरुष और स्त्री। यह क्यों नहीं सोच सका कि वह भाई होगा, बहनोई होगा या फिर और कोई स्वजन या मित्र होगा। छिः छिः यह 'मरद' शब्द सुनकर कैसा तो लगता है! इस तकलीफ़देह शब्द के कारण सुजाता रात भर सो नहीं पाई। चार बर्थों में से दो ख़ाली थीं। वे दोनों नीचे के बर्थ पर आमने-सामने थे। पर्दा खींच देने से बाहर से उनका कोई संपर्क नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दो-तीन बार उठ-उठकर पानी पीने के बाद उसे कब नींद आ गई, वह नहीं जानती। अचानक चायवाले की आवाज़ सुनकर नींद खुली। उसने उठकर घड़ी देखी। आठ बज गए थे। उसका सहयात्री प्लास्टिक के गिलास में आराम से चाय की चुस्की ले रहा था। ख़ालिस साहेब की तरह लगनेवाले उस व्यक्ति का रंग-ढंग देखकर यही लग रहा था कि वह इस प्रकार की रेलयात्रा करनेवाला एक अभ्यस्त यात्री है। सुजाता को उसे देखकर थोड़ी हैरानी हुई।

बिस्तर से उठकर सुजाता हाथ-मुँह धोने के लिए चली गई। वहाँ से लौटने पर उसने देखा कि वह विदेशी उसकी ओर चाय का गिलास बढ़ाते हुए कह रहा था, ''लो चाय पी लो!'' सुबह की रोशनी में उसकी उम्र का सही अंदाज़ लगाकर सुजाता थोड़ी नरम हुई और मना करने के बजाय चाय का गिलास थाम लिया।

बूढ़े ने कहा, ''तुम्हे आने में देर होती इसलिए मैंने चाय लेकर तुम्हारे लिए रख ली। इसके बाद चाय नहीं मिलेगी। साढ़े आठ बज गए हैं।'' रात को उसके साथ किए गए बर्ताव के लिए सुजाता मन-ही-मन शर्मिंदगी महसूस करने लगी। नाना-दादा की उम्र के बुजुर्ग व्यक्ति के ऊपर इस प्रकार नाराज़ होना उचित नहीं था। उसे अपने अत्यंत नीतिपरायण एवं नियम पर चलनेवाले दादा की याद आ गई, जो मृत्युपर्यंत बहुत-सी बातें समझ नहीं पाते थे। हमेशा इधर-उधर की बातें करते रहते थे।

दादा की याद आते ही सुजाता का मन उदास हो गया। वह खिड़की के बाहर देखते हुए अन्यमनस्क होकर चाय पीने लगी। वातानुकूलित डिब्बे से बाहर के प्राकृतिक दृश्यों को देखने में कोई विशेष मज़ा नहीं मिलता। बस ऐसे ही देखे जा रही थी कि बूढ़े ने फिर पूछा, ''तुम कहाँ जा रही हो ? तुम्हारी आँखों एवं काले-काले लंबे बालों को देखकर तो यही लगता है कि तुम पूर्वी भारत की रहनेवाली हो। वहाँ के लोग मछली बहुत खाते हैं। इसीलिए उनकी आँखें मछली की तरह तिरछी होती हैं। उस इलाक़े के ठंडे मौसम के चलते उनके बाल लंबे और घुँघराले होते हैं। इसीलिए वहाँ की औरतें लंबी-लंबी चोटियाँ बाँधती हैं।''

बूढ़े की बातें सुनकर सुजाता दोबारा हैरान हो गई। उसके अंग्रेज़ी उच्चारण से लग रहा था कि वह खाँटी अंग्रेज़ है। बूढ़े को जब पता चला कि सुजाता अंग्रेज़ी जानती है तो उसने फिर हिंदी में बातचीत नहीं की। जो भी हो, इतने उम्रदराज़ आदमी को अपनी आँखों और बालों के बारे में बातचीत करना सुजाता को अच्छा नहीं लगा। इस बार वह भी अपनी जिज्ञासा को रोक नहीं पाई। उसकी ओर मुख़ातिब होकर पूछा, ''आप भारतीयों के बारे में इतनी बातें कैसे जानते हैं ? आप इतनी अच्छी हिंदी कैसे बोल लेते हैं ? क्या आप हिंदुस्तान में ही रहते हैं ? कहाँ जा रहे हैं ?''

बूढ़े के झुर्रीदार चेहरे पर हल्की मुस्कान फैल गई। उसने कहा, ''मेरा ऐसा भाग्य कहाँ है कि तुम्हारे इस महान देश में रहने का सौभाग्य पाऊँ! फिर भी, मैं अपने आपको भाग्यवान मानता हूँ। क्योंकि जीवन के कुछ आरंभिक वर्षों तक यहाँ रहने का सुयोग मिला है। मेरे पिता जी बहुत दिनों तक ब्रिटिश इंडिया में काम करते थे। वे भारतीय सेना में डॉक्टर थे। रिटायर होने के बाद कुछ दिन तक मेरठ में डॉक्टरी करते रहे। उन्होंने बहुत कमाया। और मैं था अपने माँ-बाप का इकलौता बेटा। अचानक माँ के मरने के बाद पिताजी दुःखी मन से सब कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छोड़-छाड़कर देहरादून के अपने मकान में चले गए। वहाँ हमारी काफ़ी ज़मीन-जायदाद थी, बाग़-बग़ीचे थे। एक बड़े-से अहाते के भीतर हमारा आलीशान मकान था। जब तक माँ थी, पिताजी कभी-कभार अपने संगी-साथियों के साथ देहरादून वाले बँगले में आते थे और कुछ दिन मौज-मस्ती कर लौट जाते थे। उस समय अंग्रेज़ों के बीच हमारे फ़ार्म हाउस की पार्टी बड़ी मशहूर थी। उन सबके बारे में जब सोचता हूँ तो लगता है वे किसी और जन्म की बातें होंगी। मेरे पिता कर्नल रोनाल्ड मैक्कार्थी सचमुच राजा की तरह रहते थे। माँ के गुज़र जाने के बाद उनके जीने का ढंग बदल गया। ग़रीब पहाड़ी लोगों की सेवा करना ही उन्होंने अपने जीवन का मूल उद्देश्य बना लिया। बात-बात पर वे काफ़ी दान-पुण्य करने लगे। उस समय मैं लगभग पंद्रह वर्ष का था। मेरा बचपन पहाड़ी लोगों के साथ देहरादून के नयनाभिराम पर्वतांचलों, सुरम्य जंगलों और नदी-झरनों के बीच बीता है। मेरी पढ़ाई-लिखाई भी वहीं हुई है। सेवा-टहल करनेवाले नौकर-चाकर, क़ीमती गाड़ी, घोड़े-हाथी पर बैठकर शिकार पर जाने का राजसी ठाठ-बाट! क्या नहीं था मेरे पास? मैंने अपने इस जीवन में क्या-क्या नहीं उपभोग किया तुम्हारे इस बेहद सुंदर देश में! उसके बाद अचानक एक दिन मेरे जीवन में दुर्दिन का क़हर टूटा! और सब कुछ लुटाकर पिताजी मुझे अकेला छोड़कर स्वर्ग सिधार गए! उस समय तक भारत स्वाधीन हो चुका था। शेष सभी ज़मीन-जायदाद, घर-द्वार जैसे-तैसे बेच-बाचकर हमलोग अपने पूर्वजों के देश स्कॉटलैंड लौट गए। शुरू में आरामतलब ज़िंदगी बिताने के कारण मैं अपने कार्यक्षेत्र में कोई विशेष उन्नति नहीं कर पाया। पिताजी के गुज़रने के बाद मैं एक छोटी-सी नौकरी पाकर ऑस्ट्रेलिया चला गया। तब से मैं ऑस्ट्रेलिया में ही रहता हूँ। वहाँ मुझे सरकार की ओर से हर माह वार्धक्य भत्ता मिलता है, जो भारतीय मुद्रा में लगभग बीस हज़ार रुपये के बराबर होगा। किसी तरह जी लेता हूँ। वहाँ रहकर भी मैं तुम्हारे इस ख़ूबसूरत देश को कभी भूल नहीं पाया। दो-तीन वर्षों के बाद जब मेरे पास कुछ पैसे जमा हो जाते हैं, मैं इंडिया आ जाता हूँ। हमारे परिवार के कई बुजुर्ग लोग अपने बाल-बच्चों के साथ अब भी मेरठ और देहरादून में रहते हैं। वे लोग मुझे बहुत प्यार करते हैं। उनके साथ कुछ दिन रहना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। मेरे पिताजी को भी घूमने-फिरने का बड़ा शौक़ था। अपने व्यस्त जीवन से कुछ समय निकालकर वे भारत-भ्रमण के लिए निकल पड़ते थे। उनके साथ मैं भी इस महान देश का भ्रमण इस छोर से उस छोर तक कई बार कर चुका हूँ। आज भी मेरे मस्तिष्क में वे सारी स्मृतियाँ जीवित हैं। अभी मैं कलकत्ता जा रहा हूँ, वहाँ से दार्जिलिंग जाऊँगा।'' इतना कहकर उसने अपनी ओर इशारा करते हुए कहा, ''मेरा नाम हैरी है, क्या तुम्हारा नाम जान सकता हूँ?''

सुजाता ने अपना नाम बताते हुए हाथ जोड़कर नमस्कार किया। शायद बूढ़े का मन हताश हो गया। उसने हँसते हुए कहा, ''तुम भारतीयों में यही एक दोष है, तुमलोग अब भी कछुए के खोल में रहने के आदी हो—संकोच और परंपरा में बँधी। तुम लोगों को जीवन जीने का तरीक़ा नहीं आता। जीवन का उपभोग कैसे किया जाता है, इसका ज्ञान नहीं है। लाज और संकोच के चलते जीवन की कई ख़ूबसूरत अनुभूतियों से तुम लोग वंचित रह जाते हो। अंग्रेज़ों

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh. Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ने इतने वर्षों तक भारत पर शासन किया लेकिन वे तुम लोगों को सभ्यता और संस्कृति नहीं सिखा पाए।''

सुजाता ने मंत्रमुग्ध होकर वृद्ध व्यक्ति की सारी बातें सुनीं। एक बुजुर्ग विदेशी के हृदय में भारत प्रेम को देखकर उसकी आत्मा अभिभूत हो उठी। कारण जो भी रहा हो, विदेशी लोग भारतीयों को अकसर हेय दृष्टि से ही देखते रहे हैं। सुजाता ने अब तक यही जाना-सुना है। एक बार अमरीकी देशों के दौरे पर गई थी सुजाता। वहाँ के लोगों के दुर्व्यवहार से उसकी यह धारणा बनी थी। जो भी हो, वृद्ध व्यक्ति की बातें सुनने के बाद सुजाता का हृदय उसके प्रति कोमल भाव से भर गया।

उसकी परवर्ती टिप्पणी पर अपनी प्रतिक्रिया ज़ाहिर न करते हुए सुजाता मन-ही-मन मुस्कुराई। वह एक विदेशी को भारतीय लाज और संकोचपूर्ण रूढ़ियों के बारे में क्या समझाए! वह क्या समझ पाएगा कि उनकी तथाकथित उदार सभ्यता ने उन्हें जीवन की किन-किन सुखद अनुभूतियों से वंचित किया है?

''आप अकेले इतनी लंबी यात्रा करते हैं, क्या आपकी पत्नी और आपके परिवार के लोग आपके साथ नहीं हैं?'' सुजाता ने पूछा।

''हाँ, मैंने ऑस्ट्रेलिया में विवाह ज़रूर किया था। लेकिन मेरा वैवाहिक जीवन दस वर्ष से अधिक नहीं चल पाया। उससे एक बेटा भी हुआ था, फिर भी वह मुझसे तलाक़ लेकर अब पेरिस में रहती है। वहाँ उसने एक फ्रेंच चित्रकार के साथ शादी कर ली है। बड़ा बेटा अपने परिवार के साथ कनाडा में रहता है। कभी-कभार चिट्ठी आती है।'' बूढ़े ने उदास मन से बताया।

थोड़ी देर पहले जो अपनी सभ्यता और संस्कृति का बखान गर्व के साथ कर रहा था, उसकी कहानी सुनकर सुजाता हतप्रभ हो गई। उस निस्संग वृद्ध व्यक्ति के लिए उसका हृदय करुणा से उद्वेलित हो उठा। उसे एक बार फिर अपने स्नेहिल दादा की याद आ गई।

सुजाता अपने अतीत में कुछ देर के लिए खो गई। उसके दादा संस्कृत के प्रख्यात पंडित थे। हालाँकि एक स्कूल में साधारण शिक्षक थे, लेकिन अपनी योग्यता एवं ज्ञान के चलते ढेर सारी पुस्तकें लिखकर तथा यज्ञानुष्ठानों में पुरोधा बनकर उन्होंने अपने जीवन में काफ़ी कमाया था। नहीं चाहने पर भी लोग उन्हें उपहार से लाद दिया करते थे। उनके दो बेटों और एक बेटी में सुजाता के पिताजी बड़े प्रसिद्ध नेत्र विशेषज्ञ थे। चाचा दिल्ली में इंजीनियर, फूफा उत्कल विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर। फ़िलहाल अवकाश प्राप्त जीवन जी रहे हैं। भरा-पूरा परिवार। सभी योग्य, किंतु सभी को कुछ-न-कुछ परेशानी। ऐसे में उनके पिता दिवाकर महापात्र को थोड़ी-बहुत चिन्ता कैसे न होती! दादी के दिवंगत होने के बाद दादा पंद्रह वर्ष जीवित रहे। जीवन के अंतिम समय में वे पूजा-पाठ पर बहुत अधिक ध्यान देने लगे थे, एक प्रकार से संसार से विलग ही हो गए थे। गेरुआ रंग का लंबा रेशमी वस्त्र धारण कर, चंदन, रोली आदि से सुगंधित होकर जब दादा पूजाघर से निकलते तो सबसे बड़ी पोती सुजाता से लेकर सबसे छोटे पोते बिट्टुन तक याचक की तरह हाथ फैलाए इंतज़ार करते रहते कि वे कब प्रसाद पाएँगे। माँ-बाप के मना करने पर भी कोई सुनने के लिए तैयार नहीं। दादा थोड़ा-सा चूड़ा भूँजा के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

साथ छेना, केला और गुड़ आदि अच्छी तरह मिलाकर सबकी हथेलियों पर थोड़ा-थोड़ा रख देते। उसके बाद वे स्वयं खाते। तुलसी दल मिला वह प्रसाद उन्हें अमृत के समान लगता था। आज भी दादा की देह की, उनके पूजाघर की, उनके चूड़ामिश्रित प्रसाद की सुगंध इतने वर्षों की दूरियों को लाँघकर उसके पास आ जाती है। सुजाता की आँखें डबडबा उठीं। कितने दिन बीत गए उनके देहावसान के, किंतु उनकी स्मृति अभी तक ज्यों-की-त्यों है। सुजाता की प्रथम संतान को दादा जी देखकर गए थे, इस भावनात्मक पल को वह कभी नहीं बिसरा पाती।

आख़िरी अवस्था में दादा जी का दिमाग़ ठीक से काम नहीं करता था। गले का कैंसर हो गया था। सुजाता के माँ-पिताजी और उनका सारा परिवार दादा जी की सेवा में लगे रहते थे। उन लोगों का यह सेवा भाव देखकर सुजाता आश्चर्यचकित रह जाती थी। किसी के चेहरे पर कभी कोई शिकन नहीं। अनेक बार दादा जी खाना उठाकर फेंक देते थे। केवल ग़ुस्सा करते, बच्चों की तरह ज़िद करने लगते। इतना होते हुए भी सुजाता के माता-पिता, चाचा-चाची, बुआ और उनके बच्चे मन लगाकर निरंतर सेवा-सुश्रूषा करते रहते थे। ऐसा लगता जैसे उनकी एकमात्र आकांक्षा थी दादा जी-जैसे अमूल्य इंसान को कभी भी अपने से दूर नहीं जाने देंगे, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने देंगे!

आख़िर जब वह हृदय-विदारक मुहूर्त आ पहुँचा, तो सारा परिवार शोकमग्न हो उठा, एक मर्माहत वेदना से सभी स्तब्ध रह गए। आज एक बार फिर वह दृश्य सुजाता की आँखों में कौंध गया। कितनी महिमामंडित मृत्यु! कैसी आत्मीय विदाई!

सुजाता ने उदास मन से सामने बैठ उस बूढ़े विदेशी को देखा—ओह, कितना दुखी और निस्संग है यह बूढ़ा! मानो वह स्वयं उस सभ्यता और संस्कृति का प्रतीक हो, जो स्वजनों को बेहिचक त्याग देना सिखाती है। यह कैसी सभ्यता है, जिसमें गुरुजनों एवं असमर्थ वृद्धजनों के लिए श्रद्धा का बिलकुल अभाव हो! जिस उम्र में आदमी को एक शांत निरापद घर के कोने में अपने बाल-बच्चों के साथ रहकर भगवान का नाम लेने की ज़रूरत होनी चाहिए, उस अवस्था में उसे अपने अतीत की सुखद स्मृतियों को ढूँढ़ने के लिए सुदूर ऑस्ट्रेलिया से यहाँ आकर इधर-से-उधर भटकना पड़ रहा है और उस पर भी वह कहता है, ''तुम लोग जीवन का अर्थ नहीं समझते!''

सुजाता ने धीरे-से पूछा, ''आप तो अकेले रहते हैं। ज़रूरत पड़ने पर आपकी देखभाल कौन करता है? घर का कामधाम कौन करता है और जब आप बीमार पड़ते हैं तो आपकी सेवा कौन करता है?''

''वाह, इसे कहते हैं भारतीय मनोवृत्ति! मेरी सेवा करने की क्या ज़रूरत है? मैं तो अभी तक तंदुरुस्त हूँ। लेकिन कभी-कभी सभी काम ख़ुद अपने हाथों करने में तकलीफ़ ज़रूर होती है। इंडिया में ढेरों नौकर-चाकर के ऊपर निर्भर रहकर बचपन बिताने के कारण आज तक मुझमें आत्मनिर्भरता नहीं आई। ऑस्ट्रेलिया में अधिकांश लोग अपने हाथों ईंट तैयार करके और सीमेंट से जोड़कर अपना घर ख़ुद बनाते हैं। अपने हाथों लकड़ी का काम करके छत तैयार करते हैं। वहाँ रोज़मर्रा के काम के लिए कोई आदमी नहीं मिलता। सब कुछ स्वयं करना पड़ता है। इसके अलावा मेरे पास न तो उतनी संपत्ति है और न जमा-पूँजी वरना मैं रेल से यात्रा करता? हवाई जहाज़ से नहीं जाता?'' वृद्ध व्यक्ति ने 'हो-हो' कर हँसते हुए कहा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसी प्रकार बातचीत करते-करते और पुस्तक-पत्रिका पढ़ते दिन कट गया। रात के आठ बज गए। अटेंडेंट बूढ़े का डिनर पैकेट लेकर आ गया। सुजाता ने आदित्य की पत्नी का दिया हुआ छोटा-सा टिफ़िन बॉक्स खोला, बैग से फल वग़ैरह निकाले और खा-पीकर सोने का इंतज़ाम करना शुरू किया। पिछली रात को ठीक से नींद भी पूरी नहीं हुई थी। सारा दिन सामने के बर्थ पर बैठे उस बूढ़े की खोजी दृष्टि के आगे वह ठीक से झपकी भी नहीं ले पाई थी। उसी की बातें सोचते-सोचते उसे कब नींद आ गई, वह जान भी नहीं पाई।

भोर में उसकी नींद खुल गई। पाँच बज गए थे। कुछ ही देर में गाड़ी कटक पहुँचेगी। इसलिए हड़बड़ाकर उठी और सीट के नीचे से सामान खींच-खींचकर बाहर करने में जुटी ही थी कि वृद्ध व्यक्ति ने कहा, ''गाड़ी एक घंटा लेट चल रही है, हड़बड़ी मत करो! मैं तुम्हें नीचे उतरने में मदद कर दूँगा।''

सुजाता ने बूढ़े को धन्यवाद देकर केबिन के अटेंडेंट से पता लगाया कि और पंद्रह मिनट में भुवनेश्वर आ जाएगा। तब तक वह भी उठ चुका था। उसके कारण ही उस वृद्ध व्यक्ति को इतनी जल्दी उठना पड़ा, यह सोचकर सुजाता को अच्छा नहीं लगा।

तभी उसकी आवाज़ सुनाई पड़ी, ''अच्छा सुजाता, इंडिया में तो अनेक युवतियाँ और अधेड़ औरतें किसी-न-किसी कारण से अपने से अधिक उम्र वाले पुरुष से ब्याह करती हैं। तुम्हारी जान-पहचान में कोई ऐसी महिला है, जो स्वस्थ-समर्थ हो, मध्यवयसी हो और उस पर किसी का कोई बंधन नहीं हो? थोड़ी पढ़ी-लिखी हो तो अच्छा! अगर वह चाहेगी तो मैं उससे विवाह भी कर लूँगा। बस वह केवल मेरे साथ ऑस्ट्रेलिया में रहने के लिए तैयार हो जाए। अकेला रहना अब और अच्छा नहीं लगता। मेरे निकटतम पड़ोसी का घर मेरे घर से कम-से-कम एक मील की दूरी पर है। मर जाने पर भी किसी के पास होने की उम्मीद नहीं है!''

सुजाता के हैरानीभरे मुँह को देखकर वह बोल उठा, ''मैं जितना बूढ़ा दिखता हूँ, दरअसल उतना बूढ़ा नहीं हूँ। तुम्हारी तरह की किसी रमणी को मैं सब प्रकार का सुख देने में अब भी समर्थ हूँ। मैं अपना शेष जीवन एक विश्वस्त भारतीय नारी के साथ बिताना चाहता हूँ। सुनसान घर में लौटने की इच्छा नहीं होती!''

सुजाता आश्चर्यचकित होकर सोचने लगी, थोड़ी देर पहले जो भारतीय मनोवृत्ति की इतनी आलोचना कर रहा था, उसी को एकाकीपन से इतना दुःख क्यों महसूस होने लगा है? इतने सभ्य एवं समृद्ध देश में रहनेवाले लोगों को भी निरापद होने की आशंका क्यों? सुजाता ने अपने आपको संयत कर उस वृद्ध व्यक्ति से पूछा, ''मिस्टर मैक्कार्थी! आप किसी स्थानीय समवयस्क महिला को अपने साथ रहने के लिए क्यों नहीं खोज लेते? कम पढ़ी-लिखी कोई भारतीय नारी विदेश जाकर आपके साथ क़दम-से-क़दम मिलाकर कैसे चल पाएगी?''

सुजाता के मन में आ रहा था कि वह पूछे, 'आपके बाद वहाँ उस विदेश में क्या करेगी वह अकेली औरत?' लेकिन किसी वृद्ध व्यक्ति को आसन्न मृत्यु का अहसास हो, यह उसे उचित नहीं लगा। ऐसी कठोर बात कहने के लिए उसके मुँह से बोल ही नहीं फूटे।

मिस्टर मैक्कार्थी ने कहा, ''मैंने देखा है कि थोड़ी-सी मदद कर देने पर भी भारतीय महिला अपना स्वार्थ त्याग कर सबकुछ समर्पित करने के लिए तैयार हो जाती है। क्या वैसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही कोई असहाय नारी मेरे नसीब में नहीं मिलेगी ? मैं उसे हर प्रकार से सुखी रखूँगा। वह मेरे साथ मेरी सहचरी होकर रहेगी। कोई असुविधा नहीं होगी। मैं तुम्हारे देश की महिलाओं को अच्छी तरह जानता हूँ। कोई भी ऑस्ट्रेलियन औरत मुझ-जैसे बूढ़े को क्यों ग्रहण करेगी ? वे लोग बहुत मतलबी होती हैं। प्लीज़ सुजाता, मेरा पता नोट कर लो! मुझे पता है तुम बड़ी दयालु हो! इस सहयात्री के लिए अगर तुम एक सहचरी का जुगाड़ कर दोगी तो मैं हमेशा के लिए तुम्हारा आभारी रहूँगा! लो मेरा कार्ड रखो!''

सुजाता ने हाथ बढ़ाकर कार्ड ले लिया। थोड़ी ही देर में गाड़ी कटक पहुँच गई।

एक युवा की तरह उस बूढ़े व्यक्ति ने फ़ुर्ती से सुजाता का सारा सामान प्लेटफ़ॉर्म पर उतार दिया और जल्दी से डिब्बे में चढ़कर हाथ हिला-हिलाकर विदाई देने लगा कि गाड़ी चल पड़ी और देखते-ही-देखते आँखों से ओझल हो गई।

तब तक सुजाता का बेटा आ गया था। झटपट क़ुली बुलाकर सब सामान के साथ वह प्लेटफ़ॉर्म से बाहर की ओर चल पड़ा। बेटे के पीछे-पीछे जा रही सुजाता ने आकाश की ओर देखते हुए भगवान को अशेष धन्यवाद दिया, जिन्होंने पृथ्वी पर एक ऐसी भी जगह बनाई है, जहाँ उम्र ढलने के बाद किसी को वर-वधू या सहचर-सहचरी खोजने की ज़रूरत नहीं होती। अभी तक अधिकांश बच्चों में अपने बूढ़े माँ-बाप के लिए दया-माया शेष है। हालाँकि आधुनिक समाज में रिश्ते का तेज़ी से ह्रास हो रहा है, फिर भी क्या भारतीय मनोवृत्ति का लोप इतनी जल्दी हो पाएगा ? हज़ार-हज़ार वर्षों की शिक्षा, संस्कृति और संस्कार का कुछ-न-कुछ अंश तो अवश्य बचा रहेगा। सुजाता के मन में आशा की किरणें कौंध गईं। जो देश जल देनेवाली नदी की पूजा करता है, प्राणवायु देनेवाली हवा की आराधना करता है, आलोक प्रदान करनेवाले सूर्य को अर्घ्य चढ़ाता है, उस देश में जन्म देनेवाले माँ-बाप को, सुख-दु:ख में सेवा करने और जीवन भर साहचर्य देनेवाले स्त्री-पुरुष को त्याग देना क्या इतनी सहजता से संभव होगा ? नहीं, कभी नहीं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव में पड़कर थोड़ी-बहुत ऐसी घटनाएँ नहीं घटती हों या आगे भी नहीं घटेंगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

सुजाता ऐसे देश में जन्म लेकर अपने आपको धन्य मानती रही। उसने स्नेहसिक्त नज़रों से आगे-आगे जा रहे अपने बेटे को देखा। नहीं, इस विदेशी की तरह उसे कभी निराश नहीं होना पड़ेगा; रिश्ते का यह मधुर अहसास कभी नहीं मरेगा। उसके भीतर पुरखों की शिक्षा, संस्कृति की जो धारा सदियों से बहती चली आ रही है, आगे भी उसी प्रकार प्रवाहित होती रहेगी—नौनिहालों में, किशोरों में, युवा पीढ़ियों में, वयस्कों में। उसके जीवन का एक पल, यहाँ तक कि बुढ़ापा भी तिरस्कृत नहीं होगा, इसका उसे पूरा विश्वास है।

वह मन-ही-मन बुदबुदा उठी, 'हे ईश्वर! उसे हर जन्म में ऐसी ही सुरक्षा मिलती रहे। उसे समृद्ध, सुसंपन्न तथा आरामप्रद देश में जन्म लेने और ऐश्वर्यमय जीवन जीने की कोई आकांक्षा नहीं है। उसे तो बस इतनी-सी चाह है कि भारतीय परंपरा, संस्कृति और सभ्यता की सुशीतल छाया जन्म-जन्मांतर तक इसी प्रकार मिलती रहे!'

निस्संग बूढ़े की याद आते ही उसका हृदय करुणा से भर गया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

नेपाली

देव भंडारी

सौदा

देवीमाया हमेशा हाट में सौदा करने जाती है। थोड़ा-बहुत चावल, थोड़ा-सा आटा, नमक, भूसा, मसाला आदि और गायों के लिए खली...और कई चीज़ें। भौंहें सिकोड़कर अन्य चीज़ें याद करने की कोशिश करती है। उसे लगता है और भी कई चीजें हैं जिनके लिए हाट जाना पड़ेगा। सोचती है, लेकिन ठीक से कुछ याद नहीं आता। हमेशा बाज़ार जाते समय उसे ऐसा ही होता है, लगता है बाज़ार जाने के पीछे कोई ख़ास मक़सद है ही नहीं। केवल घरेलू चीज़ें ख़रीदने के लिए वह बाज़ार नहीं जाती है। घर की चीज़ें तो ननद भी ले आती है, लेकिन फिर भी उसे लगता है कि हाट के दिन उसे बाज़ार जाना ही होगा। बाज़ार पहुँचकर भी वह असमंजस में पड़ जाती है और सौदा करने लगती है। किसी अज्ञात वस्तु की चाह है उसके अंतर्मन में। लेकिन मन की अज्ञात परत में छुपी वस्तु की चाह उसकी स्मृति में नहीं आती। गृहस्थी के भार में बहुत कुछ दब गया, लेकिन वह भूल नहीं सकी है कई बातें। बाज़ार जाना, घूम-घूमकर चीज़ें ख़रीदना, ले जाकर गाड़ी में रखना, घर पहुँचकर गाड़ी से उतारकर घर के अंदर ले जाना, चीज़ें ठीक जगह पर रखना—वह सदा से ऐसा ही करती आई है। कभी-कभी बीमार होती है या घनघोर बारिश होती है तो बाज़ार नहीं जा पाती है, वरना कालेबुङ हाट जाती ही है।

शनिवार का हाट है, ख़ूब भीड़ होती है हाट में। भीड़ में इधर-उधर चक्कर लगाकर सौदा करना पड़ता है। दशहरे का अवसर होने के कारण भीड़ भी बढ़ गई है। रामायण भैया की दुकान में भीड़ वैसी ही है। सौदा करने के बाद चीज़ों को गाड़ी में रखने के बाद धनिकलाल की मिठाई की दुकान में खाजा खाना उसका हमेशा का

जन्म : 1949 ई.। नेपाली में चार उपन्यास और दो कहानी-संग्रह प्रकाशित। संपर्क : एच.एल. दीक्षित रोड, बम बस्ती, कालिंपोङ्ग ज़िला दार्जीलिंग 734301; मो. 08101181053

अनु. **बिर्ख खडका डुवर्सेली**। जन्म : 1954। नेपाली-हिंदी में लेखन एवं परस्पर अनुवाद। संपर्क : 'आमा' खडकालय, दुर्गागढ़ी, प्रधान नगर, दार्जीलिंग 734003; मो. 09749052857

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काम है। मिठाई की दुकान में प्याज़ी, आलू चाप, सिंघाड़ा, पकौड़ी और, और भी कुछ तला जा रहा है।

"भइया, गरम सिंघाड़ा देना!" प्रसन्नचित्त देवीमाया ख़ाली जगह देखकर दीवार से लगी कुर्सी पर बैठते हुए बोली।

सिंघाड़ा प्लेट में लाकर आगे रखते हुए लड़के ने पूछा, "और कुछ लाऊँ? प्याज़ी, चाप, पकौड़ी... ?"

"और कुछ नहीं चाहिए, चाय लाओ!" चम्मच से गरम सिंघाड़ा काटते हुए बोली देवीमाया।

सिंघाड़े का एक टुकड़ा मुँह में डालकर जल्दबाज़ी में निगलते हुए बोली, "कितना गरम है, लगता है आग में पकाया गया है!"

"अच्छा, आग में पकाया गया है? मैं भी खा लूँ?" आगे की ख़ाली बेंच पर बैठते हुए एक आदमी ने कहा। शर्म छुपाने के लिए वह मुस्कुरा दी, उस अपरिचित आदमी को देखकर। उसे लगा कि उसे पहले कहीं देखा है। वह आदमी मुस्कुराता हुआ देखता रहा देवीमाया को। उसे उस आदमी का इस तरह देखना अच्छा नहीं लगा।

"कैसा है सिंघाड़ा?" परिचित-सा बनकर पूछा उस आदमी ने। "गरम, तीखा और कैसा होगा!" एकाएक बोली देवीमाया। फिर कुछ पहचानने की कोशिश करते हुए उसे एक बार ध्यान से देखा।

"आपको पहचाना नहीं मैंने!" रुखाई से कहा देवीमाया ने।

"मैंने तो आपको पहचान लिया, पहचानकर ही आपके नज़दीक बैठा हूँ...।" बेशरम की तरह बोला वह आदमी।

"कौन हैं आप?"

"किरण खड़का...नाम का कोई था?" रहस्यमय सूरत बनाकर बोला वह आदमी।

"किरण...हाँ...हाँ...किरण सोल्टी?" हैरानी से पूछा देवीमाया ने।

"तो और कौन हूँ! मैंने तो आपको पहचान लिया।"

"आश्चर्य!" उस आदमी को ध्यान से देखते हुए बोली देवीमाया, "वह पहले का किरण सोल्टी कहाँ है? ऐसा ज़बरदस्त तंदुरुस्त मूँछवाला!" कहते हुए उठी और झुककर ढोंग किया। उसने भी शिष्टाचारपूर्वक ढोंग स्वीकार किया।

"कहाँ खो गए थे इतने सालों तक... ?"

"पल्टन में हूँ, अभी कश्मीर के नौशेरा में हूँ।"

"कितने बरस हो गए पल्टन में गए?"

"दस बरस।"

—क्या आदमी ऐसा होता है! मतलबी...केवल अपने बारे में सोचने वाला! क्या कहा था, याद है, कहाँ होगी याद! उसने सोचा।

"सचमुच, सोल्टिनी (भाभी की बहन)! आप ग़ुस्सा मत कीजिए, मैं तो अचानक पल्टन में चला गया...दो साल तक छुट्टी नहीं मिली। आप से भी एक ही दिन तो मुलाक़ात हुई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थी। पल्टन में भाभी की एक चिट्ठी मिली, लिखा था, देवीमाया की शादी हो गई। सच कहूँ, इसके बाद तो मेरा घर आने का मन ही नहीं हुआ। साल-दो साल बाद आया तो कितना ढूँढ़ा आपको। आपके जैसी सूरत कहीं देखता तो डर जाता था। शादी करके जानेवाली को ढूँढ़ना भी मुसीबत है! लेकिन देखने का मन था।''

लड़का किरण के आगे चाप-सिंघाड़ा रख गया।

''मैंने गीता दीदी को कई बार गालियाँ दीं। कहा भी, तुम्हारा देवर महाछली है! दीदी को अच्छा नहीं लगता था। हाँ तो शादी की?''

''नहीं, अभी तक नहीं की है।''

''क्यों नहीं की?''

''जो पसंद थी, नहीं मिली, और किससे करूँ?''

''मैंने आख़िरी दिन तक प्रतीक्षा की, कहीं आ तो नहीं जाएँगे। लेकिन क्या करूँ, बेटी हूँ। मुँह खोलकर कुछ कहना भी मुश्किल! लाचार होकर सब कुछ सहना पड़ा!''

''लेकिन सोल्टिनी! क्या हुआ है मुझे, मैं ख़ुद नहीं जानता! मुझे इस दुनिया में कोई भी अच्छी नहीं लगती!''

''एक बार मुलाक़ात ही तो हुई थी, और कुछ तो नहीं हुआ था।''

''कैसे हैं सब घर में?''

''चल रहा है। कितने दिनों की छुट्टी में आए हैं?''

''एक महीने की। बीस दिन हैं।''

''शादी करके जाना।''

''इतने वर्षों तक नहीं की, अब क्यों करूँ?''

''मैं एक बात कहूँ, मानेंगे?''

''कैसी बात?''

''अगर मानेंगे तो कहूँगी।''

''मैंने दिल-जिगर तो दे दिया है, अब मानने-न मानने की बात क्या है मेरे पास?''

''शादी कीजिए, लड़की मैं चुनूँगी, आप अकेले रहेंगे तो मुझे अच्छा नहीं लगेगा!''

''बूढ़ा हो गया हूँ, कौन शादी करेगी मेरे साथ?''

''मर्द बूढ़ा नहीं होता है, पैंतीस की उमर भी कोई उमर है! सचमुच पूछ रही हूँ, शादी करेंगे?''

''मन में एक तसवीर है सदा के लिए, औरों पर मन जाता ही नहीं है।''

''मन में तो है ही, लेकिन होनी अनहोनी हो गई। जिसका जहाँ लिखा है, वहीं शादी होती है, शायद यही सत्य है।''

''तीन बच्चों की माँ बनने के बाद आप तो और सुंदर हो गई हो सोल्टिनी!'' चाय का गिलास हाथ में लेकर देवीमाया को ध्यान से देखते हुए बोला किरण।

''ओह, विश्वास नहीं हुआ! मिली नहीं, इसलिए सुंदर लगी। हाथ न आई मछली हमेशा बड़ी होती है।''

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

''एक बात की मुझे ख़ुशी हुई।''

''किस बात की?''

''मेरी भी याद आती है आपको!''

''क्यों नहीं आती है। अपनी पसंद का मर्द और गले पड़े मर्द में बड़ा अंतर होता है, सोल्टीजी! ऐसा कोई दिन नहीं है, जब मैंने आपको याद न किया हो! बहुत दिनों तक मुझे ऐसा लगता रहा, आप आएँगे और मुझे शादी करके ले जाएँगे। लेकिन अब मैं कह रही हूँ कि आप शादी कर लीजिए, करेंगे न?''

''कोई है?''

''हाँ...मेरी ननद से शादी कर लीजिए! मैं हमेशा देख पाऊँगी आपको। घर में जब आएँगे, अपने हाथों से खाना बनाकर खिला पाऊँगी। मेरी ननद को मुझे समझकर प्यार कीजिए।''

''कैसी है आपकी ननद?''

''सुंदर, मुझसे ज़्यादा सुंदर। आपके साथ जोड़ी मिलेगी। देर मत कीजिए। इन छुट्टियों में ही शादी कर लीजिए। कल-परसों ही आप घरवालों को लेकर माँगने के लिए आ जाइए! इधर सब कुछ मैं मिला लूँगी।''

''तैयार होंगी तो?''

''कहा न, मैं सब कुछ मिला लूँगी, आप आइए तो सही!''

''घर कहाँ है?''

''टैक्सी से सिंदेबुङ् फाटक तक आइए। वहाँ से गैरीगाउँ। वहाँ देवीमाया का घर कौन-सा है, पूछेंगे तो कोई भी बता देगा। आइएगा पक्का! कब आएँगे, कहिए?''

''इसी रविवार को।''

''मैं रास्ता देखूँगी। खाना तैयार करके इंतज़ार करूँगी।''

''आप बुला रही हैं तो आऊँगा ही, क्यों नहीं आऊँगा!''

किरण ने घड़ी देखते हुए कहा, ''मैं अब जाऊँगा सोल्टिनी...देर हुई तो गाड़ी चली जाएगी।''

किरण उठकर चला गया। देवीमाया देखती रह गई। एक अनूठी तृप्ति से उसका चेहरा खिल उठा। मुस्कुराई । बहुत वर्षों से जिसे देखना चाहती थी, उसे देख लिया।

इधर किरण जाकर गाड़ी में बैठा, गाड़ी चलने लगी। वह दुकान से निकली और गाड़ी की ओर देखने लगी। बीच की सीट में बैठने के कारण किरण की सूरत ठीक से नहीं दिखाई दी। थोड़ा आगे बढ़कर देखा, किरण उसी की ओर देख रहा था। दायाँ हाथ उठाकर हिलाया, किरण ने भी हाथ हिलाया। मोड़ पार करने तक देवीमाया गाड़ी को देखती रही।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानी

उर्दू

शीरीं नियाज़ी

छोटी मछली बड़ी मछली

गहरी अँधेरी रात थी। चारों तरफ़ सन्नाटे की दबीज़ चादर तनी हुई थी। दूर उत्तरी कोने पर नीला आकाश जमे हुए रक्त की तरह स्याह और सुर्ख़ नज़र आ रहा था।

परिंदे चीख़-चिल्लाकर, ख़ामोश होकर अपने-अपने घोंसलों में जा दुबके थे। कुत्तों ने भी रोना बंद कर दिया था और कोनों-ख़दरों में अपने-अपने पेट के अंदर मुँह दबाकर बैठ गए थे या सो रहे थे।

ऐसी भयानक रात में एक साया लड़खड़ाता दरिया की तरफ़ चला जा रहा था। उसके कंधे आगे को झुके हुए और जूते फटे हुए...वह अपनी चाल-ढाल से बूढ़ा और कमज़ोर लग रहा था। ऐसे बूढ़े और कमज़ोर आदमी को इतनी रात गए दरिया पर जाने की ज़रूरत क्यों आन पड़ी थी?

शाम ढले जब रेडियो पर यह घोषणा प्रसारित हुई कि 'आज रात भयंकर तूफ़ान आने की आशंका है, इसलिए कोई मल्लाह-मछुआरा दरिया पर न जाए', तो यह सुनकर वह मछलियों के ठेकेदार के यहाँ गया था, यह बताने के लिए कि वह आज उसके लिए मछलियाँ नहीं ला सकेगा। ठेकेदार ने जवाब में उसे डाँट पिलाई थी। क्योंकि उसे अपना नुक़सान किसी भी सूरत में गवारा नहीं था। चाहे किसी की जान जाए या रहे, उसे मतलब था तो सिर्फ़ मछलियों से। जैसे भी हो उसे मछलियों की दरकार होती थी। और इसीलिए उसने बूढ़े मल्लाह को दरिया पर जाने के लिए मजबूर कर दिया था। बूढ़ा जानता था कि अगर वह दरिया पर नहीं गया तो उसे एक पैसा भी नहीं मिलेगा। घर में आटा नहीं होगा तो बच्चियाँ भूख से रोएँगी। वे अभी छोटी हैं और फ़ाक़े करना नहीं जानतीं।

जन्म : 1946। तीन पुस्तकें प्रकाशित। आकाशवाणी से प्रसारित। संपर्क : टीचर्स कॉलोनी, रीवर साइड, भुरकुंडा 829135, ज़िला रामगढ़, झारखंड;
मो. 09234033364.

अनु. : **ज़हीर नियाज़ी**। 'खान रत्न' से सम्मानित। संपर्क : टीचर्स कॉलोनी, रीवर साइड, भुरकुंडा 829135, ज़िला रामगढ़, झारखंड;
मो. 09234033364.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन दिनों ठेकेदार एक नाव मछली के उसे बीस रुपये देता था। जिससे ख़ुद उसका, उसकी पत्नी का और उसकी तीन बेटियों का गुज़ारा चलता था। हालाँकि उसे हर पल यह एहसास सताता रहता था कि ठेकेदार उसके साथ नाइंसाफ़ी करता है। सारी मेहनत तो मल्लाह की, मुफ़्त की कमाई ठेकेदार की। भयानक तूफ़ानों में लहरों के थपेड़े सह-सहकर वह उसके लिए मछलियाँ पकड़ता है, उसमें से एक मछली भी अपनी बेटियों के लिए घर नहीं लाता। बड़ी ईमानदारी से पूरी नाव उसके हवाले कर देता है।

मगर ठेकेदार बड़ी मछली था। और बड़ी मछलियाँ हमेशा से छोटी मछलियों को निगलती आई हैं। यह एक अटल सच्चाई थी और इस सच्चाई से आँखें चुराना उसके बस का नहीं था।

जब वह अपने घर में दाख़िल हुआ तो अँधेरा फैल चुका था। उसकी तीनों बेटियाँ लैंप की धीमी रोशनी में कुछ पढ़ रही थीं—एक ही धुँधला-धुँधला-सा लैंप उन तीनों के बीच में था, जो तीनों को हल्की-हल्की रोशनी पहुँचा रहा था। यह देखकर उसे ख़याल आया कि मैं भी इसी लैंप की मानिंद हूँ जो अपने अंदर पड़े तेल की आख़िरी बूँद तक रोशनी देता रहता है और यह मेरा कर्तव्य है कि अंतिम साँस तक इन सबकी ज़िम्मेदारियाँ निभाता रहूँ।

ठीक उसी समय छोटी बच्ची लपककर उसके पास आ गई और बोली, ''बाबा, आज हमारी टीचर ने हमें एक कहानी सुनाई—छोटी मछली और बड़ी मछली की। टीचर ने बताया कि छोटी मछलियाँ भी इकट्ठी होकर हिम्मत जुटा लें तो अपनी हिफ़ाज़त ख़ुद कर सकती हैं। क्या सचमुच ऐसा हो सकता है बाबा?''

बूढ़े ने अपनी बीवी की ओर देखा, जो चूल्हे से जूझ रही थी। गीली लकड़ियों के धुएँ से उसकी आँखें लाल हो रही थीं। बालों पर तह-दर-तह राख जमती जा रही थी।

''यह सब किताबी बातें हैं, जो तुम्हें तुम्हारी टीचर ने बताई हैं।''

बूढ़े ने कोने में रखा हुआ बड़ा-सा जाल उठाया और आग की कामचलाऊ रोशनी में उसके खुले हुए बंद जोड़ने लगा।

''क्या दरिया पर जा रहे हो?'' बीवी ने चूल्हा फूँकते-फूँकते उससे पूछा।

''जाना तो होगा ही।'' उसने गाँठ बाँधी और खड़ा हो गया।

''मगर आज तो...'' बीवी आधी बात कहकर रुक गई।

''तूफ़ान आनेवाला है, मुझे मालूम है।''

जब वह घर से निकला तो हवा कुछ और तेज़ हो गई थी।

रात के बारह बज चुके थे। बेटियाँ सो चुकी थीं। मगर पत्नी अब भी जाग रही थी।

जब वह आधा रास्ता तय कर चुका तो अचानक हवा के तेज़ झोंके ने उसे कई क़दम पीछे धकेल दिया और वह गिरते-गिरते बचा। उसने ख़ुद को सँभाला और आगे चलने लगा। कुछ ही क़दम चला होगा कि हवा के दूसरे झोंके ने उसे फिर पीछे धकेल दिया। वह कई क़दम पीछे हो गया, 'यह कमबख़्त हवा क्यों मेरे पीछे पड़ गई, क्या बिगाड़ा है मैंने इसका?'

हवा अब कुछ थम गई थी। वह फिर आगे बढ़ने लगा, तभी ज़ोर का कड़ाका हुआ और बिजली की तेज़ रोशनी चमककर चली गई। अब उसके सामने धुएँ के बादल उमड़ आए थे—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बिजली शायद एक पुराने पेड़ पर गिरी थी, जिसकी शाख़ों से धुआँ उठ रहा था। देखते-ही-देखते वह पुराना पेड़ ज़मीन पर गिर पड़ा। बूढ़ा मछुआरा सहमकर एक ओर खड़ा हो गया। पेड़ उससे कुछ ही, बस ज़रा-सी दूरी पर गिरा था। यह पेड़ बहुत पुराना था, पर बेहद मज़बूत! इसकी ताक़त के आगे इस कमज़ोर बाजुओं वाले बूढ़े की कोई हैसियत नहीं थी।

'बच्ची बहुत मासूम है और उसकी टीचर बड़ी बेवक़ूफ़!' बूढ़े ने सोचा।

अँधेरे में रास्ता नज़र नहीं आ रहा था। पर हवा की नमी ने उसे बता दिया कि अब वह नदी के निकट पहुँच गया है।

काफ़ी देर हो चुकी थी। चार बजे भोर तक उसे जाल खींच लेना था। पाँच बजे सुबह तक मछलियाँ ठेकेदार तक पहुँच जानी ज़रूरी थीं।

उसने नाव खोलकर नदी में उतार दी—छोटी नदी नहीं थी, थी महानदी, दरिया। बादबान कसा और पतवार उठाकर क़श्ती (नाव) खेने लगा। तभी नाव को ज़ोरदार झटका लगा और वह फिर्की की तरह गोल घूम गई। दरिया में भँवर उठ रहे थे और अभी जाल डालना बाक़ी था। हवा की साँय-साँय अजगर की फुँफकार-जैसी लग रही थी! बूढ़े ने नाव सँभालने का प्रयास किया तो उसका सिर चकरा गया और वह आधे धड़ से नाव की दीवार पर टँग गया! नाव बुरी तरह हिचकोले खा रही थी।

बहुत देर तक नाव इसी तरह गोल-गोल घूमती रही और फिर अचानक दरिया में उभरी हुई एक चट्टान से टकराकर रुक गई।

उसने ऊपर देखा तो उसकी साँस अटक-सी गई। चट्टान का एक कोना उसकी खोपड़ी से सिर्फ़ आधे इंच की दूरी पर था, कहने को ही यह दूरी उसे बचा न लेती तो नाव के टकराने के साथ ही उसकी खोपड़ी के परखच्चे उड़ गए होते!

पूरी ताक़त से उसने जाल घुमाकर दरिया में फेंक दिया। ठीक उसी समय बादल गड़गड़ाए और एक बड़ा-सा ओला उसके बेहद कम बालों वाले सिर पर आ गिरा। खोपड़ी में एक गूमड़ उठ आया।

उसने नाव को दरिया वाली उसी चट्टान से बाँध दिया और उसके एक कोने में ख़ुद भी सिकुड़-सिमटकर बैठ गया। बार-बार चट्टान से टकराने के कारण नाव ख़तरे में थी। बारिश भी शुरू हो गई।

धीरे-धीरे बारिश का ज़ोर कम हुआ और आकाश से अँधेरे का पर्दा छँटने लगा। बहुत दूर से किसी मुर्ग़े की बाँग सुनाई दी तो बूढ़ा मछुआरा चौंक उठा। अब जाल समेटने का समय था। लेकिन आज उसे ख़ाली हाथ लौटना होगा। वह जानता था, जाल में फँसे भी होंगे तो महज़ चंद झींगे। थोड़े-बहुत पैसे मिले भी तो ठेकेदार की दस बातें सुनने के बाद ही मिलेंगे। उदासी के आलम में जाल खींचने लगा।

अचानक उसे लगा कि 'जाल बहुत भारी है', इतना भारी के अकेले खींचना मुश्किल! लेकिन इसमें हो क्या सकता है ? इस तूफ़ान में तो मछलियाँ जाने कहाँ बह चुकी होंगी। कोई घड़ियाल... ?' यह सोचकर वह पसीने-पसीने हो गया, मगर देखना तो होगा ही कि इसमें है क्या ? फिर उसने अपनी कमर में रस्सा बाँधकर उसका दूसरा सिरा चट्टान से बाँध दिया और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाव के एक टूटे पटरे में पाँव घुसाकर अच्छी तरह जमा लिया। उसने जाल को ऊपर खींचना चाहा तो जाल ने एक झटके से उसे नीचे खींच लिया...बँधे हुए होने की वजह से वह सँभल गया।

दूर-दूर तक सन्नाटा था।

अभी पौ फटी ही थी। आकाश पर बादलों के कुछ टुकड़े अब भी तैर रहे थे। उसने फिर हिम्मत जुटाई, लेकिन उसे लग रहा था कि आज वह मर ही जाएगा...अगर जाल के अंदर घड़ियाल हुआ तो जाल से निकलने के साथ ही उसे निगल ही जाएगा।

अचानक बिजली चमकी और कुछ देर तक चमकती ही रही...रोशनी के झमाके में जाल झलका तो उसके मुँह से हैरत भरी चीख़ निकल गई! वह मछली ही थी, बहुत बड़ी और बहुत ख़ूबसूरत! इतनी बड़ी और इतनी सुंदर मछली आज तक किसी को नहीं मिली थी।

'यह मछली तो म्यूज़ियम में रखवाने लायक़ है!' बूढ़े ने सोचा, और अपने शरीर की सारी ताक़त लगाकर जाल खींचने लगा। मगर जाल वहीं का वहीं रहा, तब उसे एक तरकीब सूझी, जाल को पानी में ही पड़ा रहने दिया जाए। सिर्फ़ उसका मुँह बंद करके एक सिरे को नाव से बाँध दिया जाए। साफ़-सवेरा होते ही कुछ लोग तो इधर से गुज़रेंगे ही, उनकी मदद से मछली को पानी से निकाल लेंगे।

हवा उसकी सहायक साबित हुई।

वही हवा जो रात में उसकी दुश्मन बनी बार-बार उसे पीछे धकेल रही थी, इस समय उसे किनारे की ओर ले जा रही थी। नाव की पीठ से जाल का एक सिरा बँधा हुआ था।

अचानक जाल को झटके लगने लगे...हवा तो मददगार थी लेकिन जाल का वज़न बढ़ता ही जा रहा था।

जाल की ओर नाव झुक गई थी! नाव खेते-खेते बूढ़े मल्लाह की बाँहें ढीली होती जा रही थीं...फटा-पुराना झिंगोला कुछ और फट गया था। वह फिर भी जोशो-ख़रोश से भरा था—कई सालों के बाद एक बड़ी कमाई की उम्मीद...!

आकाश के किनारे पर कई रंग फैल गए थे। चिड़ियाँ चहचहाने लगी थीं। और दूर दरिया के किनारे जंगल में से एक साया निकलता दिखाई दे रहा था। '...ख़ुदा ने आख़िर मदद के लिए किसी को भेज ही दिया...'—यह सोचकर बूढ़े ने हाथ का भोंपू बनाकर ज़ोर से उसे पुकारा!

जल्दी ही उसे उसकी आवाज़ सुनाई दे गई। वह इधर घूम गया।

बूढ़े का साहस कुछ बढ़ गया और पूरे जोश के साथ उसने नाव खेनी शुरू कर दी। अब जाल हल्का लगने लगा था। दोनों ने मिलकर आख़िर जाल ऊपर खींच लिया।

अचानक बूढ़े के मुँह से चीख़ निकल गई! जाल में अनगिनत छोटी-छोटी मछलियाँ घुसी हुई थीं और बड़ी मछली को कुतर-कुतरकर खा रही थीं! जाल में फँसी बड़ी मछली बड़ी ही बेबस और लाचार नज़र आ रही थी!

अचानक बूढ़े को ख़याल आया, 'ठीक ही कहती है मेरी छोटी बिटिया! छोटी मछली भी बड़ी मछली को खा सकती है। ज़रूरत है सिर्फ़ हिम्मत की!'

और एक नए इरादे के साथ बूढ़ा आदमी 'फ़िश मर्चेंट' के डेरे की तरफ़ चल पड़ा।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाटक

सुनीता तारापुरे

अनसुनी चीख़ें

महिलाओं के प्रति अपराध और उनका शोषण करने की भावना बढ़ती रही है। घरेलू हिंसा की जड़ें हमारे समाज तथा परिवार में गहराई तक जम गई हैं। इसे व्यवस्थागत समर्थन भी मिलता रहा है। शारीरिक हिंसा के अलावा लैंगिक, मौखिक और भावनात्मक हिंसा भी होती रही है। अत्याचारित नारी की चीख़ से आसमाँ भी काँप उठता है, पर उनका दिल नहीं दहलता जो उसके सम्मान और सुरक्षा के लिए वास्तव में ज़िम्मेदार हैं। और दिन-प्रतिदिन चीख़ों की संख्या बढ़ती जा रही है।

मुग्धा, जो इस एकल नाटक की नायिका है, अपने अनुभव कथन द्वारा ऐसी अनसुनी चीख़ों से आपके अंदर की निर्दिष्ट संवेदनशीलता को जागृत करने की कोशिश कर रही है। मुग्धा की नि:शेष, फिर भी शेष कहानी हमें आत्मिक स्तर पर स्त्री जीवन को अनुभूत करने का मौक़ा देती है।

(मंच प्रकाशमान होते ही दिखता है वन बी एच के फ़्लैट का परिदृश्य। सलीक़े से सजाया हुआ। मंच के पिछले हिस्से के बीचोंबीच एक दरवाज़ा है, वह पैसेज से होकर, बाहर की ओर खुलता है। घर का मुख्य दरवाज़ा वही है, जिससे हम सीधे ड्राईंग रूम में दाख़िल होते हैं। स्टेज के बाईं ओर बेडरूम दिखाई दे रहा है। दाईं ओर किचन है, जिसका कुछ हिस्सा मंच पर दिखाया जा सकता है, ख़ास करके डाइनिंग वाला हिस्सा। बेडरूम और किचन वाला एरिया प्लेटफ़ॉर्म द्वारा थोड़ी ऊँचाई देकर अलग किया जा सकता है।)

(टी.वी. शो की संकेत धुन-जैसा कोई संगीत, प्रकाश वलय में मुग्धा टी.वी. एंकर के पोज़ में बैठी है। चेहरे पर नक़ली मुस्कान। म्यूज़िक कुछ फ़ेड आउट होता है)

नमस्कार! मैं हूँ आपकी सखी 'सहेली'! आप सभी दर्शकों का स्वागत करती हूँ आपके अपने इस कार्यक्रम में, जिसका

संपर्क : 'दुर्गा', 87अ/अ-4, मड्डी बस्ती, सोलापुर 413002 (महा.); मो : 9922111230

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाम है 'साँझा चूल्हा': बातें सखी सहेली से, गहरा रिश्ता अपने आप से।

(कुछ सेकेंड्स के लिए संकेत धुन फिर से फ़ेड इन, फिर फ़ेड आउट)

आज की हमारी विशेष प्रस्तुति है—'नारी, तू है सब पे भारी!'

हे सृष्टि की जननी, प्रेम रूप धारिणी, दुष्ट संहारिणी नारी, तू है सब पे भारी।

जी हाँ, यही तो थीम है आज के प्रोग्राम की।

आप सभी दर्शक इस कार्यक्रम में शामिल होकर खुले दिल से अपनी सहेली से बातें कर सकते हैं फ़ोन के ज़रिए। आपको बस 100-2000-300 नंबर मिलाना है, जो कि टॉल फ्री है और जुड़ जाना है हमारे लाखों-करोड़ों दर्शकों से।

नंबर याद तो हो गया ना आपको? बिलकुल आसान नंबर है 100-2000-300.

(फ़ोन की घंटी बजती है) क्या बात है...देखा, मैंने नंबर दोहराया नहीं कि पहला कॉल आ भी गया। इससे यह पता चलता है कि आप अपनी सखी-सहेली के संग बतियाने के लिए कितने उतावले रहते हैं, चलिए देखते हैं हमारा पहला कॉलर कौन है...

—हैलो सहेली जी, मैं एक स्थानीय पत्रकार हूँ शेफाली।—मैं आपकी थीम से बिलकुल सहमत नहीं हूँ। नारी का पलड़ा अपने देश में तो कम-से-कम भारी नहीं है। उससे जुड़े प्रश्न अब भी गंभीर और चिंताजनक हैं। न बलात्कार कम हुए हैं, न अत्याचार, न हत्याएँ बंद हुई हैं, न हिंसा। दिन-प्रतिदिन चीख़ते सवालों की संख्या बढ़ती जा रही है और हम सब लाचार, बेबस, बेशर्म बैठे हैं—हाथ-पर-हाथ धरे।

—हाँ, हाँ सहेली जी, आपका यह प्रोग्राम कभी-कभी देखती हूँ मैं। पर इसमें तो आप ज़्यादातर पेज थ्री पर चमकनेवाली महिलाओं को बुलाती हैं। अब आप ही बताइए, ऐसी घर में रहनेवाली ये महिलाएँ चिलचिलाती धूप में हाड़-तोड़ मेहनत करनेवाली ग़रीब मज़दूर महिलाओं का दर्द क्या जानें? इनको तो बस, गहरी लिपस्टिक और महँगी डिज़ाइनर साड़ी के साथ इनकी छवि टीवी पर दिखे या पेपर में छपे, इसी में दिलचस्पी रहती है।

—किटी पार्टियों में व्यस्त रहनेवाली ऐसी ही एक महिला ने एक मंच पर कहा था, "पति हमें पेपर नैपकिन समझता है। जब चाहे यूज़ किया और फेंक दिया।" लेकिन मैं इन देवियों को बताना चाहती हूँ आप ख़ुद अपनी मर्ज़ी से नैपकिन बनी हैं। अपनी एनर्जी पॉज़िटिव चीज़ों पर नहीं इस्तेमाल कर रहीं। झूठी चमक-दमक में ही ख़ुश हैं आप! किसी पीड़ित महिला संग फ़ोटो खिंचवाकर पेपर में छपवाने से नारी-उत्थान नहीं हो जाता है। आप भी तो अपने पति जैसी ही हो। इन पीड़ित महिलाओं को नैपकिन की तरह इस्तेमाल कर रही हो। जब चाहा यूज़ किया और फेंक दिया कचरे के डिब्बे में! कहा जाता है 'किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सर्वोत्तम थर्मामीटर है, वहाँ की महिलाओं की स्थिति।' मुझे लगता है समझदार को इशारा काफ़ी है।

—धन्यवाद शेफ़ाली जी, आप ने दो टूक शब्दों में अपनी बात हमारे सामने रखी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

—लेकिन सखियो और हाँ सहेलियो...आप अभी तक क्यों चुप हैं? ज़रूर कहिएगा अपने मन की बात, तो चलिए उठाइये अपना मोबाइल और लगाइये यह नंबर 100-2000-300.

(टेलीफ़ोन रिंग)

—हैलो... जी! जी, यह वही कार्यक्रम है न..., आपका अपना साँझा चूल्हा। आप कौन बोल रही हैं? ग्रेसी! ह्वॉट ए गुड नेम! जी ग्रेसी जी कहिए...

—माई गॉड सहेली जी, मैं आपसे बात कर रही हूँ... आय जस्ट कांट बिलीव दिस, यू नो, मैं आपकी बहुत बड़ी फ़ैन हूँ!

—जी जी, कहती हूँ, मैं यूनिवर्सिटी में पढ़ती हूँ। और यूनिवर्सिटी की क्रिकेट टीम में खेलती हूँ। मैं कहना चाहती हूँ कि आज ज़माना बदल चुका है। आज तो हम लड़कियाँ खेल जगत में भी अपना करिश्मा दिखा रही हैं। भारतीय क्रिकेट टीम की कप्तान मिताली राज और राइट आर्म फ़ास्ट बॉलर झूलन गोस्वामी मेरी आदर्श हैं। मैं उन-जैसी बनना चाहती हूँ और भारतीय क्रिकेट टीम का हिस्सा बनना चाहती हूँ।

—दैटस् ग्रेट! ग्रेसी, तुम जल्द ही हमें इंडियन वीमेन्स क्रिकेट टीम में खेलती हुई नज़र आओगी, हमें पूरा यक़ीन है। ऑल द बेस्ट!

सखियो, यही तो है आज की अपनी थीम, 'नारी तू है सब पे भारी' आज हम...

(टेलीफ़ोन रिंग)

—हैलो... हैलो...हैलो... जी यह प्रोग्राम है साँझा चूल्हा : बातें सखी सहेली से गहरा रिश्ता अपने आप से। क्या हमसे कोई बात करना चाह रही हैं? हैलो... हाँ हाँ, बोलिए बहनजी... आपका नाम बताइए...ठीक है मत बताना। आप इतनी घबराई हुई क्यों हैं? क्या पहली बार फ़ोन पर बोल रही हैं? जी घबराइए नहीं, बोलिए, आप अपनी सखी सहेली से कुछ कहना तो चाहेंगी न?

—जी मैं... मैं... मैं कुछ कहना चाहती हूँ... मुझे यहाँ बंद करके रखा है... मुझे बचाइए... देखो फ़ोन मत काटना, मैं कितने दिनों से किसी से कुछ बोली भी नहीं... मुझे घर में एक अँधेरे कमरे में बंद करके रखा है... आज सब लोग शादी में गए हैं, तो... मैं फ़ोन कर पायी।

मेरी सास है न, उसे बहुत पैसा चाहिए। मेरे पिताजी के पास नही है न पैसा, तो कहाँ से देंगे। वैसे शादी में दिया था, ढेर सारा पैसा... पर मेरे सास-ससुर कहते हैं और लाओ! अब मैं कहाँ से लाऊँगी। वे मुझे खाना भी नहीं देते और कमरे में बाँधकर रखते हैं... मैं चिल्लाती हूँ तो सबको बताते हैं, ''हमारे तो भाग ही फूटे, पागल हो गई है हमारी बहू...'' दस दिन, एक बार तो दस दिन खाना नहीं दिया था। नहाने भी नहीं दिया। नहीं, मैं पागल नहीं, बिलकुल नहीं, तुम बताना इनको, मैं पागल नहीं हूँ। वह तो मैं भूख से, अकेलेपन से, और अँधेरे से घबराकर चिल्लाती हूँ!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पर यह लोग मुझे ऐसे ही भूखा मार देंगे या पागल कर देंगे और फिर दूसरी शादी...ढेर सारा पैसा लेकर... फिर उसको भी भूखा मारेंगे... फिर तीसरी शादी... फिर ढेर सारा पैसा... नोट छापने की मशीन है... इनका लड़का... देखो फ़ोन मत काटना... मैं कुछ कहना चाहती हूँ...।

—ओह, सॉरी... दुखियारी नारी! आपका फ़ोन बीच में ही काटना पड़ा। हमारे तकनीकी सहयोगी बता रहे हैं कि इस दौरान दौरा करनेवाले माननीय नेताजी से संपर्क हो गया है, वह लाइन पर मौजूद हैं, पर उनके पास समय की बहुत कमी है, तो आपकी बात हमें काटनी पड़ी। वेरी सॉरी फ़ॉर दैट! चलिए सुनते हैं हमारे नेताजी क्या कह रहे हैं...हैलो... हैलो नेताजी... लगता है, नेताजी से संपर्क फिर से टूट गया है। हमारी तकनीकी टीम उनसे संपर्क कर उनके अनमोल विचार हमारे सामने रख सकती है। आपका स्वागत है। कहिए...

—माफ़ करना सहेली जी, आप कहती हैं नारी तू सब पे भारी। लेकिन ऐड्स में नारी का जो चित्र आता है, वह घिनौना नहीं लगता जी आपको ? नेम और फ़ेम पाने के लिए ये लड़कियाँ ख़ुद अपना शोषण करने का न्योता दे रही हैं जी।

क्या ज़माना आ गया है, ये लड़कियाँ स्वयं ही शरीर के प्रदर्शन पर गर्व कर रही हैं! अपनी ओछी हरक़तों को पैसा कमाने का ज़रिया बना रही हैं। गंदे और अश्लील गानों पर जिस्म थिरकाने को कैरियर का नाम दे रही हैं! मुझे तो लगता है जी भगवान ही उनको बचा पाएँगे, या फिर शायद वे भी नहीं! इक्कीसवीं सदी, नई जेनरेशन, वीमेन्स लिब और न जाने क्या-क्या ? इनका हवाला देकर हँसते-हँसते ये लड़कियाँ अपने कपड़े उतारती जा रही हैं। कैमरा प्रोडक्ट को कम, इन लड़कियों के अंग-प्रत्यंगों को ज़्यादा फ़ोकस करता है।

छोटी-बड़ी सभी कंपनियाँ अपने रिसेप्शन पर आकर्षक और कमउम्र की लड़कियों को बिठाती हैं। अभी तो यह हाल है कि कोई मध्यमवर्गीय आदमी भी अगर अपनी दुकान खोलता है तो काउंटर पर सुंदर लड़की प्रेफ़र करता है; ताकि उसकी दुकान अच्छी चले।

रानी लक्ष्मीबाई से कैप्टन लक्ष्मी तक बहादुर स्त्रियों का नाम लेकर हम आज जो वर्तन कर रहे हैं, इसमें कौन-सी बहादुरी है ?

—सिमरन जी, आपके मन की पीड़ा को हम समझ रहे हैं। हमें फ़ोन करने के लिए और बेझिझक अपनी बात हमारे सामने रखने के लिए बहुत धन्यवाद।

सखियो, जैसे सिमरन जी ने अभी-अभी कहा, क्या स्त्री रूप-लावण्य इतना सस्ता है कि उसकी ऊर्जा वस्तुओं को बेचने भर में लगाई जाए। जिस कोख से मानवता जन्म लेती है, क्या वह प्रदर्शन की वस्तु है ? स्त्री का अश्लील रूप देखकर क्या हम शर्मिंदा नहीं हो जाते ? अगर होते हैं, तो उसका उपयोग करके प्रचारित वस्तुएँ हम क्या ख़रीदते हैं ? क्यों हम जाने-अनजाने किसी के हाथ की कठपुतली बनना पसंद करते हैं ? क्यों, ज़रा सोचिए! मैं यूँ गई और यूँ आई, तब तक आपके साथ है यह गाना...

(सहेली कुर्सी से उठकर अंदर चली जाती है।)

बोल री कठपुतली डोरी कौन संग बाँधी
सच बतला तू नाचे किसके लिए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बावरी कठपुतली डोरी पिया संग बाँधी।
मैं नाचूँ अपने पिया के लिए।

(मुग्धा इसी गीत को गुनगुनाते, नाचते हुए मंच पर प्रवेश करती है।) —हँसी आ रही है मुझे नाचते देखकर? ऑबवियसली, मुझ जैसी अधेड़ उम्र की औरत इस तरह नाचेगी तो हँसी तो आएगी ही।

अपनी बिटिया रानी के लिए कर रही हूँ यह सब! स्कूल के एन्यूअल फ़ंक्शन के लिए उसे कठपुतली डांस जो करना है। सोचा, उसे सिखाने से पहले ख़ुद करके देख लूँ। सदियाँ बीत गई हैं मुझे नाचे हुए। मैं तो भूल ही गई थी कि मैं नाच भी सकती हूँ।

—अरे आप इतने हैरान क्यों हैं? ओह समझ गई, अभी यहाँ जो शो चल रहा था, उसको लेकर अचंभे में पड़ गए? वो तो मैं ऐसे ही नक़ल उतार रही थी। मेरा फ़ेवरेट प्रोग्राम है साँझा-चूल्हा। कैसा लगा आपको मेरा शो?

—न न, मैं साँझा चूल्हा वाली सहेली नहीं हूँ, मैं तो... चलिए आज मैं आपको अपनी ही कहानी सुनाती हूँ।

तो, मैं मुग्धा। अपने माँ-बाप की लाडली मासूम-कोमल कली, भोली-चंचल-सी परी, एक पंखुड़ी गुलाब की, एक डोर रेशम की, दहलीज़ की रंगोली, आँगन की तुलसी! अहा, क्या दिन थे बचपन के! वह झूठमूठ का घरौंदा, वह मिट्टी सानकर लड्डू बनाना, तितली पकड़ना, गुलेल से कच्चे आम गिराना, पेड़ पर चढ़ना, उतरते वक़्त ज़ोर से चिल्लाना, बड़ों की हर चीज़ को चोरी-छिपे आज़माना, शरारत और मस्ती भरा बचपन।

फिर यौवन की दहलीज़ लाँघकर जवानी में क़दम रखा तो मन रँगीली उमंगों से भर गया। जवानी का नाम लेते ही कितनी सारी छवियाँ तैरने लगती हैं न आँखों के सामने तितली बनकर!

कितनी शिद्दत से मैं और राज एक-दूसरे के क़रीब आए थे। अवसर मिलते ही हम भिगोते रहते थे एक-दूसरे के सूखेपन को।

कभी वह अपनी मुट्ठी में मेरे हाथों को समेटकर कहता,
"हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी, कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमाँ, लेकिन फिर भी कम निकले।"
तो कभी कहता, "मुहब्बत में नहीं हैं फ़र्क़ जीने और मरने का
उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पे दम निकले।"
बिलकुल इसी अंदाज़ में एक दिन अचानक उसने मुझे प्रपोज़ भी किया,
'ऐ मुग्धा, मुझसे शादी करोगी?'
क्या कहती मैं? मुझे तो यक़ीन ही नहीं हो रहा था।
"आज मैं आगे, ज़माना है पीछे।
टेल मी ओ ख़ुदा, अब मैं क्या करूँ
चलूँ सीधी के उल्टी चलूँ।"

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके बाद तो वही सब कुछ हुआ, जो ज़माने भर में होता है। शादी हुई। पंख लगाए साल बीता। शादी की पहली सालगिरह पर बच्चे के आने की गुड न्यूज़ सुनाई, तो राज जैसे पागल ही हो गया। कितने नए सपने सँजोये, कितनी तैयारियाँ की। नाम तक सोचकर रखा था, लड़की हुई तो नेहा और अगर लड़का हुआ तो आदित्य!

मगर बच्चा अठमासा पैदा हुआ। पूरी कोशिशों के बावजूद हम उसे बचा नहीं पाए।

पता है, उन दिनों जब मैं अस्पताल में थी, तब एक रात मैंने बुरा सपना देखा। मेरी नींद टूटी। घबराकर मैं बिस्तर पर बैठी थी। अचानक देखा कि सामने वाले बिस्तर पर जो औरत थी, वह मुझे ही देख रही है। मुझसे नज़रें मिलते ही बोली, "क्या हुआ बहन? बुरा सपना देखा? सोने का नहीं। मुझे भी सुलाने की ये लोग बहुत कोशिश करते हैं, पर मैं नहीं सोती। एक दफ़ा सो गई तो ये लोग मेरा कुछ भी करेंगे। मुझे क्या हुआ है? कुछ हुआ है मुझे? कुछ भी तो नहीं! दर्द नहीं, बुख़ार नहीं, कोई भी तकलीफ़ नहीं। मेरे से लड़का नहीं हुआ न... तो दूसरी बहू लानी है उनको। छोड़ दिया मुझे इधर मरने के लिए! एक दफ़ा सो गई न तो मार डालेंगे मुझे! ...उन लोगों को ख़ूब पहचानती हूँ मैं... मार डालेंगे मुझे... मैं नहीं सोती, तुम भी मत सोना!"

वाक़ई, पिछले तीन दिनों में उस औरत को सोता कभी नहीं देखा था। आते-जाते हर एक को बस टुकुर-टुकुर देखती रहती या फिर टकटकी बाँधे दीवार को निहारती रहती। न उससे मिलने कोई आता था, न वह किसी से कुछ कहती थी। न जाने कितने दिनों से वहाँ पर थी। क्या सचमुच उसके घरवाले उसे मारकर दूसरी शादी के बारे में सोच रहे होंगे?

तो क्या राज भी? न न, ऐसा सोचना भी पाप है! कितना प्यार करता है वह मुझसे।

और इस बार मैं अपने बच्चे को जन्म नहीं दे पायी तो क्या? अगली बार ख़ूब ख़याल रखूँगी और फिर एक प्यारा-सा बच्चा मेरी गोद में खेलेगा। इसी उम्मीद के साथ घर लौटी।

लेकिन जीवन ने एक कठोर करवट ली। कितनी बार डॉक्टरी जाँच से गुज़रने के बावजूद कुछ नतीजा नहीं निकला। हर बार अबॉर्शन हो जाता, या करवा दिया जाता; बच्चे की ग्रोथ ठीक न होने के कारण। मैं तो निराश हो चुकी थी। राज भी उखड़ा-उखड़ा-सा रहने लगा।

मैंने बच्चा अडॉप्ट करने का प्रस्ताव रखा तो झल्लाया, मुझ पर जमकर बरसा। उसे हर हाल में ख़ुद का बच्चा चाहिए था।

माँ नहीं बन पाई, तो एम.ए. की डिग्री याद आई। वक़्त बिताने के लिए मैंने नौकरी जॉइन कर ली। नौकरी की व्यस्तता में अपने ग़म को भुलाने की कोशिश कर ही रही थी कि अचानक राज की अफ़ेयर की कानाफूसी सुनने में आई। और एक दिन तो वह उसे घर ही ले आया।

लीना... उसके ऑफ़िस में काम करनेवाली चंचल हसीना। स्टाइलिश। उम्र में हमसे दस-पंद्रह साल छोटी होगी। मैं ऑफ़िस से लौटी, तो उन दोनों को हमारे बेडरूम में देखकर मेरा माथा ठनका। आज तक राज अपने किसी दोस्त या रिश्तेदार को भी बेडरूम तक लेकर नहीं गया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जैसे-तैसे मैंने अपने आप पर क़ाबू पाया और झूठमूठ हँसती रही। छाती पर साँप लोट रहे थे फिर भी उसकी आवभगत करती रही। बातों-बातों में राज ने मेरी दुखती रग पर हाथ रख ही दिया। मेरे सूनी कोख की बात लीना को कह डाली। फिर यह इलाज, वह ट्रीटमेंट करते-करते बात दूसरी शादी तक पहुँची। सुनकर, मैं तो दंग रह गई!

विश्वास ही नहीं हो रहा था कि राज के मन में ऐसा ख़याल आ सकता है? क्या यह वही राज है, जो कहा करता था, 'जीवन के हर सुख-दुःख में हम संग हैं।'

मन कर रहा था उसे झिंझोड़कर चिल्ला-चिल्लाकर पूछूँ, 'यह सब जो हमारे साथ हो रहा है, इसमें मेरा क्या दोष? क्या मैं बच्चे के लिए तड़प नहीं रही हूँ? मेरा भी मन करता है, अपना एक गदबदा-सा प्यारा बच्चा हो! उसे मैं कसकर अपने आँचल में बाँध लूँ! उसके संग ख़ूब लाड़-प्यार से खेलती रहूँ! न जाने कितने ख़्वाब देखा करती हूँ अपने बच्चे को लेकर!'

किसे जाकर सुनाती मन की पीड़ा? अंदर-ही-अंदर घुलती रही।

फिर तलाक़ के काग़ज़ात मिले। अजीब क़िस्म की तड़प और पराजय की भावना ने हिलाकर रख दिया मुझे। मैं करती भी तो क्या? मन मारकर दस्तख़त करने के अलावा कोई दूसरा चारा भी तो नहीं था!

फिर मैंने अपना यह घरौंदा बना लिया। मेरी अपनी, छोटी-सी दुनिया। इसमें अकेले रहने लगी। लेकिन वह भी किसी को रास नहीं आई। तरह-तरह की बातें होने लगीं।

आप ही बताइये, जो बातें पुरुषों के लिए सही, वही औरत के लिए ग़लत हो जाती हैं! यह कैसी व्यवस्था है, जो अकेली औरत का जीना दूभर कर देती है, उसकी मजबूरी का फ़ायदा उठाना चाहती है। घुटन-सी होती है मुझे!

(खिड़की की तरफ़ जाती है, खिड़की खोलकर आँखें मूँदे खुली हवा में लंबी साँस लेती है। कुछ क्षण बाद आँखें खोलती है, तब सामने किसी को देखकर झेंप-सी जाती है। झट से खिड़की बंद कर देती है।)

देखा ना आपने, वह सामने वाले बिल्डिंग में रहनेवाला बेशरम... कैसे घूर रहा था! मेरी खिड़की ज़रा खुली नहीं कि ये महाशय गैलरी में हाज़िर।

दरअसल, यह फ़्लैट लेते वक़्त मुझे सबसे अच्छी लगी थी ये बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ और वह सामने वाली बालकनी। सोचा था बालकनी में घंटों पढ़ने बैठूँगी। बैठना तो दूर पाँच मिनट खड़ी भी नहीं रह सकती!

अरे, अकेली औरत क्या नुमाइश की चीज़ होती है?

इस सोसायटी का वह बुड्ढा सेक्रेटरी आया था एक दिन, सोसायटी मिटिंग की इत्तिला देने। तब मैं यहाँ नई-नई रहने आई थी। चाय पीकर प्याली थमाते वक़्त छू लिया था उसने मेरी उँगलियों को। जाते-जाते कहने लगा, "देखो मुग्धा, तुम्हें किसी भी चीज़ की ज़रूरत पड़े तो बेझिझक मुझे बुलाना। मैं आधी रात को भी तुम्हारी सेवा में हाज़िर हो जाऊँगा।"

बेशरम स्साला!

बाहर सड़कों पर, दुकानों में, ऑफ़िस में जगह-जगह ऐसे बेशरम बिखरे पड़े हैं।

राज भी तो ऐसा ही बर्ताव करता रहा मेरे साथ। इधर मेरा जीना दुश्वार हो गया था और उधर वह, अपनी दूसरी गृहस्थी के मजे लूट रहा था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या मैं बच्चा जनने की मशीन भर थी? एक पुर्जा ख़राब हुआ, तो फेंक दी मशीन! और कितनी होशियारी से सारा दोष मेरे ही सिर मढ़ दिया उसने!

मैं मूरख, मूक-बधिर-सी, गुमसुम-सी खड़ी रही कोने में, ख़ुद को दोषी मानते हुए।

स्टेला को यह सब पता चला तो चिढ़ाने लगी, ''अरी मुग्धा, तुम तो बिलकुल हिंदी फ़िल्मों की हिरोइन हो। अपने पति को सामने बिठाकर, उसकी चरण-धूली माथे पर सजाकर तुमने तो गाना भी गाया होगा, 'तुम मेरे स्वामी, मैं तुमरी दासी...जनम...जनम...हूँ...

स्टेला, मेरी दोस्त है। ऑफ़िस में मेरे साथ वाले क्यूबिकल में बैठती है। एकदम बिंदास। सिर्फ़ तीस साल की है वह। लेकिन ज़िंदगी ने इतना भद्दा मज़ाक़ किया है उसके साथ कि शायद ही कोई उससे उबर पाता। पहले उसे देखकर लगता था, इसके अंदर तो लावा उबल रहा है, कौन जाने कब उसका विस्फोट हो जाए।

उसकी कड़वाहट-भरी बातें सुनकर मैंने एक बार पूछा भी उससे, ''इतनी कड़वी बातें करनी तूने कहाँ से सीखी स्टेला?''

तो कहने लगी, ''ज़िंदगी डियर, ज़िंदगी! ज़िंदगी सब कुछ सिखाती है। बारह साल की थी, जब मेरे अंकल ने मुझे सेक्सुअली एब्यूज़ किया। वह एक्सपीरियंस इतना घिनौना था कि कई रातें मैंने रोते-बिलखते गुज़ारी... अँधेरे में भयभीत-सी... अकेली... डरी-सहमी... सुबह की पहली किरण का इंतज़ार करती रहती! ज़रा-सी भी आहट हुई, तो लगता था कहीं अंकल तो फिर से नहीं आ गए?

वुड यू बिलीव मुग्धा, मैंने यह बात मम्मी-पापा को बताई तो उन्होंने मुझ पर विश्वास ही नहीं किया! उल्टा मुझे ही भला-बुरा सुनाने लगे। तब तो उनका व्यवहार समझ नहीं पाई थी मैं, लेकिन बाद में समझ में आने लगा। पापा की मिल बंद होने के कारण उनके पास ढंग की नौकरी थी नहीं। ऊपर से हम छह बच्चों का बोझ। कहाँ से लाते इतना पैसा? अंकल की दया पर ही तो जी रहे थे हम! कभी-कभी तो लगता है अंकल शायद मेरी मम्मी से भी वसूलते होंगे, खैरात में बाँटा पैसा!

अठारह साल की हुई तो मैंने माँ-बाप का घर छोड़ दिया। लेकिन तब तक वह दरिंदा मुझे नोचता रहा, निचोड़ता रहा। मुग्धा, बारह साल की उम्र तो गुड़ियों से, खिलौनों से खेलने की होती है न? पर उसी उम्र में ख़ुद किसी के हाथ का खिलौना बन गई थी। सेक्स टॉय! सेक्स स्लेव!

अकेले रहने लगी, नौकरी करती थी तो काफ़ी पैसा भी मिलने लगा। ज़िंदगी के सारे मज़े लूट सकती थी। मेरी हमउम्र लड़कियाँ तो अपने ब्वॉय फ्रेंड्स, डेटिंग्स, गिफ़्ट्स, फ़र्स्ट किस के बारे में बोलते थकती नहीं थीं। लेकिन मैं उन सबसे परे, बदले की भावना से तड़प रही थी। सोचती थी, 'मुझे भोग्या मानकर उस दरिंदे ने अपनी हवस का शिकार बनाया, मेरी इज़्ज़त लूट ली। लेकिन क्या इज़्ज़त सिर्फ़ हम औरतों की होती है? मर्दों की नहीं? अगर होती है तो मैं इन मर्दों की इज़्ज़त के चीथड़े उड़ाऊँगी!'

पूरी तैयारी के साथ मैंने अंकल को फ़ोन किया, 'आपके साथ सेक्स की मुझे लत लग गई है, आइए ना मेरे घर!' सुनकर, वह कुत्ते की तरह दुम हिलाता मेरे पास आया और मैंने उसी रात, उसको नपुंसक बना दिया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(सेंशुअस संगीत। धुँधली-सी रोशनी। सिगरेट ओढ़ती स्टेला उसका इंतज़ार कर रही है। वह आता है। स्टेला के कुछ सेक्सी अंदाज़ और एक भयंकर चीख़। स्टेला सिगरेट फेंककर पैरों के नीचे मसलती है। कुछ हिंस्र भाव उसके चेहरे पर।)

ओह शिट्! घिन-सी हो गई है मुझे स्त्री-पुरुष संबंधों से! मेरे अंदर की कोमल भावनाएँ मर चुकी हैं, मुग्धा! अब मैं औरत नहीं रही... चलती-फिरती रोबोट हूँ, बस।''

शायद स्टेला ऐसे ही जीती रहती, पर एरिक की बातों ने उसे ज़िंदगी के बारे में सोचने पर मजबूर किया। हमारा कलिग एरिक उस दिन कह रहा था, ''दुनिया में तुम अकेली ही नहीं हो स्टेला, जो यौन हिंसा की शिकार बनी हो! ऐसी कितनी स्टेला रोज़ हवस का शिकार बनती हैं, मालूम भी है तुम्हें? तुम तो फिर भी भाग्यशाली हो कि इस दलदल से निकल तो पायी! वर्ना कितनी ज़िंदगियाँ रेड लाइट एरिया में पहुँचकर दम तोड़ देती हैं!

मैं ख़ुद लैंगिक हिंसा का शिकार हूँ। ऐसे क्या देख रही हो? तुम्हें क्या लगता है, लड़कों पर अत्याचार नहीं होते? लड़के भी होते हैं किसी के हवस का शिकार! ना, ना सिर्फ़ होमो सेक्सुअल्स नहीं, बल्कि कुछ प्यासी औरतें भी होती हैं इन शिकारियों में।

अब सवाल यह है कि, तुम अपने पिछले जीवन से क्या सीखना चाहती हो? कुछ सीखना चाहती भी हो, या नहीं? पिछली कड़वाहट से अपना वर्तमान और भविष्य कलंकित कर देना चाहती हो, या फिर अतीत को भूलकर खुले दिल से ज़िंदगी को गले लगाना चाहती हो! सोच लो!''

एरिक की बातों पर स्टेला ने सचमुच ग़ौर किया। ज़िंदगी को लेकर वह कुछ संजीदा हो गई। उन दोनों ने मिलकर एक पपेट शो तैयार किया है। दोनों स्कूल-कॉलेज़ में जाकर बच्चों को सेक्स एज्युकेशन देते हैं। सेक्स से जुड़ी वह सारी बातें, जो हम माँ-बाप अपने बच्चों को बताने में हिचकिचाते हैं, वह दोनों पपेट्स की कहानी द्वारा बच्चों को समझाते हैं। और भी बहुत काम करते हैं बच्चों को लेकर।

मुझे तो लगता है, इसी राह पर स्टेला को ज़िंदगी का मक़सद मिल जाएगा, शायद हमसफ़र भी।

कहती है, ''अब ज़िंदगी से कोई शिकायत नहीं है। अब आत्मनिर्भरता से जिऊँगी।''

नीता भी तो यही कहती है, ''अब मैं जिऊँगी निर्भय और आत्मनिर्भर होकर। अपने दम-ख़म पर।''

वैसे पहले भी वह अपने ही दम-ख़म पर जी रही थी। उसके पति ने कहाँ गृहस्थी की कोई ज़िम्मेवारी निभायी थी? बेहद वहमी है उसका पति! ऊपर से नौकरी छोड़कर घर पर बैठा है। एक दिन नीता बहुत ही बेचैन दिख रही थी। दुपट्टे से अपने हाथों को छिपाने की कोशिश कर रही थी। मुझे शक हुआ, दुपट्टा हटाकर देखा, तो उसके हाथों पर जलने के निशान! उसे बोलने पर मजबूर किया, तो फूट-फूटकर रोने लगी। कहने लगी, ''उसे अब मेरा सारा पैसा चाहिए। उसे शेयर्स में इन्वेस्ट करना है...कहता है...जीपीएफ़ से सारा पैसा निकलवा लो। मुग्धा, तुम्हीं बताओ, यह पैसा उसके हाथ में कैसे दूँ? तू तो जानती है, जब नौकरी में था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तब भी उसने एक पैसा मेरे हाथ में नहीं थमाया। घर का सारा ख़र्चा-पानी मेरी तनख़्वाह से चलता है। उसकी तनख़्वाह चली जाती थी सीधे उसके सेविंग अकाउंट में।

क्या बताऊँ मुग्धा, अब नौकरी छोड़ने के बाद उसे काम-धाम कुछ है नहीं, तो मुझ पर नज़र रखना, रोब ज़माना शुरू कर दिया! यह डिब्बा इधर क्या कर रहा है? किसका फ़ोन था? पड़ोस में इतनी देर क्या कर रही थी? आज सब्ज़ी बनाते वक़्त मन-ही-मन किसके साथ रोमांस चल रहा था? ढंग से खाना पकाना भी नहीं आता है तुम्हें? यह क्या, इतने भड़कीले रंग की साड़ी क्यों पहनी है? बहन ने दी है? तुम्हें मालूम है, मुझे भड़कीले रंग बिलकुल पसंद नहीं, तो लौटाई क्यों नहीं? और उससे लेने की ज़रूरत ही क्या है? समझ गया, दी होगी तुम्हारे किसी यार ने? तभी तो...

मैं शायद ही कभी पलटकर जवाब देती हूँ। अब तक आस लगाए बैठी थी कि कभी-न-कभी तो यह आदमी पिघलेगा! मेरा समर्पण उसे बदलेगा। तब तक चुपचाप सुनते रहो, सहते रहो! बच्चों के सामने, पड़ोसियों के सामने, रिश्तेदारों के सामने ज़लील होते रहो! वह ज़हर उगलता रहेगा, तुम विष के घूँट पीते रहो।

ताने देना, गाली-गलौज करना, झूठे आरोप लगाकर बेइज़्ज़त करना, छीना-झपटी करना, चाँटा मारना—यह तो आम बात हो गई थी। पिछले हफ़्ते से पैसों के लिए मुझे मार रहा है। और कल तो उसने हद ही कर दी। सिगरेट से जला डाला, पूरे बदन को! अच्छा हुआ, बच्चे मामा के यहाँ गए हुए हैं! मुग्धा, मैं किसी भी हालत में यह पैसा उसे नहीं दे सकती! वह तो मैंने कौड़ी-कौड़ी करके बच्चों के भविष्य के लिए जमा किया है, उसके हाथ में कैसे सौंप दूँ? मुझे बचाओ मुग्धा, किसी भी तरह से उस शैतान के चंगुल से मुझे बचाओ!''

फिर मैंने एरिक और स्टेला के साथ पुलिस की मदद से नीता को उसकी क़ैद से छुड़वाया। अपने दो बच्चों को लेकर नीता अब ऑफ़िस क्वार्टर्स में रहती है। लेकिन अब वह उसे फ़ोन करके सताता है, अनाप-शनाप बकता रहता है, धमकाता है, बच्चों को अग़वा करने की बातें करता है। नीता या तो चुपचाप सुनती रहती है, या फिर फ़ोन काट देती है।

औरतों की यह चुपचाप सब कुछ सहने की आदत कहो या क्षमता, इस पर आकाश कितनी संजीदगी से बोलता रहता था। हम जब यूनिवर्सिटी में पढ़ते थे, तब आकाश हमारा फ्रेंड था। हमारी ख़ूब छनती थी। वह हमेशा कहता था, ''अन्याय करनेवालों से ज़्यादा अपराधी तो चुपचाप अन्याय सहनेवाला होता है!''

मालूम है, आकाश से मैं कितने सालों बाद फिर से मिली।

एक दिन अपना ख़ालीपन लपेटे हुए मैं राज की यादों में खोयी थी कि अचानक फ़ोन की घंटी बजी।

फ़ोन पर आकाश था। इतने सालों बाद वह इस शहर में आया था और दिनभर कोशिश करने के बाद उसे मेरा अता-पता मिला था। फिर मेरे बुलावे पर वह घर आया।

दस-बारह साल बाद मिल रहे थे हम। मुझे पहले लगा था, सालों के अंतराल ने हमें अजनबी बना दिया होगा। पर नहीं, उसे देखते ही सालों का यह फ़ासला सर्र से ग़ायब हो गया। और हम दोनों सहजता से अपनी कथा-व्यथा में खो गए।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बताते-बोलते, पहली बार सालों से बाँधा वेग टूटा और मैं क़स्बाई लड़की की तरह फूट-फूटकर रोने लगी। बहते आँसुओं के साथ सारा विषाद बह गया। मन का बोझ हल्का हुआ, तो मैं उसकी तरफ़ देखकर खुले दिल से मुस्कुराई।

झट से उसने कहा, ''यही तो, यही तुम्हारी पहचान है मुग्धा! तुम्हारी ये स्वच्छंद हँसी। इसे अपने चेहरे से ग़ायब मत करना!

मान लो, तुम्हारे एक-दो बच्चे होते, तो इससे ऐसा क्या नया घट जाता तुम्हारे जीवन में? थोड़ी मोटी-सी अम्मा दिखती, बस! मातृत्व का एहसास तो तुम अब भी ले सकती हो, बच्चा गोद लेकर। रही बात राज की और तुम्हारे शादी-शुदा ज़िंदगी की, तो मैं इतना ही कहूँगा कि अच्छा है नक़ाब जल्दी उतरा, असली चेहरा सामने तो आया। वर्ना ज़िंदगी बीत जाती है किसी को पहचानते-पहचानते!

और क्या शादी, पति, गृहस्थी, बच्चे इतनी ही ज़िंदगी है? सच का सामना करना सीख ले मुग्धा! थोड़ा शांत और ठंडे दिमाग़ से सोच! अपने वजूद की धज्जियाँ उड़ाने का हमें कोई हक़ नहीं है! अब से अपने आपको एक नए अंदाज़ में देखो और ख़ुद से प्यार करना भी सीखो।

तुम तो लीक से हटकर सोचनेवाली लड़की हुआ करती थी। कहाँ गई वह बहादुर लड़की? तुम्हारे अंदर ही कहीं किसी कोने में वह अब भी है। खोजो उसे! और हाँ, सलीक़े में रहना उस लड़की को ख़ूब आता था। सलीक़े का रहन-सहन, बातें करना, किसी की आवभगत करना। अगर मिल जाए तो कुछ सीख लेना उससे! अब भी कुछ पल्ले नहीं पड़ रहा है? अरे भाई, घर में मेहमान आए हैं, उनकी कुछ ख़ातिरदारी करोगी, चाय-वाय पिलवाओगी कि सिर्फ़ पानी पिलाकर भगाने का इरादा है?''

''आकाश, तुम भी ना...''

ख़ूब हँसी उस दिन। आकाश जब जा रहा था तो मन पर घिरे काले बादल छँट चुके थे।

''प्रॉमिस करती हूँ आकाश! अब अपने जीवन को एक नया अर्थ देने की कोशिश ज़रूर करूँगी। अगली बार मिलोगे, तो पहलेवाली मुग्धा को पाओगे!''

आकाश आया और चला गया। लेकिन उन तीन-चार घंटों में कितना कुछ देकर गया मुझे। मेरा आत्मसम्मान, मेरा आत्मविश्वास मुझे दिलवा गया।

मन के किसी कोने में दुबककर बैठी वह मुग्धा धीरे-धीरे अपनी उन्मुक्तता के संग फिर जी उठी। मेरा बदला-बदला रूप देखकर स्टेला से लेकर नीता तक सब हैरान थी कि अचानक मुझे यह क्या हो गया है?

स्टेला ने तो पूछा भी, ''मुग्धा, इज़ इट लव?''

''यस स्टेला, इट इज़ लव! मैं अपने आपसे प्यार करने लगी हूँ। ज़िंदगी से इश्क़ होने लगा है मुझे। ये पेड़, पौधे, पंछी, आसमाँ, नदी, पहाड़, रास्ते, पत्थर, यह मेज़, कुर्सी, तू, नीता सबसे मोहब्बत होने लगी है मुझे! सारे गिले-शिकवे बह गए आँसुओं के संग। अब तो सिर्फ़ हँसना है और जीना है।''

उन्हीं दिनों मेरे यहाँ काम करनेवाली कमल मौसी अपनी भाँजी को लेकर मेरे पास आई और कहने लगी, ''ताई, ये मेरी भाँजी है उमा। शादी को पाँच साल हुए। तीन लड़कियाँ हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहले से और अब चौथी बार पेट से है। छठा महीना चल रहा है। इसका मरद इसे सोनोग्राफ़ी करवाने ले गया था। डॉक्टर ने कहा है, 'जय माता दी ?' मतलब इस बार भी लड़की ही होगी। तो इसका मरद अब पीछे पड़ा है कि बच्ची को गिरा दे। लेकिन यह इस बच्ची को जन्म देना चाहती है। उसे अपनी कोख से सीधे कूड़ेदान तक नहीं पहुँचाना चाहती। लाख समझाया इसके पति को पर मानने को तैयार ही नहीं!

तो मैं कह रही थी ताई... मतलब देखो, बात बुरी लगे तो भूल जाना... वह उस दिन आकाश भाऊ कह रहे थे न, बच्चा गोद लेके... तो मैं सोची... ताई, अगर उमा बच्ची को जन्म देगी तो क्या तुम उसको गोद ले लोगी ? देखो ताई, तुम शांति से सोचना!''

बात मन में बैठ गई। बच्चा गोद लेने के बारे में तो मैं भी सोच रही थी। तो उमा की बच्ची गोद लेने में हर्ज़ ही क्या है ?

फिर दोस्तों के साथ सलाह-मशविरा किया, लीगल अडवाइज़र से चर्चा की, ताकि आगे जाकर कोई क़ानूनी अड़चन न पैदा हो।

और फिर तीन महीने बाद मेरे घर आई एक नन्ही परी।

सावन के दिनों में उसका जन्म हुआ तो नाम रखा—सावनी।

सावनी... एकदम खिली हुई धूप-सी उजली।

रंगीन चिड़िया-सी... सदा चहचहाती, फुदकती, उड़ती, डाल-डाल पर बैठती।

कोयल-सी गाती, गिलहरी-सी भागती, तितली-सी उड़ती, बादल-सी घुमड़ती, सावन-सी बरसती, लहरों-सी उछलती...

उसकी किलकारियों से मेरा सूना घर आबाद हो गया।

ख़ामोश दिन और सूनी रातों को आवाज़ मिली। मेरा घर जीवन संगीत में झनझनाने लगा।

अपने नन्हे क़दमों से मेरे पीछे-पीछे चलनेवाली, हाथ में छोटी झाड़ू लिए मेरी नक़ल उतारने वाली मेरी सावू... अपनी ही पायल की छम-छम सुनकर ख़ुश होनेवाली, कभी मुझसे रूठकर छिपनेवाली तो कभी धड़ाम से मेरे गले लगनेवाली मेरी गुड़िया...

दो छोटी-छोटी चोटियाँ और यूनिफ़ॉर्म में स्कूल जानेवाली, अपने छोटे-छोटे हाथों से मेरी दुखती पीठ ख़ूब दबा देने वाली मेरी लाडो...

कभी कहती, ''मम्मा भूख लगी है, मुझे आलू-पराठा चाहिए।''

''ले अब क्या करूँ, आज तो मैंने आलू उबाले ही नहीं। अच्छा चल, यहाँ बैठकर स्कूल की बातें बता, तब तक बन जाएँगे गरमा-गरम आलू के पराठे। अरी रुक जा, छोटे-छोटे टुकड़े कर देती हूँ, गर्म है, फूँक-फूँककर, एक-एक कौर खाते हैं बेटा!''

कभी सुबह उठी नहीं कि आईसक्रीम की माँग करती, तो कभी चॉकलेट या चिप्स के लिए रोने लगती।

दिन भर मम्मा-मम्मा की रट लगाए मेरे आगे-पीछे घूमती रहती...

''मम्मा यह क्या है ?

मम्मा, पपीता पीला क्यों होता है ? लाल होता तो कितना अच्छा लगता न ?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मम्मा, मछली क्यों नहीं उड़ सकती?

मम्मा, चंदा मामा को रात को अकेले डर नहीं लगता?

मम्मा, हमेशा खड़े रहकर पेड़ों के पैर दुखते नहीं?

मम्मा, इस छिपकली का घर कहाँ है?''

मैं झूठमूठ उसे डाँटती, 'देखो सावनी, अब बिलकुल मेरे पीछे-पीछे मत आना, अभी बहुत काम करने हैं, देख नहीं रही है सब कैसा बिखरा पड़ा है! तेरी यह पटर-पटर बंद कर और यहाँ सोफ़े पर बैठ जा, एकदम चुपचाप!'' उसके रूप में फिर से अपना बचपन जी उठी मैं।

अब समय को जैसे पंख लग गए। देखते-देखते दस साल की हो गई मेरी सावू। कितनी धूमधाम से मनाया हमने उसका बर्थ डे। सारा हॉल बच्चों से भर गया था और सबके बीच मेरी सावनी बिलकुल परी लग रही थी।

लेकिन शायद किसी की बुरी नज़र लग गई मेरे सुख को, किसी शैतान का बुरा साया पड़ा मेरी बेटी पर! वर्ना यह सब ऐसे क्यों हो जाता? न उसको स्कूल से आधी छुट्टी मिलती, न वह मुझसे पहले घर पहुँचती? न वह हैवान यहाँ आने की हिम्मत करता, ना मरता...

हाँ, हाँ, मैं बता सकती हूँ उस दिन क्या-क्या हुआ? आपसे मैं डरती थोड़े ही हूँ! और मुझे अपने किए पर कोई पछतावा नहीं है। मैंने जो किया, मेरी जगह आप रहते तो शायद आप भी वही करते। हाँ, मैंने मारा है उसे, अपने इन हाथों से।

लहूलुहान होकर यहीं गिरा था वह... नहीं यहाँ... हाँ, यहाँ पर... नहीं याद नहीं आ रहा है मुझे। पर उसकी आँखें... मरने के बाद भी आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था स्साला! उसको तो मरना ही था, मेरे ही हाथों...

उस दिन ऑफ़िस से घर आते वक़्त ढेर सारे खिलौने लाई थी मैं सावू के लिए। यहाँ आकर देखती हूँ तो दरवाज़ा अधखुला था... चलो, सावू को सरप्राइज़ देते हैं... मैं दरवाज़ा धीरे-से खोलकर दबे पाँव अंदर आई तो सन्न रह गई...

वह बुड्ढा लंपट सेक्रेटरी मेरी सावू को बाँहों में जकड़े उसकी अधखिली छाती को... मेरी गुड़िया दर्द से बिलख रही थी, छटपटा रही थी और यह शैतान उसे दबोच रहा था।

''स्साला हैवान! ठहर मैं बताती हूँ... मैं उस पर झपट पड़ी... सावनी को उसके चंगुल से छुड़ाया और उसे बेतहाशा मारने लगी... नहीं, और एक स्टेला नहीं... तूने उसे छुआ भी कैसे?... कमीने तेरी हिम्मत कैसे हुई, मेरी गुड़िया को छूने की?''

मारती रही... मारती रही... मारती रही...

(मुग्धा अपना आपा खो देती है। विलाप करते हुए बेहोश-सी फ़र्श पर गिरती है। कुछ क्षण बाद पागलों-सी हँसते-हँसते उठती है। कभी सावनी तो कभी स्टेला, कभी नीता तो कभी पागल औरत के संवादों को दोहराती रहती है।)

धीरे... धीरे पर्दा गिरता है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

अवतारकृष्ण राजदान

शारदा लिपि, देश एवं शिलालेख

जब से मनुष्य इस दुनिया में आया, तब से उसने अपने विचारों को किसी-न-किसी रूप में अभिव्यक्ति देने के प्रयास किए हैं और इस सिलसिले में, उसका पत्थरों पर रेखांकन करना या इनको तराशना आदि ऐसे ही कई उदाहरण हैं, जो हमें हर जगह मिल सकते हैं। वस्तुत: यह मानव-जीवन का प्रस्तर युग कहलाता है। किंतु समय के साथ-साथ, मानव भी बदला और वह एक ऐसी खोज करने में लगा, जिसके द्वारा वह अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने में पूर्णरूपेण सफल हो सके और इस तरह से उसके द्वारा लिपि का आविष्कार हो गया और पत्थरों पर रेखांकन करने के बजाय, वह धीरे-धीरे भोजपत्र पर, इसी के माध्यम से, अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने में सफल हो गया। तब से आज तक संसार में कई तरह की लिपियाँ अस्तित्व में आ चुकी हैं और अब अपनी बात दूसरों तक पहुँचाना, मानव के लिए कोई समस्या नहीं रही। इनमें से कुछ लिपियाँ ऐसी हैं जो अत्यंत प्राचीन हैं। ऐसी ही एक प्राचीन लिपि है शारदा लिपि, जो केवल भारत-मुकुट कश्मीर की लिपि है और यदि हम यह कहें कि यह कश्मीरियों की लिपि है और कश्मीरी पंडितों ने इसका भरपूर इस्तेमाल किया है तो अतिशयोक्ति न होगी। यही कारण है कि आजकल इस लिपि में हाथ से लिखी जो पुस्तकें देखने को मिलती हैं, वह सभी कश्मीरियों की रचनाएँ हैं, जबकि शारदा में लिखा साहित्य, समय के कुचक्र के कारण काल-कवलित हो गया है, किंतु ऐसे भी लोग हैं जिनके घरों में इस समय ये रचनाएँ सुरक्षित मिलती हैं और घर वाले इनकी पूजा सुबह-सवेरे शारदा भगवती के रूप में करते हैं। इनका मानना है कि घर में इन पुस्तकों के होने से साक्षात् शारदा ही विराजमान रहती है। इससे यह बात साफ़ लगती है कि एक समय कश्मीर को शारदा केंद्र या शारदापीठ कहते थे अथवा वह देश जहाँ ज्ञान की देवी का वास था। यह वह देश है जहाँ

हिंदी-कश्मीरी के सुपरिचित विद्वान। कई पुस्तकें और आलोचनात्मक आलेख प्रकाशित। डी-255, गली-14/15, लोअर शिवनगर, जम्मू 180001

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से कई चिंतक, ज्ञानी, इतिहासकार और साहित्यकार, ज्योतिष, विज्ञान के ज्ञाता, अनुसंधानकर्ता तथा विभिन्न धर्म-दर्शन के जाननेवाले हुए हैं तथा इन्होंने अपनी बात सिर्फ़ शारदा लिपि में ही पाठकों तक पहुँचाई है।

शारदा लिपि का अस्तित्व कश्मीर में ही क्यों हुआ, इसके कई कारण हो सकते हैं। साहित्यिक तौर पर यदि देखा जाए तो शारदा का अर्थ ज्ञान और वाच्य बनता है। शारदा को कश्मीरी पार्वती या दुर्गा के रूप में स्वीकार करते हैं और हिंदू मान्यता के अनुसार पार्वती काली या दुर्गा का दूसरा रूप है और *दुर्गा-सप्तशती* में यह साफ़ कहा गया है कि मूलतः दुर्गा ही पार्वती और सरस्वती है या यह वह उच्च ज्ञान है, जिसको भारती कहते हैं। शारदा अभिव्यक्ति का माध्यम है, ज्ञान की देवी है, इच्छाओं की पूर्ति करनेवाली है, समस्त वेदों का सार है और बुरे विचारों की नियंत्रक है। *नीलमतपुराण* के अनुसार शारदा एक प्राणी को ज्ञान के पाँच पड़ाव पार करने पर मजबूर करती है और ये पड़ाव हैं—संचार, उत्थान, कर्म, बदलाव और अंत में नाश। ये पड़ाव तब तक समेटे जा सकते हैं जब तक आत्मा शरीर में प्रवेश न कर पाए या जो ज़मीन-आसमान और इसके बीच के स्थान को घेर ले। इसलिए कश्मीर को शारदा और शारदा को कश्मीर कहते हैं। इसी बात को ध्यान में रखकर, यहाँ के ऋषि-मुनियों और जानकार लोगों ने शारदा या सरस्वती के नाम पर अपने विवेक से ऐसे अक्षर गढ़कर, एक नई लिपि का आविर्भाव किया, जो ब्राह्मी के बिलकुल निकट है और देवनागरी से किसी हद तक मिलती-जुलती है। यहाँ के लोगों ने इसको शारदा का उपहार मानकर शारदा लिपि का नाम दिया और अपनी अभिव्यक्ति का मुख्य माध्यम बनाकर, एक तरह से सीने से लगाया। आलम यह है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक, इसका प्रयोग यहाँ होता रहा। इस बीच घाटी में कई राजा आए और कई गए, कई संस्कृतियाँ अस्तित्व में आईं, कई धर्म पनपे किंतु इससे इस लिपि पर कोई आँच नहीं आई। सबने इसका ही इस्तेमाल किया, जिसका जीवंत उदाहरण वे पुस्तकें हैं, जो शारदा में लिखी गई हैं और इस समय कहीं-कहीं सुरक्षित हैं।

शारदा लिपि का कश्मीर में अस्तित्व एक हज़ार वर्ष पूर्व से माना जाता है किंतु जहाँ तब इसके ऐतिहासिक पक्ष का संबंध है, यह साक्ष्यों के आधार पर सही उतरता है। इसका आविर्भाव महाराजा अशोक (310 ई. पूर्व) से होकर महाराजा ललितादित्य (सातवीं-आठवीं शती) तक बराबर होता रहा है। यह वही कार्यकाल है जब यहाँ बौद्ध-धर्म का पूरी तरह नाश हो गया था। इस बीच यहाँ जो भी मंदिर, विहार या मठ बने, उनकी नींव या गुंबद पर शारदा लिपि में मंत्र अंकित हैं। जिन पुस्तकों की रचना हुई, चाहे वह धर्म, शिक्षा, साहित्य, क़ानून, व्याकरण, संस्कृति या विज्ञान से संबंधित थी, उनकी लिपि सिर्फ़ शारदा थी किंतु दुर्भाग्य से अब इनमें से कोई पुस्तक हमारे पास उपलब्ध नहीं। शारदा में लिखी पहली एवं प्राचीन पुस्तक का नाम *कल्प* है, जो एक तरह का संस्कृत व्याकरण है। यह पूरी तरह अभिव्यक्ति के आठ भागों का विवरण हमारे सामने प्रस्तुत करता है। यह पाणिनि की *अष्टाध्यायी* की तर्ज पर बना है, जिसकी रचना 400 ई. पूर्व की बताई जाती है। *शैव-दर्शन*, जो कश्मीरियों का अपना है, का सूत्रपात आठवीं शती में हो गया था। इससे संबंधित ग्रंथ, जिनमें इनके अपने सिद्धांत दिए गए हैं, उसको शारदा लिपि में ही उभारा गया है। इनका अनुवाद संस्कृत में भी हुआ, जो बाद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की बात है। अंग्रेज़ी में भी इनका अनुवाद समय-समय पर हुआ है किंतु इनका असली मूल तो शारदा ही है। कश्मीर में मुसलमानों के आगमन पर भी पहले-पहल शारदा लिपि अभिव्यक्ति का मुख्य साधन रही। यह बात तो शायद कम लोगों को पता है कि ग्यारहवीं शती में जब कल्हण पंडित ने अपनी अमर कृति *राजतरंगिणी* की रचना की तो वह शारदा में थी, जबकि इसका मूल संस्कृत था। यह तो ऐसी ही बात हो गई कि कश्मीरी को रोमन में लिखा जाए। इसे बाद में यहाँ के पंडितों ने शारदा से संस्कृत में उतारा है। इसी तरह से यहाँ कई शारदा पुस्तकों के उदाहरण हो सकते हैं। कश्मीर की संत कवयित्री ललद्यद के वाख या वाक्य शारदा में ही सुरक्षित हैं।

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व यदि किसी की जन्मपत्री बनानी होती थी, तो वह शारदा लिपि में ही बनाई जाती थी। शारदा लिपि का लगभग एक हज़ार साल तक बने रहने का सबसे बड़ा कारण है कि यह पुरोहित वर्ग तक ही सीमित रही। इन्होंने इसका धर्म-ग्रंथों में धड़ल्ले से प्रयोग किया। मुसलमानों के आगमन के कुछ समय बाद यह लिपि मान्यता से दूर हटती रही क्योंकि इनके राजत्वकाल में यहाँ समय-समय पर कई भाषाओं का इस्तेमाल होने लगा, जिसके परिणामस्वरूप पाठकों ने इसकी ओर कम रुचि दिखाई। पहले फ़ारसी, फिर उर्दू और अब अंग्रेज़ी का यहाँ समय-समय पर इस्तेमाल होता रहा है, जबकि यह दूसरी बात है कि कश्मीर से संबंधित जो अमूल्य जानकारी यहाँ के शारदा लिपि में लिखे गए ग्रंथों में निहित है, वह कहीं और नहीं है। इस समय यहाँ शारदा का बिलकुल भी प्रयोग नहीं होता है और अब आलम यह है कि इसका अक्षर ज्ञान थोड़े-से पुरोहितों तक ही सीमित है।

कश्मीर में शारदा का वास हर जगह है, बशर्ते कि किसी के पास उसको देखने और पहचानने की क्षमता हो। *ऋग्वेद* के अनुसार इस सृष्टि की उत्पत्ति इडा, सरस्वती और माही से हुई है और शारदा इसी का प्रतिरूप है जो मानव से ओझल बैठी है। इस तरह का सशक्त उदाहरण उस जल कुंड से मिलता है, जो श्रीनगर की शाही हमदान मस्जिद में सुरक्षित है और जो चौदहवीं शती तक काली मंदिर था और जिसको शाही हमदान ने बलपूर्वक एक मस्जिद में बदल डाला था। यहाँ इस जलकुंड पर हमेशा ढक्कन लगा रहता है। ऐसी मान्यता है कि यदि कोई इसकी ओर देखेगा तो वह आँखों की रोशनी खोएगा। मुसलमान भी इसका आदर करते हैं। यहाँ एक मशहूर देवी स्थान है—क्षीर भवानी, जिसको कश्मीरी में 'तुलमुल' कहते हैं। यहाँ महाराज्ञी का जलकुंड है और आश्चर्य यह है कि इसका आकार शारदा लिपि में लिखे गए ओंकार जैसा है, जो यहाँ का विशेष आकर्षण है और जिसको देखने उत्तर भारत से हज़ारों की संख्या में लोग इसकी पूजा करने आते हैं। तीसरा और अंतिम उदाहरण है, शारदा मंदिर, जो इस समय पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर मुज़फ़्फ़राबाद में खंडप्राय स्थिति में है। वस्तुतः यही कश्मीरी पंडितों के विद्या, बुद्धि और धार्मिक सचेतना का केंद्र रहा है। यह महाराजा ललितादित्य के राजत्वकाल में अस्तित्व में आ गया था, जबकि इसके पूर्व तथा अशोक के समय से, यहाँ बौद्ध-संस्कृति का केंद्र रहा है। यहीं महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी। यहाँ आमतौर पर बौद्ध लामा रहते थे। ललितादित्य मुक्तापीड ने इसको महत्त्व देकर विद्या-बुद्धि का एक प्रमुख केंद्र बनाया। इस संबंध में प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण का कहना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है कि ग्यारहवीं शती में यह विद्या ग्रहण करने का एक प्रसिद्ध संस्थान था, जहाँ संस्कृत के अतिरिक्त शारदा में वेद सिखाए जाते थे। इसको शारदा-केंद्र भी कहते थे। *किताब-उल-हिंद* में कहा गया है कि यह शिक्षा-केंद्र शारदा पांडुलिपियों का कोश है। इसके स्थापत्य के प्रारंभिक-काल में बिल्हण भी यहाँ आए हैं। मैक्समूलर का कहना है कि शारदापीठ भारतीय शिक्षा केंद्रों में एक महत्त्वपूर्ण केंद्र माना जाता था। यहाँ भारतीय-दर्शन के जानकार मूल सिद्धांत सीखने आते थे। यहाँ कई शारदा हस्तलिखित पांडुलिपियाँ सुरक्षित थीं, जिनमें ज्ञान का भंडार भरा था। धार्मिक दृष्टि से भी यह केंद्र कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। यहाँ भी जलकुंड है किंतु दुर्भाग्य यह है कि अब इसके भग्नावशेष ही देखने को मिलते हैं।

कश्मीरी पंडितों के कुछ धर्मोत्सव ऐसे हैं, जिनका शारदा लिपि से सीधा संबंध है। जनवरी-फ़रवरी अथवा माघ-शुक्ल पक्ष तृतीया के दिन यहाँ ब्राह्मण अपने यजमान को हाथ से बनाई शाारदा की रंगीन तसवीर प्रदान करते हैं, जिसके नीचे शारदा की प्रशंसा में, शारदा अक्षरों में लिखा श्लोक होता है। इसको कश्मीरी में 'गोर त्रेय' कहते हैं। प्राचीन काल में यह सबसे बड़ा सम्मान या आदर का प्रतीक माना जाता था, जिसकी प्रथा आज भी क़ायम है।

वस्तुत: शारदा का मतलब है विद्या, वाच्य और अभिव्यक्ति। यही कारण है कि जब युवक अपने जीवन के दूसरे पड़ाव में आता है तो उसको यहाँ वेदों का ज्ञान, शारदा लिपि में देने का प्रचलन रहा है। कश्मीरी में इस महोत्सव को यज्ञोपवीत या 'मेखल' कहते हैं। इस दिन इसको जनेऊ पहनाया जाता है और इक्कीस पक्षाग पढ़कर ही, हवन समाप्त किया जाता है। हवन में जो अन्य क्रियाएँ होती हैं, वह सब शारदा लिपि में ही होती हैं जैसे, कलश के ऊपर ओंकार लिखना या रंगोली बनाते समय उस पर शारदा के कुछ अक्षरों का रेखांकन करना। ऐसा ही यहाँ दूसरे महोत्सवों पर भी होता है।

कश्मीर के भू-स्वर्ग में शारदा लिपि एक हज़ार वर्ष से इस्तेमाल में लाई जाती रही है। इससे पहले यहाँ खोशी लिपि का इस्तेमाल होता था, ऐसा कहा जाता है। यह सत्य है कि शारदा लिपि का आविर्भाव कश्मीर में ही हुआ, किंतु यह यहाँ तक ही सीमित नहीं रही बल्कि यह पहले लद्दाख पहुँच गई, तत्पश्चात् इसका विकास तिब्बत में होने लगा। यही कारण है कि इन दोनों क्षेत्रों में प्राप्त अधिकांश तथागत से संबंधित पुस्तकें इसी लिपि में सुरक्षित हैं। यहाँ आज भी बौद्ध-मंत्र इसी लिपि में लिखे जाते हैं। इधर घाटी के पश्चिम में यह लिपि जम्मू या डुग्गर देश पहुँची और इसके आस-पास इसका प्रचलन हुआ। बाद में इसी से टाकरी और लहंदी निकली। यहाँ से यह लिपि पंजाब के उत्तर में पहुँची और इसी से गुरमुखी का जन्म हुआ। यह गिलगत से पामीर पहुँची और फिर किश्तवाड़ से कांगड़ा तक इसका इस्तेमाल होने लगा। यह दूसरी बात है कि दोनों क्षेत्रों में बोली जानेवाली भाषाओं की लिपि बदल गई है, पर उनका मूलाधार शारदा ही है। इस तरह से एक समय शारदा लिपि उत्तर भारत में छायी रही, जिसके मूल आज भी कहीं-न-कहीं या किसी-न-किसी रूप में मिलते हैं।

शारदा लिपि में हस्तलिखित पांडुलिपियों को तैयार करने का श्रेय कश्मीरी पंडितों को जाता है किंतु इसके साथ ही इन्होंने विभिन्न सुरक्षित स्थानों पर सहस्रों शारदा शिलालेख, समय-समय पर स्थापित किए थे जो या तो अब नेस्त-व-नाबूद हो गए हैं या कहीं खंडित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अवस्था में उपलब्ध हैं। इतिहास साक्षी है कि किसी समय यहाँ हर स्थान पर शारदा शिलालेख मिलते थे, ठीक उसी तरह, जिस तरह अशोक की लाट या अशोक चक्र कहीं-कहीं मिलता है। प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण अपनी कृति *राजतरंगिणी* की तरंग 1, श्लोक 15 में कहते हैं कि अपनी रचना की शुरुआत करने से पूर्व उन्होंने इन सभी शिलालेखों का अध्ययन किया, नहीं तो उसके अनुसार, उसकी रचना पूरी नहीं हुई होती! इससे साफ़ लगता है कि इन शिलालेखों का कितना महत्त्व है। किंतु भाग्य की विडंबना यह है कि इस समय, इनमें से अधिकांश शिलालेख उपलब्ध नहीं। जो कुछ भी बचा है, वह खंडप्राय अवस्था में उपलब्ध है और जो कुछ हमारे पास है, वह सिर्फ़ कश्मीर में ही उपलब्ध नहीं, बल्कि इनमें से कई लाहौर, पेशावर, लंदन या अमरीका के संग्रहालयों में रखे गए हैं। ये शिलालेख यहाँ कैसे पहुँच गए और इन पर क्या लिखा है—निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

महारानी दिद्धा कश्मीर की एक लोकप्रिय मल्लिका हुई हैं। इनकी शासनावधि से संबंधित दो शिलालेख प्राप्त हुए हैं जिनमें से एक इस समय श्रीनगर के अजायबघर में सुरक्षित है। यह शारदा शिलालेख बौद्ध अवतार पद्मपाणि की पीतल की मूर्ति पर अंकित है और दूसरे शारदालेख के संबंध में कहा जाता है कि यह काफ़ी समय से एक कश्मीरी पंडित के घर में सुरक्षित था। बाद में इसको लाहौर के अजायबघर में पहुँचाया गया। जहाँ तक पहले शारदा शिलालेख का संबंध है, इसके बारे में निश्चित है कि यह महारानी दिद्धा के समय पद्मपाणि की याद में श्रावण के शुक्ल पक्ष में स्थापित किया गया था। इससे यह बात साफ़ लगती है कि यद्यपि महारानी दिद्धा के समय यहाँ हिंदू धर्म का प्रचलन था किंतु इसके साथ-साथ बौद्ध धर्म के अनुयायी भी कुछ कम नहीं थे। दूसरा शारदा शिलालेख खंडित दशा में है और इसके कुछ भाग बचे हैं और यह कश्मीर में प्राप्त विशेष पत्थर 'दिवर' का बना है और इस पर एक व्यक्ति का नाम अंकित है, जो अपने समय का धर्मगुरु रहा होगा! उसका नाम धर्मानक था। उसने अपने जीवन-काल में अच्छे काम कर, अपनी माँ को प्रसन्न किया था। अपनी माँ का नाम जीवित रखने के लिए उसने बहुत-से धर्मकार्य किए थे, किंतु दुर्भाग्य से यह चर्चा में नहीं आया है कि वे कौन-से धर्मकार्य हैं, जिनसे उसकी माँ प्रभावित हुई थी। दुर्भाग्य से यह इसके उस भाग पर लिखा है, जो अब नष्टप्राय है। यह बात निश्चित है कि यह शिलालेख संवत् 68 का है। इसके विषय में डॉ. बुह्लर कहते हैं कि इस पर महारानी दिद्धा का फ़रमान अंकित है किंतु साथ ही यह भी कहते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि इस पर शारदा लिपि में संस्कृत शब्द अंकित हैं। इन दोनों शिलालेखों पर लौकिक तथा सप्तऋषि संवत् अंकित है। महारानी दिद्धा के समय ये दोनों संवत् चलन में थे। इस तरह से ये दोनों शिलालेख क्रमशः 4865 या 889 ई. पू. या 992 ई. के बनते हैं। ये दोनों वर्ष महारानी दिद्धा के राज्यकाल से संबंध रखते हैं।

इन दोनों शारदा शिलालेखों का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इनमें महारानी दिद्धा का वर्णन एक शासिका के रूप में नहीं, बल्कि एक सिपहसालार के रूप में किया गया है, जो सच है। वह न सिर्फ़ सेनानी थी बल्कि सयानी भी थी। जिन्होंने विकट परिस्थितियों में शासन किया और अपने जीवन के पचास वर्षों तक कश्मीर के सिंहासन पर विराजमान रही। इन दो शारदा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिलालेखों से कश्मीर के उस समय के धार्मिक सौहार्द पर प्रकाश पड़ता है जो शिलालेख लाहौर के अजायबघर में सुरक्षित है, उन पर भगवान विष्णु की प्रार्थना अंकित है। जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि उस समय वहाँ विष्णुमत का चलन भी रहा था और दूसरी तरफ़ पद्मपाणि की मूर्ति का शिलालेख बौद्ध धर्म की बहाली की ओर संकेत करता है। यहाँ एक और बात ध्यान देने योग्य है कि पद्मपाणि की मूर्ति एक ब्राह्मण के रूप में दिखाई गई है, जो इस बात की ओर संकेत करती है कि उन दिनों धर्म से ज़्यादा ब्राह्मणमत का चलन रहा होगा!

प्राचीनकाल में कश्मीर की सीमाओं का विस्तार किश्तवाड़ के क़स्बे के साथ था, जो अब जम्मू के एक प्रमुख क़स्बे के रूप में माना जाता है। इसी क़स्बे का एक दूर दराज गाँव है दछन, जहाँ महाराजा अनंतदेव के नाम पर एक शारदा शिलालेख सुरक्षित है, जो 1028 ई. तक कश्मीर का राजा हुआ है। इस शारदा शिलालेख पर 2712 लौकिक दर्ज हैं, जो महाराजा अनंतदेव का शासनकाल माना जाता है। इस पर राजा के अलावा अन्य किसी बात का उल्लेख नहीं है। अलबत्ता इससे यह बात सामने आती है कि अनंतदेव के समय दछन-क्षेत्र कश्मीर का भाग रहा था। इस बात की भी पुष्टि होती है कि राजा ने चंबा पर भी विजय पा ली थी, जिसका वर्णन कल्हण ने *राजतरंगिणी* के तरंग 1, श्लोक 298 में किया है। उस समय चंबा पर विजय पाना तभी संभव था, जब किश्तवाड़ अपने अधीन किया जाता!

यह शारदा शिलालेख दछनवासियों के जीवन का एक मुख्य दस्तावेज़ बन गया है क्योंकि इस पर भीमगुप्त का भी उल्लेख है, जिसने यहाँ के लोगों की सुविधा के लिए पुल बनवाया था और इसको इसी की निगरानी या देख-रेख में पूरा किया गया था। दुर्भाग्य से यह शारदा शिलालेख इस समय बिलकुल खंडित दशा में है।

अरगाम बडगाँव क़स्बे का एक गाँव है। यहाँ भी एक शारदा शिलालेख था, जो इस समय श्रीप्रताप संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें दर्ज है कि बडगाँव या वर्तमान आरिगाँव में गंगेश्वर के निकट, रामदेव ने महात्मा अलकेश्वर की मूर्ति की स्थापना के लिए लकड़ी का मंदिर बनाया था। बाद में किसी राजा ने इसको जला दिया। कहा जाता है कि उसका नाम सिंह था। इसके बाद कलदेव ने इस मूर्ति के लिए एक और मंदिर बनवाया, जो ईंट-पत्थरों का था। इसको लौकिक सन् 42 माघशीर्ष शुक्लपक्ष के पाँचवे दिन तदनुसार 16 नवंबर, 1197 को बनाया गया। यहीं सिंह नामक राजा जयसिंह रहा होगा, जिसके राजत्वकाल में कल्हण के अनुसार पूरा बडगाँव क़स्बा जलकर राख हो गया था। हो सकता है कि उसी आग की चपेट में यह मंदिर भी जल गया हो! जहाँ तक कश्मीर के इतिहास का संबंध है, यहाँ प्राप्त यह शारदा शिलालेख इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह बात पूरी तरह सामने आती है कि कश्मीर में ग्यारहवीं शती तक भी बौद्ध-धर्म जीवित था। तापर बाराहमुल्ले का एक क़स्बा है। इसका प्राचीन नाम प्रतापपुर है। यहाँ भी एक शारदा शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो श्रीनगर में प्रताप संग्रहालय में सुरक्षित है। इस समय यह खंडप्राय स्थिति में है और इसमें गजराज के बेटे गंग के हाथों बनाए एक मंदिर का वर्णन दर्ज है। यद्यपि यह शिलालेख कोई जानकारी नहीं देता, किंतु इसके देखने-परखनेवाला यह सोचने पर मजबूर होता है कि राजा परमंडलदेय कौन था। कश्मीरी इतिहास में इस नाम से कोई राजा नहीं मिलता। अलबत्ता जोनराज के कथनानुसार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस काल में यहाँ परमानंद नाम का एक राजा हुआ है, जो जयसिंह का बेटा था। उधर कल्हण के अनुसार जयसिंह का सिर्फ़ एक बेटा था, जिसका नाम दशमांडी था और उसका उत्तराधिकारी भी था, शायद यही दशमांडी हो, ऐसा भी हो सकता है।

कश्मीर में बाहर से कई विद्वान, क़लमकार और कलाकार आए थे। इनमें सर जॉन मार्शल का नाम उल्लेखनीय है, जो सन् 1808 में कश्मीर आए और यहाँ बिजबिहारा के निकट, एक महत्त्वपूर्ण शारदा शिलालेख देखा। शिलालेख पर राजदेव उत्कीर्ण है। जोनराज का इस राजा के संबंध में कहना है कि यह जयदेव का पुत्र और उसका उत्तराधिकारी था, जिसने 1213-1226 ई. तक कश्मीर का राजपाट सँभाला। इस शिलालेख से एक और संकेत मिलता है कि बौद्धमत कमल नाम के किसी अनुयायी ने अलकेश्वर, भटारक मंडल की नींव रखी थी। भटारक मंडल किसे कहते हैं, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। अलबत्ता अब्दुल फ़ज़ल के अनुसार मंडल उस मंदिर को कहते हैं, जिस पर गोल कलश चढ़ा हो। भटारक का अर्थ है स्वामी, जो लोकेश्वर की याद में बनाया गया वह विहार है, जिस पर गोल कलश चढ़ा है। यह शिलालेख तीसरी बात की ओर भी संकेत करता है कि बारहवीं शती में यहाँ बौद्ध-धर्म सक्रिय था और इस दर्शन का ख़ासा प्रभाव रहा था।

कौनहार अनंतनाग क़स्बे का एक गाँव है, जहाँ पुल से एक शारदा शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो इस समय श्रीप्रताप संग्रहालय में सुरक्षित है। कश्मीर में प्राप्त विशेष पत्थर 'दिवरी' पर खुदा यह शिलालेख अब खंडप्राय अवस्था में है। शिलालेख का दायाँ भाग टूटा है, जिसके फलस्वरूप इससे जानकारी हासिल करना संभव नहीं लगता है। यह शिलालेख गणेश स्तुति से शुरू होता है और इसके पश्चात् इस पर किसी जोगमणि नामक स्त्री का उल्लेख है। हो सकता है, यह स्त्री इसी पुल के आस-पास रहती होगी और गणेशजी की पूजा करती होगी! यही कारण है कि उक्त शिलालेख इसी पुल के आस-पास स्थापित कर दिया हो ताकि यहाँ गणेश की पूजा आनेवाली पीढ़ियाँ भी कर सकें। शिलालेख पर सुलतान शहाबुद्दीन का उल्लेख है। उसकी प्रशंसा में लिखा है कि वह पांडवों के पुत्रों में से एक है। इसी प्रकार खनमोह कश्मीर का एक प्रसिद्ध स्थान है। इसके पूर्व में भुवनेश्वरी नामक एक स्थान है, जहाँ एक नाला बहता है। इसी नाले के किनारे पर शारदा शिलालेख इस समय भी सुरक्षित है। शिलालेख 'दिवर' पत्थर का है। इस पर उल्लेख है कि खनमोह में पूर्ण नामक एक ब्राह्मण ने काली संवत् 4630 में एक आश्रम का निर्माण किया है। यह वही समय है, जब यहाँ बडशाह का राज्यकाल रहा। उनके समय यहाँ चांडक नामक एक व्यक्ति राजस्व विभाग में थे। इस शारदा शिलालेख पर उल्लेख है कि दो कुशल वास्तुकारों ने जिन्हें क्रंथ और क्रंथक कहते थे, ने इसका निर्माण किया और डाडा नामक व्यक्ति ने इसे लगाया। यह शारदा शिलालेख अभी भी सुरक्षित है किंतु जिस मंदिर का इस पर उल्लेख है, वह कहीं नहीं दिखता।

ऐतिहासिक दृष्टि से उक्त शारदा शिलालेख महत्त्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि इस पर जो अंकित है, वह इतिहास की कई कड़ियों को खोलता है। इस पर सतीसर, खनमोश, जयपीड और भुवनेश नामक स्थानों का उल्लेख है। सतीसर के संबंध में मुझे कुछ नहीं कहना है क्योंकि इसके बारे में सब जानते हैं। खनमोश कश्मीर का प्राचीन गाँव है, जिसके चारों ओर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्राकृतिक छटा बिखरी है। *राजतरंगिणी* में इसका उल्लेख खनमोश कहकर ही किया गया है। समय के साथ-साथ इसका नाम बदलकर इसे खनमोह कहा जाने लगा, जो श्रीनगर के पश्चिम में चौदह किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। खनमोह मशहूर संस्कृत कवि बिल्हण की जन्मभूमि है, जिसने स्वयं इसका उल्लेख अपनी मशहूर काव्यकृति *विक्रमादेवचरित्रम्* में श्लोक 29 में किया। *राजतरंगिणी* में उल्लेख है कि यहाँ जयपीड ने एक क़िला बनाया था, जिसको उस ज़माने में 'नेत्र कूट' कहते थे। मशहूर यूरोपीय विद्वान बुह्लर जब कश्मीर आए तो उस समय उसने यह क़िला 'अंदरकोट' या 'अंतर्कोटि' में मानसबल के किनारे पर देखा। किसी ज़माने में खनमोह को 'जयपीडपुर' भी कहते थे, जो आजकल की भुवनेश्वरी का विकृत रूप हो सकता है। इस शारदा शिलालेख पर उल्लेख है कि क्षेमेंद्र ने खनमोह को बसाया है।

हारी-पर्वत श्रीनगर के मध्य में है और यहाँ हज़रत बहाउद्दीन की मशहूर ज़ियारत है। इसके अहाते में कई क़ब्रें हैं, जिन पर शारदा शिलालेख स्थापित मिलते हैं। इन शिलाओं में सुल्तान मोहम्मद शाह के राजत्वकाल में तख़्ते सुलेमान के दामन में युद्ध का वर्णन है, जिसने इब्राहीम के बेटे सय्यद ख़ाँ को मारा था। यही बात यहाँ शारदा लिपि में एक क़ब्र पर अंकित है। इस पर संवत् दर्ज है 26 श्रावण तदनुसार 8 जुलाई शुक्रवार 1183 ई.। यह वही समय है, जब युद्ध समाप्त हुआ था। शिला पर जिस सय्यद ख़ाँ का उल्लेख है, श्रीवर के अनुसार वह एक वीर सेनानी था। यह इस बात की ओर संकेत करता है कि उस समय अरबी के साथ-साथ शारदा का चलन कुछ कम नहीं हुआ था क्योंकि शिला पर दोनों लिपियों का प्रयोग हुआ है।

वस्तुतः शारदा लिपि कश्मीर की जननी है। एक समय यह यहाँ के लोगों की अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम रही थी, जिसके द्वारा इन्होंने साहित्य, संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, विज्ञान, धर्म, क़ानून आदि में कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं। इनमें से कुछ एक का नाम इस समय दिग्दिगंतव्यापी है। यही कारण है कि कश्मीर को शारदा देश कहा जाने लगा और इतिहास साक्षी है कि समय-समंय पर बाहर के विभिन्न भागों से मूर्धन्य विद्वान, शारदा लिपि में बिखेरे ज्ञान को प्राप्त करने के लिए यहाँ आए हैं और इस तरह से इसका अमृतरस पिया है। सबसे बड़ी उपलब्धि इस लिपि को हरसंभव प्रयास से जीवित रखने की होगी। कश्मीर के कोने-कोने में शिलालेख स्थापित करना और उन पर संबंधित काल के राजा का नाम और उसके समय के हालात का अंकन करना एक बड़ी उपलब्धि से कम नहीं, जिसके फलस्वरूप आनेवाली पीढ़ियाँ अपने देश के कल के बारे में जानकारी प्राप्त करती हैं। इस तरह का उदाहरण मात्र कश्मीर में ही मिलता है, अन्यत्र कहीं नहीं। शारदा लिपि कश्मीर में अस्तित्व में आई है। इसी लिपि के कारण यह भू-स्वर्ग शारदा देश कहलाया और इसकी पहचान स्थान-स्थान पर शारदा शिलालेखों के स्थापन से हुई है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निबंध

जयदेव तनेजा

वाचिक का वर्चस्व : सत्यदेव दुबे का रंगकर्म

पेट की भूख होती है,
दिमाग़ की भूख होती है,
सेक्स की भूख होती है,
वैसे ही 'थियेटर' की भूख होती है, होनी चाहिए।
इस भूख को मिटाने की कोशिश ही थियेटर है।
भूख सच्ची है तो मिटेगी नहीं।
भूख मिटेगी नहीं
तो थियेटर ज़िंदा रहेगा।

ये पंक्तियाँ थियेटर को अपनी साँसों की तरह ज़रूरी मानने वाले उस अनूठे अभिनेता, नाटककार, अनुवादक, निर्देशक और हरफ़न मौला रंगकर्मी सत्यदेव दुबे की हैं, जिसने लगभग आधी शताब्दी तक लगातार थियेटर को जिया और 25 दिसंबर, 2011 की सुबह मुंबई के एक अस्पताल में, बेहोशी की हालत में, उसे चुपचाप अलविदा कहकर हमेशा के लिए चला गया।

सत्यदेव दुबे यानी—रूखे बिखरे बाल, मुचड़ा कुर्ता, मसली-मुसली जीन, कंधे पर झोला, हाथों में कभी सिगरेट कभी बीड़ी, चेहरे पर नाराज़गी और लड़ने का भाव, आँखों में गहरी संवेदनशीलता, ऊर्जा और उष्मा से आवेष्ठित व्यक्तित्व—धर्मवीर भारती के शब्दों में : ''एक चलता-फिरता शोला, एक जीता-जागता स्वप्न, एक अनवरत मुखर साधना, एक मुजस्सम समर्पण।'' आठवें दशक में जिसके बारे में वरिष्ठ नाट्य-समीक्षक नेमिचंद्र जैन ने स्वीकार किया था कि ''उनका आक्रामक आत्मविश्वास विरोध भी पैदा करता है और आकर्षण भी, और उनके रंग-कर्म की सारी सीमाओं के बावजूद उनकी लगन, ईमानदारी और उद्देश्य की गंभीरता के

प्रतिष्ठित नाट्य समीक्षक। जन्म : 1943। *लहरों के राजहंस : विविध आयाम, अंधा युग : पथ और प्रदर्शन* चर्चित। हिंदी अकादमी, संगीत नाटक अकादमी एवं साहित्य कला परिषद् से पुरस्कृत। संपर्क : 165, नेहरू अपार्टमेंट्स, आउटर रिंग रोड, नई दिल्ली 110019;
मो. 9899547647

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिए उनका आदर होना अनिवार्य है।'' और उनके इस अंतर्विरोधी व्यक्तित्व और अकसर चौंकानेवाले प्रयोगधर्मी रंगकर्म के कारण ही प्रबुद्ध नाट्य-प्रेमियों तथा गंभीर नाट्यालोचकों की मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ ही उन्हें मिलीं। धर्मवीर भारती, मोहन राकेश, शंकर शेष, अमोल पालेकर, श्यामानंद जालान, श्याम बेनेगल, गोविंद निहलानी, अमरीश पुरी, नसीरूद्दीन शाह-जैसे उनके आत्मीय मित्रों, बुद्धिजीवियों और कलाकारों को छोड़कर उनके समकालीन रंगकर्मियों ने भी मन में आदर-सम्मान होने के बावजूद खुलकर उनकी प्रशंसा प्राय: नहीं की।

आधुनिक हिंदी रंगमंच के इस प्रतिभावान किंतु विवादास्पद रचनाकार का जन्म बिलासपुर (म.प्र., अब छत्तीसगढ़) में 19 मार्च, 1936 में हुआ था। 1952 में 'एक महान क्रिकेट खिलाड़ी' बनने के इरादे से ये बंबई गए। जल्दी ही वे इरादे पस्त हो गए और लगभग एक वर्ष तक थियेटर में प्रॉम्टर की हैसियत से काम करते रहे। इनकी स्मरण-शक्ति और किसी की नक़ल करने की क्षमता बेमिसाल थी, लेकिन पैदाइशी हकलाने की आदत थियेटर और फ़िल्मों में जाने के रास्ते की सबसे बड़ी बाधा थी। परंतु इनके आत्मविश्वास और 'थियेटर यूनिट ऑफ़ ड्रामेटिक आर्ट' में स्पीच के रंग-प्रशिक्षक पार्श्वनाथ अल्तेकर की लगातार कोशिश एवं सहायता से चमत्कार-सा हुआ और दुबे ने अपनी इस जन्मजात कमज़ोरी पर विजय प्राप्त की।

अपने कुछ मित्रों की प्रेरणा और चुनौती से 1956 में इन्होंने चेख़व के सुप्रसिद्ध नाटक *द प्रपोज़ल* का *शादी का प्रस्ताव* नाम से भारतीय रूपांतर करके, निर्देशक और अभिनेता की दोहरी भूमिका निभाते हुए, उसका सफल अभिमंचन भी किया। मित्रों और दर्शकों से प्रशंसा पाकर प्रसन्न और उत्साहित भी हुए। परंतु जल्दी ही इनका मन उचट गया। सागर जाकर अंग्रेज़ी में एम.ए. किया और वहीं के एम.बी.आर. कॉलेज में अध्यापन करने लगे। यहाँ भी मन को संतोष नहीं मिला। मन में दबे फ़िल्मों के आकर्षण ने दुबे को दुबारा बंबई बुला लिया। फ़िल्मी दुनिया के संघर्ष और हालात से निराश होकर जल्दी ही ये समझ गए कि इनका वास्तविक कर्मक्षेत्र सिनेमा नहीं, थियेटर है। पी.डी. शेनॉय, मानवेंद्र चिटनिस, अनंत गोहिल और ज्योति मूल नारायण-जैसे मित्रों के उत्साहवर्द्धक प्रोत्साहन से 1960 में इन्होंने लुई पिरेंदलो के नाटक *राइट यू आर, इफ़ यू थिंक यू आर* के हिंदी अनुवाद *सच्चाई क्या है ?* का अभिमंचन किया। निर्देशन के साथ-साथ दुबे ने इनमें अभिनय भी किया। इसकी सफलता से मिलने वाली अप्रत्याशित प्रशंसा ने इन्हें अपूर्व आनंद, उत्तेजना एवं उत्साह से भर दिया। रंगकर्म के उत्प्रेरक सम्मोहन से बँधे दुबे ने स्वयं को बिना शर्त थियेटर को समर्पित कर दिया। इनके इस एकनिष्ठ संपूर्ण समर्पण को देखते हुए निश्चय ही आज यह कहा जा सकता है कि इन्होंने अपने रोमानी और अस्थिर स्वभाव के चलते क्रिकेट, फ़िल्म, अध्यापन, साहित्य विज्ञापन और अपने नाटकों की नायिकाओं एवं अन्य स्त्रियों से फ़्लर्ट चाहे कितना भी किया हो—लेकिन इश्क़ सिर्फ़ थियेटर से ही किया और कैसी भी परिस्थितियों में ताउम्र उसे निभाया।

सत्यदेव दुबे रचनात्मकता के एक ऐसे ऊर्जा-स्रोत थे कि उनके संपर्क में आनेवाला कोई भी व्यक्ति उनके प्रभाव में आए बिना नहीं रह पाता था। उन्होंने अपनी शर्तों पर जीवन जिया; अपनी स्वतंत्रता पर कभी कोई समझौता नहीं किया। वे हमेशा एक आक्रामक मुद्रा में रहते थे और उनका आत्म-सम्मान अहंकार ही सीमाएँ छूने लगता था। उनका मुँहफट और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अक्खड़ स्वभाव सामने वाले को छोटा और हीन बनाता-सा लगता था। उन्हें अपनी आलोचना क़तई बर्दाश्त नहीं थी। रंगकर्म के प्रति उनकी निष्ठा, ईमानदारी, अंतर्दृष्टि एवं प्रतिबद्धता के चलते विरोधी भी प्रशंसा करने के लिए विवश हो जाते थे और उनके स्वभाव के कारण प्रशंसक-समर्थक भी विरोधी हो जाते थे। लोग उन्हें पसंद करते थे या नापसंद—परंतु उनकी उपेक्षा करना संभव नहीं था। उन्हें चौंकानेवाले विवादास्पद वक्तव्य देने का शौक़ था। मसलन, हर साल-दो साल बाद वह रंगमंच के मर जाने की घोषणा करते रहते थे। कभी कहते कि अनुदान की बैसाखियों पर चलते रहने से बेहतर है कि हिंदी रंगमंच मर ही जाए। कभी वक्तव्य देते कि अच्छा है कि हमारा रंगमंच आजीविका नहीं देता—उसे रोज़ी-रोटी का साधन बिलकुल नहीं बनना चाहिए। कभी स्वयं को सर्वश्रेष्ठ नाटककार बताते और कभी राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल-जैसे सरकारी संस्थानों के रंगकर्म को अय्याशी कहते थे। उन्हें अपनी सच्ची आलोचना भी सह्य नहीं थी, जबकि दूसरों पर व्यक्तिगत आक्रमण करना भी वह अपना अधिकार समझते थे।

किसी-न-किसी नए विचार से वह हमेशा स्पंदित और उद्वेलित रहते थे। अपनी प्रखर बौद्धिकता और नवोन्मेषी रचनात्मकता से अचानक सबको चौंका देने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था। छद्म बौद्धिकता और ओढ़ी हुई गंभीर मुद्राओं वाली बहसों से वह बहुत जल्दी बोर हो जाते थे। बोर होने पर वह अकसर दोस्तों के साथ मिलकर शराब पीते, गपशप करते, जुआ खेलते, लड़ते-झगड़ते, विज्ञानाधारित या जासूसी उपन्यास पढ़ते और मार्क्सवाद (जिसे वह क़तई पसंद नहीं करते थे।) को संजीदगी से समझने की कोशिश करते थे। वह इतना थियेटरमय हो गए थे कि उससे हटकर उन्हें किसी बात अथवा व्यक्ति में कोई दिलचस्पी ही नहीं होती थी। थियेटर ही उनका खाना-पीना, ओढ़ना-बिछाना, सोना-जागना—सभी कुछ हो गया था।

पं. सत्यदेव दुबे की यह तीव्र इच्छा थी कि वह एक इतिहास-पुरुष के बजाय एक पुराण-पुरुष की तरह याद किए जाएँ। वह अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व को किताबों की बजाय लोगों की स्मृतियों में दंत-कथाओं के रूप में जीवित रखना चाहते थे। उसकी तथ्यात्मक प्रामाणिक जानकारी न अपने पास रखते थे, न दूसरों को देते थे। अधिकतर वह अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों के न तो ब्रोशर (परिचय-पत्र) छपवाते थे, न प्रेस को रिव्यूज़ के लिए फ़ोटो वग़ैरह उपलब्ध कराने में दिलचस्पी रखते थे। साक्षात्कार देने के लिए पैसे माँगते थे। एक बार 'नटरंग' में छपी एक समीक्षा से इतने नाराज़ हो गए कि पत्रिका के संपादक (वरिष्ठ नाट्य-समीक्षक नेमिचंद्र जैन) को भविष्य में अपने बारे में कुछ भी छापने से मना कर दिया। मुंबई की प्रमुख प्रयोगधर्मी नाट्य-संस्था 'थियेटर यूनिट' की स्थापना 1954 में रंग-पुरुष इब्राहिम अल्काज़ी ने की थी। 1962 में उनके राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के निदेशक बनकर दिल्ली चले जाने के बाद, अंग्रेज़ी रंगकर्म के लिए चर्चित, इस संस्था का दायित्व सत्यदेव दुबे ने सँभाल लिया। दुबे ने अपनी पचास वर्ष लंबी रंग-यात्रा के आरंभिक दौर में चेख़व, पिरेंदेलो, कामू, सार्त्र, पिंटर और इब्सन-जैसे विश्वप्रसिद्ध नाटककारों की श्रेष्ठ रचनाओं के हिंदी अनुवाद एवं रूपांतर अभिमंचित किए। परंतु 1962 में धर्मवीर भारती के काव्य नाटक *अंधायुग* के मुक्ताकाशी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सफल प्रदर्शन ने सत्यदेव दुबे ही नहीं, समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच की दशा और दिशा भी बदल दी। सितंबर 1954 में रचित *अंधायुग* को अब तक नई कविता की उपलब्धि, एक साहित्यिक रेडियो नाटक या एक लंबी नाटकीय कविता ही माना जाता था। सत्यदेव दुबे की यह प्रस्तुति समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच की एक ऐसी क्रांतिकारी घटना सिद्ध हुई, जिसने *अंधायुग* को एक आधुनिक क्लासिक रंग-नाटक और दुबे को एक मौलिक और महत्त्वपूर्ण रंग-प्रतिभा के रूप में राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया।

इसके बाद सत्यदेव दुबे 'थियेटर यूनिट' के पर्याय बन गए और इन्होंने भारतीय रंगमंच के बहुसंख्य उत्कृष्ट एवं नए मौलिक नाट्यालेखों के हिंदी अनुवादों के प्रभावशील अभिमंचन किए। हिंदी के अतिरिक्त इन्होंने मराठी, गुजराती और अंग्रेज़ी भाषाओं में भी रंगकर्म किया। इनकी प्रस्तुतियों में कथ्य और शिल्प का रोचक वैविध्य है। नाट्य-प्रदर्शन के विविध पक्षों के परिकल्पन, निर्देशन, अनुवाद और उनमें अभिनय करने के अतिरिक्त मौलिक नाट्य-लेखन एवं फ़िल्म-निर्माण के क्षेत्र में भी इन्होंने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के पुष्ट प्रमाण दिए। इन्होंने *संभोग से संन्यास तक* (1975), *अप्रत्याशित* (1978) *आड़ा-चौताल* (1982) और *इंशा अल्लाह* (1996) के लेखन के अतिरिक्त हिंदी में *अपरिचय के विंध्याचल* और मराठी में *शांतता! कोर्ट चालू आहे* नामक दो फ़िल्मों का निर्माण भी किया। *शांतता! कोर्ट चालू आहे* को महाराष्ट्र सरकार के पुरस्कार के अतिरिक्त वेनिस के फ़िल्म महोत्सव में 'क्रिटिक अवार्ड' से भी नवाज़ा गया। लेकिन ये फ़िल्में रिलीज़ नहीं हो सकीं। दो-एक वर्षों में ही फ़िल्म-जगत से इनका मोहभंग हो गया और ये हमेशा के लिए अपने प्रथम प्रेम—थियेटर के पास लौट आए।

रंगकर्म के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य करने के आधार पर इन्हें 'होमी भाभा फ़ेलौशिप' प्रदान की गई। इसके अंतर्गत इन्होंने रंगमंच और सिनेमा के रचनात्मक तत्त्वों के संश्लेषण की संभावना पर शोध कार्य किया। इसके परिणामस्वरूप दुबे की दिलचस्पी शैली एवं माध्यम की नितांत शुद्धता पर नहीं रही और इन्होंने अपने रंगकर्म में सिनेमा के कई लोकरंजक तत्त्वों का सार्थक और सर्जनात्मक उपयोग किया। इस दृष्टि से फ़िल्म-संगीत और गानों का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय है। इसे आधुनिक शहरी समाज का लोक-संगीत मानते हुए दुबे ने अपनी अधिकतर प्रस्तुतियों में इस्तेमाल किया। सामान्य दर्शक इसका भरपूर मज़ा लेते थे, परंतु रंगकर्म के शुद्धतावादी समीक्षक ऐसे प्रयोगों को व्यावसायिकता का बंबइया दबाव या फ़िल्मी प्रभाव मानकर हमेशा दुबे की तीखी आलोचना करते रहे। जबकि व्यावसायिक रंगमंच के मुक़ाबले दुबे ने जीवन भर कलात्मक शौक़िया रंगकर्म की हिमायत की। उनका मानना था इसी मंच पर समझौते किए बिना, मौलिक रंग-प्रयोगों के ख़तरे उठाए जा सकते हैं।

पं. सत्यदेव दुबे मानते थे कि रचनाकार की सृजनात्मकता उसकी बौद्धिकता से श्रेष्ठ होती है। वह नाटककार की अपेक्षा नाटक पर अधिक भरोसा करते थे। इसीलिए वह अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों के निर्देशकीय लिखना पसंद नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी कि 'निर्देशकीय नाटक नष्ट करने का सर्वोत्तम हथियार है।' उनका विश्वास था कि बतौर निर्देशक वह नाटककार के मुक़ाबले नाटक को ज़्यादा अच्छी तरह समझते हैं। इसी समझ के चलते वह नए मौलिक नाटकों का चुनाव करके उनमें मनचाही छेड़छाड़ करते थे। उनका यह भी मानना था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कि नाटककार अपने नाटक में जो कहना चाहता था और ठीक से कह नहीं पाया, वह अपनी प्रस्तुति में उसी अव्यक्त को व्यक्त करने का ही प्रयास करते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने यह बात कई बार कही है कि ''नाटक के साथ मेरा रिश्ता पति-पत्नी जैसा है। नाटककार अपनी रुचि के अनुसार यह स्वयं तय कर ले कि मैं पति हूँ या पत्नी—किसी भी स्थिति में मैं दाई नहीं हूँ।'' नाटक की इस पुनर्रचना के लिए नाटककार के साथ समान अधिकार का दावा करते हुए दुबे पर नैतिक साहस के साथ यह भी कहते हैं कि ''इस प्रक्रिया में यदि नाटक सफल होता है तो इसका सर्वाधिक श्रेय नाटककार को मिलना चाहिए, उसके बाद अभिनेताओं को और निर्देशक के रूप में मैं सहर्ष तीसरा स्थान लेना चाहूँगा। परंतु यदि नाटक असफल होता है तो उसकी पूरी ज़िम्मेदारी मेरी होगी। उसे मैं किसी के साथ नहीं बाँटूँगा।'' ये दुबे का आत्मविश्वास है, अहंकार या उनकी उदारता, महानता—तय करना आसान नहीं है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि रचनाकार की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए वह निस्संकोच कोई भी ख़तरा उठा सकते थे और इस लड़ाई में कहीं तक भी जा सकते थे। इस प्रसंग में उनके नैतिक साहस और दुस्साहसी व्यक्तित्व का प्रमाण विजय तेंडुलकर के नाटक *गिधाड़े* के प्रथम मराठी प्रदर्शन के घटनाक्रम में दुबे की भूमिका में देख सकते हैं।

जून 1962 में रंगमंच और फ़िल्मों के सुविख्यात अभिनेता डॉ. श्रीराम लागू ने विजय तेंदुलकर के नए नाटक *गिधाड़े* की पांडुलिपि पढ़ी तो उस हिंस्र और उत्तेजक नाटक से अत्यंत विचलित और बेचैन हो गए। उन्हें लगा कि उसे तुरंत किए बिना एक पल चैन नहीं आएगा। परंतु 'प्रोग्रेसिव ड्रामेटिक एसोसिएशन' तथा 'रंगायन' जैसी प्रगतिशील एवं नए रंग-प्रयोगों के लिए प्रतिबद्ध नाट्य-संस्थाओं ने उस नाटक को करने की स्वीकृति नहीं दी। मराठी की कोई और शौक़िया या व्यावसायिक संस्था भी इस आक्रामक एवं विवादास्पद नाटक को करने के लिए तैयार नहीं हुई। इसी तरह पाँच-छह वर्ष बीत गए। 1969 में डॉ. लागू सत्यदेव दुबे के निर्देशन में *आधे अधूरे* के मराठी अनुवाद में मुख्य भूमिका निभा रहे थे। उसी दौरान *गिधाड़े* को करने के लिए व्यग्र डॉ. लागू की तीव्र इच्छा दुबे को पता चली। गंभीरतापूर्वक पल भर सोचकर दुबे ने न केवल उन्हें 'थियेटर यूनिट' से करने की स्वीकृति दी बल्कि उसकी निर्मिति की चुनौती भी स्वयं स्वीकार की। नाटक को सेंसर बोर्ड के पास भेजा गया। उसने लगभग डेढ़ सौ आपत्तिजनक शब्दों (गालियों) को हटाने का आदेश दिया। इस आदेश का अर्थ था—'गिद्धों के नाटक को चिड़िया का नाटक' बनाकर पेश करना। डॉ. लागू को यह क़तई मंजूर नहीं था—वे निराश हो गए। परंतु दुबे ने साहसपूर्वक कहा कि सेंसर के आदेश को नज़र अंदाज़ करके जैसे अच्छा लगे वैसे ही करें—जो होगा देखा जाएगा। दर्शकों द्वारा अस्वीकृत किए जाने की स्थिति में दुबे पाँच प्रदर्शनों का आर्थिक नुक़सान सहने को भी तैयार हो गए। 30 मई, 1970 को तेजपाल प्रेक्षागृह में इसके प्रथम प्रदर्शन ने पक्ष-विपक्ष में तीव्र प्रतिक्रियाएँ पैदा कीं। गिरिश कर्नाड के शब्दों में : ''इसके मंचन से ऐसे लगा जैसे किसी शांत मनुष्यों से भरे बाज़ार में अचानक बम विस्फोट हो गया हो।''

सत्यदेव दुबे के दुस्साहसी प्रयास का परिणाम अत्यंत सफल रहा, परंतु उन्हें लगभग डेढ़ साल तक सेंसर बोर्ड से लगातार संघर्ष करना पड़ा। दुबे हमेशा अपने किए काम की पूरी ज़िम्मेदारी लेते थे और उसका फल भुगतने को तैयार रहते थे।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पं. सत्यदेव दुबे अपने रंगकर्म में न तो इब्राहिम अल्काज़ी और अलीक पद्‌मसी की तरह पूर्णतः अनुशासनबद्ध थे, न ब.व.कारंत और हबीव तनवीर की तरह उत्सवधर्मी। उनकी नाट्य-प्रस्तुतियों में भव्य और महँगे दृश्यांकन, ख़र्चीले लाइव संगीत और प्रचुर धन-साध्य आधुनिक तकनीकी उपकरणों के जादुई प्रभाव देखने को नहीं मिलते थे। उनके प्रदर्शनों में बाहरी तड़क-भड़क और टीम-टाम का भी अभाव होता था। यही कारण है कि नौवें दशक के अंत तक वह ढाई-तीन हज़ार रुपये में ही आकर्षक नाट्य-प्रस्तुतियाँ सफलतापूर्वक कर लेते थे। उस दौर में उनका सबसे महँगा प्रदर्शन भी लगभग सात हज़ार रुपये में हो गया था। सिनेमा-संगीत और फ़िल्मी-गानों के इस्तेमाल के पीछे भी उनकी यही मितव्ययी दृष्टि रहती थी। यही कारण है कि कालांतर में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल, (दिल्ली) के साथ नाटक करने के अपने अनुभव को वह विलासिता और अय्याशी समझते थे।

पं. सत्यदेव दुबे की निजी रंग-दृष्टि के निर्माण में उनकी मौलिक सोच-समझ अव्यवस्थित व्यक्तित्व और सीमित आर्थिक साधनों के साथ-साथ समकालीन परिवेश और परिस्थितियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने सोच-समझकर अधिकतर नए मौलिक नाट्यालेखों का चुनाव किया, जिससे कि वह अपनी सूझ-बूझ और रचनात्मकता से उनमें बहुत कुछ जोड़-घटाकर उन्हें पुनर्सृजित कर सकें। इससे मौलिक नाट्य-लेखन को बढ़ावा भी मिलता था और शायद स्वयं को नाटककार के समकक्ष या उससे कुछ ऊपर मानकर उनका अहं भी संतुष्ट होता था। दुबे के व्यक्तित्व की अव्यवस्था और लापरवाही उनके काम के तरीक़े में भी झलकती थी। इनकी निर्देशन-प्रक्रिया अनुशासनबद्ध नहीं थी। नाटक के पूर्वाभ्यास से पहले कुछ भी सुनिश्चित और निर्धारित नहीं होता था। प्रस्तुति पूर्वाभ्यास के दौरान किए जाते इंप्रोवाइज़ेशनों के सहारे अपना रूपाकार ग्रहण करती थी। दुबे ने 'इनैक्ट' को दिए गए एक साक्षात्कार में स्वयं भी स्वीकार किया था कि, ''यह सच है कि मैं सदा उसी दिशा में अग्रसर रहता हूँ जहाँ मैं जाना चाहता हूँ, लेकिन यह ज़रूरी नहीं कि मुझे उस दिशा का ज्ञान हो।''

सत्यदेव दुबे ने सदैव विपरीत परिस्थितियों में रंगकर्म किया—कभी आदर्श स्थितियों की प्रतीक्षा नहीं की। थियेटर के अर्थशास्त्र पर हमेशा उनकी नज़र रही। बड़े-बड़े यथार्थवादी महँगे दृश्यांकन के बजाय उन्होंने सांकेतिक, प्रतीकात्मक और व्यावहारिक दृश्य-बंध लगाकर उनका कल्पनाशील प्रयोग किया। *अंधायुग* और *तुग़लक* को छोड़कर, संभवतः इसीलिए, दुबे ने और किसी बड़े पौराणिक या ऐतिहासिक नाटक (कॉस्ट्यूम प्ले) का अभिमंचन नहीं किया। विजय तेंदुलकर के क्रूर नाटक *बेबी* के अपवाद को छोड़कर, उन्होंने अपने नाटकों में कभी महँगे आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का प्रयोग भी नहीं किया। *बेबी* में भी फ़िल्म-प्रोजेक्टर का इस्तेमाल इसलिए करना पड़ा क्योंकि नाटक के फ़िल्म-स्टूडियो वाले दृश्य को दिखाने के लिए यह अनिवार्य था। मितव्ययता की दृष्टि से ही दुबे लाइव के बजाय टेपांकित-संगीत का उपयोग करते थे। फ़िल्मी गीत-संगीत के प्रयोग के लिए अकसर उनकी कटु आलोचना की जाती रही है। प्रस्तुति की माँग पर कई बार उन्होंने शास्त्रीय संगीत का इस्तेमाल भी किया था। इस मामले में बजट के साथ-साथ उनका ध्यान इस बात पर भी रहता था कि संगीत प्रस्तुति में अलंकरण के बजाय नाट्य-स्थितियों और चरित्रों की मनःस्थितियों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उभारने के लिए एक ज़रूरी तत्त्व की तरह प्रयोग हो। वह बिना ख़र्च और आसानी से उपलब्ध हो। और सबसे बड़ी बात यह कि वह सामान्य दर्शक के लिए सहज संप्रेष्य हो।

दुबे अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों में उत्सवधर्मिता के भी विरुद्ध थे। आर्थिक कारण के अतिरिक्त उनके विरोध का एक बड़ा कारण उनकी यह मान्यता थी कि प्रदर्शन की आनुष्ठानिकता में नाटक के गंभीर मंतव्य एवं तनाव के खो जाने का ख़तरा हमेशा बना रहता है। इसलिए वह रंगकर्म की इस विशेषता को हमेशा संदेह की नज़र से देखते थे।

यहाँ यह देखना दिलचस्प होगा कि अपनी भीतरी और बाहरी इन अनेक सीमाओं को पं. सत्यदेव दुबे ने अपनी शक्ति कैसे बनाया? उनके रंगकर्म की मूलभूत सकारात्मक विशेषताएँ क्या थीं? इस संदर्भ में सबसे पहली और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने तकनीक-समृद्ध और भव्य प्रदर्शनीयता वाले शाह-ख़र्च रंगमंच को नकारकर अभिनेता और शब्द केंद्रित कलात्मक, सादे तथा कमख़र्च रंगकर्म करने का मौलिक प्रयास किया। दरअसल, जब हम रंगमंच के एक-एक तत्त्व को हटाते हुए उसके मूल तक पहुँचते हैं, तो वहाँ सिर्फ़ अभिनेता से ही हमारा साक्षात्कार होता है। प्रेक्षागृह, दृश्यांकन, वस्त्राभूषण, रूप-सज्जा, नाट्य-संगीत, छायालोक—यहाँ तक कि निर्देशक और नाटककार को भी क्रमशः छोड़ते जाने के बावजूद यदि रंगमंच बचा रहता है तो उसका एकमात्र कारण है—अभिनेता या अभिनय। बाक़ी सबकुछ होते हुए भी, अभिनेता के बिना, रंगमंच का अस्तित्व ही ख़त्म हो जाता है। यही कारण है कि दुबे ने अपने रंगकर्म को अभिनेताश्रित बनाया। यह संयोग नहीं है कि अलग-अलग समय पर मुंबई रंगमंच के बड़े-बड़े अभिनेता इनके साथ सहर्ष जुड़े और उनमें से कई बाद में फ़िल्म और टीवी के प्रसिद्ध कलाकार बने। दुबे के निर्देशन में अपनी अभिनय-कला का श्रेष्ठ प्रदर्शन करनेवाले हिंदी-मराठी-अंग्रेज़ी रंगमंच के अमरीश पुरी, अमोल पालेकर, श्रीराम लागू, मानवेंद्र चिटनिस, नसीरूद्दीन शाह, शफ़ी इनामदार, दीना पाठक, सुलभा देशपांडे, सुनीला प्रधान, भक्ति बर्वे, सोनाली कुलकर्णी, सुहास जोशी, रत्ना पाठक शाह और सुनील शानबाग इत्यादि का नाम लिया जा सकता है। दिल्ली के राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल के उत्तरा बावकर, सीमा बिस्वास, डॉली अहलूवालिया, हरविन्दर कौर, श्रीवल्लभ व्यास, जी.पी. नामदेव, अनंग देसाई, अनुपम श्याम और यशपाल शर्मा-जैसे अनेक चर्चित अभिनेताओं ने भी दुबे के निर्देशन में अपनी-अपनी अभिनय-प्रतिभा का प्रभावी प्रदर्शन किया था। निर्देशक के रूप में दुबे अपने अभिनेता को उत्साह से भर देते थे। वह उसे चरित्र के विविध पक्षों को गहराई से समझने और किसी स्थिति विशेष में उसकी शारीरिक एवं मानसिक प्रतिक्रियाओं को जीवंतता से अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित करते थे। उनके निर्देशन में भाषा और संवाद की बारीकियों पर अधिक बल रहता था। वह चरित्र का अपना विश्लेषण प्रस्तुत करने के बाद चरित्रांकन के लिए अभिनेता को स्वतंत्र छोड़ देते थे। वह उसे अपनी अधिकतम ऊर्जा के प्रयोग के लिए उकसाते थे। इसी प्रक्रिया के कारण अभिनेता न तो उनकी नक़ल करते हुए प्रतीत होते थे और न निर्देशक ही कठपुतली की तरह व्यवहार करते थे। इसीलिए दुबे के अभिनेताओं के अभिनय में विविधता, ताज़गी और निजता के दर्शन होते थे।

अभिनेता और अभिनय के अभिन्न अंग के रूप में दुबे के रंगकर्म की एक और बुनियादी विशेषता, भाषा के प्रति उनकी गहरी संवेदनशीलता से जुड़ी है। उस समय की युवा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पीढ़ी के अधिकतर रंगकर्मियों के मन में नाटककार के प्रति कोई सम्मान भाव नहीं था। वे रंग-विशेषज्ञ रंगकर्मी नाटककार को 'रंगमंच से बाहर का व्यक्ति' सिद्ध करने में लगे थे। उनमें से ही कुछेक ने, आठवें दशक के उत्तरार्द्ध तक पहुँचते-पहुँचते, रंगकर्म से नाटककार और नाट्यालेख की ज़रूरत को ही नकारने का प्रयास किया। उन्हें यह विश्वास हो चला था कि अभिनेता, नाटककार के शब्दों के बिना भी, सिर्फ़ निर्देशक के सहयोग के बल पर ही एक आकर्षक प्रदर्शन कर सकता है। परंतु उस शब्द-विरोधी समय में भी पं. सत्यदेव दुबे यह अच्छी तरह जानते थे कि नाटककार के शब्द और विचार के अभाव में, ऐसा प्रदर्शन कितना ही रोचक और मनोरंजक हो, दर्शक के मन में कोई गहन, गंभीर, मर्मस्पर्शी और देर तक रहनेवाला उत्तेजक नाट्यानुभव उत्पन्न नहीं कर सकता। दुबे की दृष्टि में रंगमंच का प्रयोजन दर्शक की आंतरिक जड़ताओं को तोड़कर उद्वेलित करना और उसे नए अनुभव एवं मूल्य-बोध से जोड़ना था। शायद इसीलिए उन्होंने अपनी रंग-यात्रा के आरंभ में ही साहस के साथ ये घोषणा कर दी थी कि 'मेरे नाटकों में प्रस्तुत संसार अनिवार्यतः शब्दों से रचित संसार ही होगा।' और सचमुच उनका व्यक्तित्व और रचना कर्म नाटकीय-काव्य एवं शब्द-रस से ही संस्कारित हुआ था।

आधुनिक हिंदी रंगकर्म के ऐसे दौर में जब प्रभावशाली दृश्यांकन, वस्त्राभूषण, रूप-सज्जा, छायालोक, संगीत/ध्वनि-प्रभाव तथा कौशलपूर्ण आंगिक अभिनय को ही संपूर्ण रंगमंच मान लिया गया या ऊर्जाविहीन गीत, संगीत, नृत्य और विविध लोक-शैलियों के अराजक संयोग की 'फ़ोक' बाज़ी समकालीन भारतीय रंगकर्म का पर्याय बन गई। मनोशारीरिक रंगमंच आया तो शेष सभी कुछ छूट गया। ऐसे में सत्यदेव दुबे से दो-एक विरल रंगकर्मियों ने अभिनय में वाचिक के खोए हुए महत्त्व को पुनर्प्रतिष्ठित करने का ऐतिहासिक काम किया।

सत्यदेव दुबे ने चार भाषाओं में रंगकर्म किया। इसलिए उनकी नाट्य-प्रस्तुति की भाषा चाहे हिंदी या उर्दू हो, मराठी, गुजराती या अंग्रेज़ी—वह शब्दों के लक्षणा-व्यंजनामय अर्थ-बोध, उनके शुद्ध उच्चारण, नाद-सौंदर्य कथा उनकी नाटकीय काव्यात्मकता एवं लयात्मकता के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे। संवादों में शब्दों के बलाघात या आरोह-अवरोह, निरर्थक ध्वनियों, नाटकीय विराम एवं बहुअर्थगर्भी मौन का सार्थक प्रयोग करना वह जानते थे। दुबे प्रत्येक चरित्र के अपने ख़ास स्वर और लहज़े तथा अभिनेता की आवाज़ के टेक्सचर और उसकी टोन का रचनात्मक उपयोग करते थे। उनके अभिनेताओं के संवाद और उनके आरोह-अवरोह प्रेक्षागृह की अंतिम पंक्ति के कोने में बैठ प्रेक्षक को भी साफ़ सुनाई देते थे। भाषा और संवादों की इन तमाम विशेषताओं को पूरी तरह ध्यान में रखकर ही वह कठोर पूर्वाभ्यास कराते थे। 'इंप्रोवाइज़ेशंस' करने की प्रक्रिया में संवादों के कई शब्दों और वाक्यों की संरचना में कुछेक परिवर्तन करने के बावजूद वह नाटककार और नाट्यालेख के प्रति पूरा सम्मान-भाव रखते थे।

दुबे के रंग-जीवन में समय-समय पर शेक्सपीयरियन, यथार्थवादी, शास्त्रीय, परंपराशील, लोकधर्मी, एब्सर्ड, परिवेशपरक, सांगीतिक, मनोशारीरिक, नुक्कड़ और ब्रेख़्तियन-जैसी विविध रंग-शैलियों के दौर आए और गए। परंतु उन्होंने थियेटर कभी 'फ़ैशन' के लिए नहीं किया—

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमेशा अपने 'पैशन' के लिए ही किया। उनके द्वारा चुने और किए गए नाटकों में कथ्य और शिल्प का दिलचस्प वैविध्य उनके समय के गंभीर एवं सार्थक रंगकर्म की संपूर्ण झलक पेश करता है।

सत्यदेव दुबे के रंगमंच के अध्येता और अनुसंधाताओं की सुविधा के लिए उनके द्वारा अभिमंचित नाटकों की एक सूची कालक्रम से यहाँ प्रस्तुत की जा रही है :

नाटक शीर्षक	नाटककार	भाषा	वर्ष
द प्रपोज़ल (शादी का प्रस्ताव)	चेख़व	अंग्रेज़ी	1956
अंदाज़	लार्ड डंसे	अंग्रेज़ी	1956
राइट यू आर, इ.फ यू थिंक यू आर (सच्चाई क्या है?)	लुई पिरेंदेलो	अंग्रेज़ी	1960
अंधायुग	धर्मवीर भारती	हिंदी	1961
सुनो कबीरा	प्रबोध जोशी	हिंदी	1962
इंक़लाब	उगो वीटी	अंग्रेज़ी	1963
द केयरटेकर (चौकीदार)	हैरॉल्ड पिंटर	अंग्रेज़ी	1963
आषाढ़ का एक दिन	मोहन राकेश	हिंदी	1964
नो एग्ज़िट (बंद दरवाज़े)	ज्याँ पॉल सार्त्र	अंग्रेजी	1965
द घोस्ट (प्रेत)	इब्सन	अंग्रेज़ी	1966
केलु जनमेजय (सुनो जनमेजय), ऊलजुलूल	आद्य रंगाचार्य	कन्नड	1966, 1980
ययाति	गिरीश कर्नाड	कन्नड	1967
हयवदन	गिरीश कर्नाड	कन्नड	1972
हिन्न हुंज (बलि)	गिरीश कर्नाड	कन्नड	1984
शुतुरमुर्ग	ज्ञानदेव अग्निहोत्री	हिंदी	1968
आधे अधूरे	मोहन राकेश	हिंदी	1969
एवम् इंद्रजित	बादल सरकार	बाड्ला	1970
पगला घोड़ा	बादल सरकार	बाड्ला	1971
संभोग से संन्यास तक	सत्यदेव दुबे	हिंदी	1975 1996
अप्रत्याशित, इंशा अल्लाह	विजय तेंदुलकर	मराठी	1978
अशी पाखरे येती (आहा पंछी ऐसे आते हैं)	विजय तेंदुलकर	मराठी	1980
स्टील फ्रेम	विनायक पुरोहित	गुजराती	1977
अरे मायावी सरोवर	शंकर शेष	हिंदी	1977
अबे बेवक़ूफ़	स्लैवोमिर मारज़ेक		1978
जो कुमारस्वामी (और तोता बोला)	चंद्रशेखर कंबार	कन्नड	1979

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रक्त पुष्प (आरक्त क्षण)	महेश एलकुंचवार	मराठी	1981
प्रतिबिंब	महेश एलकुंचवार	मराठी	1986/90
वाड़ा चिरेबंदी (विरासत)	महेश एलकुंचवार	मराठी	1985
चाणक्य विष्णु गुप्त	जी.पी. देशपांडे	मराठी	1988
अरण्य	वसंत देव	हिंदी	1984

इनमें बारह हिंदी के मौलिक नाटक थे और आठ मराठी, छह कन्नड, तीन बाङ्ला, एक गुजराती और नौ विदेशी नाटकों के हिंदी अनुवाद थे। इनमें से *अंधायुग* के तीन, *और तोता बोला* के तीन तथा *पगला घोड़ा* और *प्रतिबिंब* के दो-दो प्रस्तुतीकरण किए गए। स्पष्ट है दुबे जी ने हिंदी में लगभग चालीस नाटकों की पैंतालीस प्रस्तुतियाँ की और बहुसंख्य प्रदर्शन किए।

इसी प्रकार उन्होंने सोलह भारतीय नाटकों को मराठी में पेश किया। इनमें नौ मूल मराठी के, तीन हिंदी, दो कन्नड और दो बाङ्ला नाटकों के अनुवाद थे। इनकी भाषावार नाट्य-प्रस्तुतियों की सूची इस प्रकार है—मराठी के मौलिक नाटकों में अच्युत बझे का *सो.फ़ा-कम-बेड* (1975), महेश एलकुंचवार के *रक्त पुष्प* (1981) तथा *प्रतिबिंब* (1987), जी.पी. देशपांडे का *अंधार यात्रा* (1987) और अज्ञात नाटककारों के *पुनश्च हरिओम, कारवेत कलासा, मिठू मिठू पोपट, याकृत, अविनाश एक ध्यास* ; हिंदी से मोहन राकेश के *आधे अधूरे* (1970), ज्ञानदेव अग्निहोत्री के *अनुष्ठान* (1972), स्वयं सत्यदेव दुबे के *संभोग से समाधि तक* (1975), बाङ्ला से बादल सरकार के *बल्लभपुर की रूपकथा* (1969) तथा *पगला घोड़ा* (1971), और कन्नड से गिरीश कर्नाड के *ययाति* (1971) एवं *तुग़लक* (1989)। इसी तरह गुजराती रंगमंच पर भी दुबे ने विजय तेंडुलकर के मराठी नाटक *सखाराम बाइंडर* (1973) के अनुवाद तथा *आ माणस मदरासी लागे छे* (1978) नामक गुजराती के एक मौलिक नाटक की प्रस्तुतियाँ भी कीं।

हिंदी, मराठी और गुजराती के अतिरिक्त अंग्रेज़ी रंगमंच पर भी इन्होंने जॉर्ज बर्नाड शॉ के *डॉन जुआँ इन हेल* तथा द *विलेज वुइंग,* विली रसल के *एजूकेटिंग रीटा,* जैरोम किल्टी के *डियर लायर* एडमंड रॉस्टैंड के *सायोरैन डी बर्जरेक* -जैसे कुछ नाटकों का मंचन भी किया। चार भाषाओं के रंगमंच पर 68 नाट्य-प्रस्तुतियों की इस अधूरी सूची के आधार पर भी पं. सत्यदेव दुबे की बहुमुखी प्रतिभा और व्यापक रंग-सक्रियता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इनके रंगकर्म पर एक विहंगम दृष्टि डालने पर इस सत्य का उद्घाटन स्वतः हो जाता है कि इन्होंने हिंदी के नए मौलिक नाटकों के साथ-साथ मराठी, बाङ्ला, कन्नड, गुजराती और अन्य देशों के उत्कृष्ट नाटकों को हिंदी रंगमंच पर प्रस्तुत करके और मराठी के नए मौलिक नाटकों के साथ-साथ हिंदी, बाङ्ला तथा कन्नड के श्रेष्ठ नाटकों को मराठी रंगमंच पर अभिमंचित करके आधुनिक भारतीय रंगकर्म में पारस्परिक आदान-प्रदान एवं मेल-मिलाप की ज़रूरी प्रक्रिया में योगदान देकर एक प्रबुद्ध रंगदूत के रूप में अपनी सार्थक और रचनात्मक भूमिका का सम्यक् निर्वाह भी किया था।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कथ्य की दृष्टि से देखें तो स्त्री-पुरुष संबंधों के नाटकों में इनकी विशेष दिलचस्पी दिखाई देती है। परंतु राजनीतिक सरोकारों के नाटक भी इन्होंने कम नहीं किए। व्यक्तिगत स्तर पर दुबे की आस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की हिंदुत्ववादी विचारधारा के प्रति थी और विडंबना यह है कि इनके द्वारा किए गए लगभग सभी नाटकों का मूल स्वर साम्यवादी विचारधारा के आसपास का है। परंतु यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि नाट्यालेखों के मूल स्वरूप का कायांतरण तक कर देने के लिए कुख्यात रहे नाट्य-निर्देशक के रूप में दुबे ने अपनी राजनीतिक मान्यताओं को कभी अपनी नाट्य-प्रस्तुतियों पर आरोपित करने का प्रयत्न नहीं किया। राजनीतिक पक्षधरता और नाटक के कलात्मक लालित्य के बीच विरोध होने की स्थिति में उन्होंने हमेशा नाटककार के मंतव्य और कलात्मक सौंदर्य का ही पक्ष लिया। *अच्छा, एक बार और* (*राजरक्त* / गिनीपिग), *और तोता बोला, रास्ते* तथा *अंधार यात्रा* -जैसी प्रस्तुतियों में इस सत्य को प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है। उन्होंने अपनी पूरी छेड़छाड़ एवं दख़लंदाज़ी के बावजूद अपनी किसी भी प्रस्तुति में नाटककार की जीवन-दृष्टि और रंग-सृष्टि के आंतरिक सत्य के प्रति अन्याय नहीं होने दिया।

पं. सत्यदेव दुबे के व्यक्तित्व और रचनाकर्म में एक आवेग, बेचैनी, बेसब्री और रचनात्मक व्यग्रता थी। उनमें अपने कृतित्व को हिंदी साहित्य के रीतिकालीन कवियों-जैसी बारीक कारीगरी और नफ़ीस पच्चीकारी करके उसे सजाने-सँवारने का धैर्य नहीं था। उनके जीवन और रंगकर्म में एक ख़ास तरह की उतावली एवं लापरवाही झलकती थी। इस संदर्भ में प्रख्यात अमरीकी कवि और कला-मर्मज्ञ जॉन एशबरी का वह कथन याद आता है, जहाँ वह कहते हैं, ''ज़्यादातर लापरवाह चीज़ें किसी रूप में सुंदर होती हैं, और लापरवाही है जो प्रायोगिक कला को सुंदर बनाती है।'' उनके व्यक्तित्व का आकर्षण और रंग-प्रयोगों का सौंदर्य काफ़ी हद तक उनकी इस लापरवाही पर भी टिका था। यह भी संभव है कि वह अपनी इस 'लापरवाही' की बहुत गंभीरता से 'परवाह' करते रहे हों!

ताउम्र विवादास्पद बने रहने के बावजूद पं. सत्यदेव दुबे को उनकी एकनिष्ठ, कल्पनाशील, समर्पित और उत्प्रेरक रंग-प्रतिभा को पुरस्कार एवं सम्मान भी कम नहीं मिले। 1972 में इन्हें संगीत नाटक अकादमी की ओर से सर्वश्रेष्ठ निर्देशन के लिए पुरस्कृत किया गया। 1973 में मध्य प्रदेश कला परिषद् ने श्रेष्ठ रंगकर्मी के रूप में सम्मानित किया तो 1981 में इनकी सतत एवं प्रतिबद्ध रंग-साधना को देखते हुए मध्यप्रदेश सरकार ने इन्हें 'शिखर पुरस्कार' से अलंकृत किया। 1999 में इन्हें 'राष्ट्रीय कालिदास सम्मान' भी प्रदान किया गया। श्याम बेनेगल की सुप्रसिद्ध कला-फ़िल्म 'भूमिका' की सर्वश्रेष्ठ पटकथा के लिए इन्हें राष्ट्रीय पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था।

अपने बड़बोले, मुँहफट और आक्रामक स्वभाव के चलते पं. सत्यदेव दुबे के बहुआयामी रचनाकर्म का उनके जीवन काल में निष्पक्ष एवं उचित मूल्यांकन नहीं हो सका। परंतु विश्वास करना चाहिए कि भविष्य में काल और इतिहास की निर्मम किंतु निस्संग दृष्टि आधुनिक हिंदी/भारतीय रंगमंच में इनके मूल्यवान योगदान का सम्यक् मूल्यांकन करेगी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समीक्षा

हीरालाल नागर

गपशप के बीच काशीनाथ सिंह

ऐसा कम ही होता है कि कोई किताब पहली नज़र में ही अपने शीर्षक से पाठक को आकर्षित कर ले और अपनी विषयवस्तु के चलते पढ़ने को बाध्य करे। *गपोड़ी से गपशप* ऐसी ही किताब है, जिसमें 'काशीनाथ सिंह से संवाद' के अंतर्गत अलग-अलग लेखकों और पत्रकारों द्वारा लिए गए साक्षात्कारों को युवा आलोचक पल्लव ने संपादित किया है। इससे शायद ही किसी को इंकार होगा कि काशीनाथ सिंह आज के बहुचर्चित और बहुपठित कथाकार हैं। अपने निर्भीक और निर्द्वन्द्व विचारों के कारण विवादास्पद भी रहते हैं।

कुमार संभव के साथ अपने पहले ही इंटरव्यू में काशीनाथ विचारोत्तेजक मुद्रा अख़्तियार करते हैं। वे जो भी कहते हैं—बेबाक और सधा हुआ कहते हैं। सन् 1960 के बाद के कथा-लेखन में काशीनाथ सिंह अपने कुछ साथी कथाकारों पर तोहमत भी लगाते हैं और बताते हैं कि उनके दौर में कहानी आकर शहरी मध्यवर्ग, निम्न मध्यवर्ग तक सीमित हो गई थी। हालत यह थी कि गाँव में पैदा हुए लेखक कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, चंडीगढ़—चाहे जहाँ चले गए हों—शहरी मध्यवर्ग को कहानी का स्वीकृत विषय बना चुके थे। जहाँ से आए थे, वहाँ से कटकर ग़लत चीज़ें लिख रहे थे। लेकिन वे अपने सबसे विश्वसनीय साथी कथाकार की तारीफ़ भी करते हैं। यहाँ साठ के बाद के कथा-इतिहास को जानना और समझना कम दिलचस्प नहीं लगता है, क्योंकि सवालों के जवाब देते हुए काशीनाथ सिंह झिझकते नहीं, खुलकर बोलते हैं : ''पारिवारिक ज़िम्मेदारियों से भागा लेखक सच्चे अर्थों में लेखक नहीं हो सकता। माँ-बाप, बीवी, बेटी जिसके पास नहीं होते, वे ही चिड़ियों, पहाड़ों पर कविता-क़िस्से लिखा करते हैं, मानवीय रिश्तों के बारे में लिखना उनके वश का नहीं होता।''

काशीनाथ सिंह का उपन्यास या कथा-संग्रह *काशी का अस्सी* जब छपा तो हड़कंप पैदा करनेवाली चर्चा की शुरुआत हुई। श्लील

जन्म : 1951। कहानी, कविता और उपन्यास प्रकाशित। संपर्क : बी-174/41-सी, सादतपुर विस्तार, गली नं. 2, दिल्ली-110094; मो. 9868558785.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और अश्लील के मुद्दे पर बहस ही छिड़ गई। लेकिन काशीनाथ सिंह के हिस्से में चर्चा का परचम ही हाथ आया। ज्यों-ज्यों उन पर आरोप मढ़े गए, उनकी प्रसिद्धि सातवाँ आसमान छूने को उतावली होने लगी। हिंदी कथा-साहित्य में यथार्थ की नई फ़ैंटेसी रचनेवाले काशीनाथ सिंह के साथ आलोचक गोपेश्वर सिंह की एक महत्त्वपूर्ण बातचीत में उनका यह कहना निरर्थक नहीं लगता, ''देखा यह जाना चाहिए कि कोई ख़ास बात न हो। 'माँ-बहन' की गालियाँ दी जाती हैं, लेकिन उनसे कोई अर्थ नहीं निकलता। उनका कोई क्रियात्मक अर्थ नहीं होता, सिर्फ़ भड़ास होती है।''

कथाकार काशीनाथ सिंह को आलोचक प्रवर नामवर सिंह का भाई होने का कितना ख़ामियाजा उठाना पड़ा—काशीनाथ सिंह से ज़्यादा कोई नहीं जानता, मगर वे अपने एक साक्षात्कार में इस सच्चाई को कुछ इस तरह बयान करते हैं : ''नामवर सिंह का भाई होने के नाते नुक़सान चाहे जितना हुआ हो, लाभ यह हुआ कि साहित्य-कर्म को मैंने गंभीरता से लेना सीखा। उसे पार्ट टाइम या शौक़िया कभी नहीं समझा।'' यही वजह है कि जब उनके अब तक के कथा-लेखन की पड़ताल की जाती है तो उन्हें रेणु के बाद गाँव और लोक जीवन का सबसे सजग रचनाकार घोषित किया जाता है। काशीनाथ सिंह प्रगतिशील आंदोलन और उसके विचारों को ढोते नहीं, बल्कि विचारों को क्रियात्मक और सर्जनात्मक रूप देकर आंदोलन की गतिशील चेतना का हिस्सेदार बनाते हैं। 'मुसई चा', 'लाल क़िले का बाज़' और 'आदमीनामा'-जैसी कहानियाँ इसका सटीक उदाहरण हैं। वे नक्सलवाद से प्रभावित ख़ूब रहे और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापक रहकर भी प्रगतिशील चेतना की अगुआई करते रहे।

ऐसी ही एक बैठकी में काशीनाथ सिंह विचारधारा को लेकर कहते हैं, ''विचारधारा वहीं तक ठीक हैं, जहाँ तक कहानी की बुनावट पर संकट पैदा नहीं होता। विचारधारा को यथार्थ पर विस्फोट नहीं करना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि यथार्थ पानी की तरह हो और विचारधारा तेल की तरह सतह पर तैरती दिखाई पड़े। यानी कि काशीनाथ सिंह ने अपनी शर्तों पर कहानियाँ लिखीं—किसी विचारधारा की शर्त या उसके दुराग्रह के आधार पर नहीं। काशीनाथ सिंह ने जो अपना जीवन-दर्शन समझा और रचा और उसे कहानियों में उतारा। वैसे तो किताब कहने को *गपोड़ी से गपशप* है, मगर इसमें लेखक के गहरे आत्मचिंतन और बौद्धिक विचार-विमर्श की ख़ास पहल दिखाई देती है। उसमें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हिंदी के समकालीन लेखकों और पत्रकारों के साक्षात्कारों की शृंखला का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जिसके मार्फ़त एक कथाकार की विकास यात्रा के मुकम्मल इतिहास की भी पड़ताल की जा सकती है। ज़ाहिर है कि काशीनाथ सिंह की यह गपशप और बातचीत साठ के बाद के हिंदी कथा साहित्य की अनेक परतों को खोलती ही नहीं विचार करने को विवश भी करती है, जिसमें कहानी आंदोलन और आंदोलन के बरक्स अनेक कथाकारों का जीवन-संघर्ष और कथा-लेखन के यथार्थ और उसके सच को बारीकी से समझा जा सकता है।

काशीनाथ सिंह प्रेमचंद को अपना कथा-गुरु मानते हैं। उनके कथा साहित्य में यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वे अपने तमाम कथा-लेखन की शुरुआत से ही यह समझ चुके थे कि उन्हें प्रेमचंद की कथा-परंपरा को बहुत आगे ले जाना है। वे कहते हैं, ''इस आदमी (प्रेमचंद) ने और चाहे जो किया हो, लेकिन कहानीपन को नहीं छोड़ा। और सच कहा जाए तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कहानीपन या क़िस्सागोई ही इसका जातीय चरित्र है।'' जिसे रेणु के बाद काशी ने ही बरक़रार रखा और यह समझा कि यही असल ज़मीन है, जिसे मुझे नहीं छोड़ना चाहिए। इससे कोई इंकार नहीं कि काशीनाथ सिंह प्रेमचंद की ज़मीन पर आजीवन खड़े रहे और नई पीढ़ी के लिए कथा-रचना की नई ज़मीन तैयार करते रहे। हिंदी कथा-साहित्य के पिछले पाँच दशक के इतिहास को यदि खँगाला जाए तो कथा-लेखन की बहुत सारी प्रवृत्तियाँ, धारणाओं और अकहानी, नई कहानी और समांतर कहानी आंदोलन के सार्थक तथा निरर्थक पहलुओं पर बहस की जा सकती है। वैसे काशीनाथ सिंह इन आंदोलनों से बहुत ज़्यादा प्रभावित नहीं रहे। *काशी का अस्सी* और *उनका गाँव* उनके लिए ऐसा उर्वर प्रदेश साबित हुआ कि काशीनाथ सिंह हिंदी कहानी के नए प्रतिमान बन गए। उन्होंने कहानी के बुनियादी ढाँचे को ही बदलकर रख दिया। एक साक्षात्कार में वे यह स्वीकार भी करते हैं : ''गाँव मेरी ज़िंदगी का ऐसा हिस्सा है, जिससे मैं आज तक मुक्त नहीं हो पाया। मैं कृतज्ञ हूँ तो प्रेमचंद का हूँ, जिन्हें मैंने नए सिरे से पढ़ना शुरू किया था। फिर भी आलोचकों का रवैया ठीक नहीं रहा।'' काशीनाथ सिंह यह मानते हैं कि हिंदी कहानी की आलोचना पहले इतनी उलझी हुई होती थी, उतनी शायद इसके पहले की आलोचना कम-से-कम उन्होंने तो नहीं देखी।

सन् '70 के बाद के कथा-लेखन के बारे में काशीनाथ सिंह की दृष्टि स्पष्ट और मुकम्मल है। 'चोट' कहानी के बारे में वह बताते हैं कि यह वह समय था जब हिंदी कहानी इलाहाबाद की ख़ुमारी से मुक्त होने के लिए छटपटा रही थी और जनवाद के रास्ते पर चलने का मन बना रही थी। उस समय जाति विमर्श और दलित विमर्श का दूर-दूर तक पता नहीं था। छठे से लेकर सातवें, आठवें और नौवें दशक के कथा-विकास के साथ, बनारस की स्थानीयता को ग्लोबल बनाने की उनकी मंशा पर भी उल्टे-सीधे सवाल किए गए। उनका मानना है : ''अगर 'पर्सनल इज़ पॉलिटिकल' है, तो 'लोकल इज़ ग्लोबल' क्यों नहीं। हर प्रतिरोध छोटे और कभी-कभी अजाने स्थान से ही शुरू होता है। चाहे वह मोतिहारी हो, चाहे नक्सलबाड़ी, चाहे नंदी ग्राम। अस्सी पर ध्यान सिर्फ़ इसलिए गया कि वह प्राचीनतम, मध्यकालीन, आधुनिकतम का कोलाज़ होने के साथ-साथ विदेशियों के कारण ग्लोबल हो रहा था और ऐसे ज़मीनी बुद्धिजीवी रोज़ाना उठ-बैठ रहे थे, जिनकी आँखों में अमरीका के ह्वाइट हाउस को अपना सुलभ शौचालय बनाने का सपना था।'' इस सवाल पर कहानी छोटे दायरे की विधा है, इसलिए कहानी लेखक उपन्यास लिखने की ओर अग्रसर हो जाते हैं? काशीनाथ सिंह का जवाब काफ़ी दुरुस्त लगता है : ''कहानी छोटी ज़रूर है, मगर सिर्फ़ आकार में। मिथक की भाषा में कहूँ तो मेरी नज़र खुले हुए छोटे-से मुँह के समान है, जिसमें देखो तो पूरा ब्रह्मांड दिखाई पड़े।''

काशीनाथ सिंह ने सन् 1960 के बाद ही कहानी लिखनी शुरू की। मगर 'वे ख़ुद को साठोत्तरी कथा पीढ़ी का कथाकार नहीं मानते। ख़ुद को अकहानी के दौर का कथाकार भी नहीं मानते। साठोत्तरी कहानी का कथा विन्यास और कहानी के मिज़ाज से उनकी कहानियाँ बिलकुल मेल नहीं खातीं। *काशी की अस्सी* कहानियाँ लिखते हुए काशीनाथ सिंह को जिस असह्य अंतर्द्वंद्व से गुज़रना पड़ा था—इसके ज़िक्र के साथ ही उनके लिखने के तौर-तरीक़ों की अंतरंग जानकारियाँ भी इस संवाद को स्मरणीय बनाती हैं। निश्चित ही किसी लेखक से साक्षात्कार, उनसे संवाद लेखक और पाठक के बीच एक पुल का काम करते हैं। इस पुस्तक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में संग्रहीत साक्षात्कार कथाकार काशीनाथ सिंह के बारे में बहुत कुछ जानकारी मुहैया तो कराते ही हैं, संस्मरण, बतकही, उपाख्यान, गपशप, क़िस्सागोई के तिलिस्म को काशीनाथ सिंह अपने कथा-लेखन में किस तरह रचते हैं, उसकी ज़रूरी और गहरी पड़ताल इस किताब के माध्यम से उभरकर सामने आती है। काशीनाथ सिंह को समझने-जानने के लिए यह एक अपरिहार्य पुस्तक है।

समीक्षित पुस्तक :

गपोड़ी से गपशप (काशीनाथ सिंह से संवाद) : सं. पल्लव; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 2013; 400 ₹

सत्यकाम

नए कलेवर में परोसी गई कहानियाँ...

यहाँ हाथी रहते थे गीतांजलिश्री की कहानियों का नया संग्रह है, जिसमें आतंक का साया आद्यंत लहराता नज़र आता है। इस कहानी-संग्रह की सारी कहानियाँ दहशत से भरी हैं, जो बाबरी मस्जिद के ढहाए जाने और उसके ऊपर गोधरा कांड, गुजरात में हुए नरसंहार और अब मुजफ़्फ़रनगर में हुए दंगों की न केवल 'केस स्टडी' है, बल्कि समाजशास्त्रीय, राजनीतिक और वैश्विक परिप्रेक्ष्य में फैल रहे पूँजीवाद, उदारीकरण और भूमंडलीकरण को दृष्टि में रखकर किया गया एक गहरा अध्ययन है।

भारतीय समाज का अंधविश्वास और धर्म के नाम पर साम्राज्यवाद खड़े करनेवालों और राजनीतिज्ञों, पूँजीवादियों की साँठ-गाँठ को वे न केवल बेपर्द करती हैं बल्कि इस सच को सामने रखती हैं कि यह न तो व्यक्ति के, न समाज के, न राष्ट्र के हक़ में है। बस हक़ में है तो उनके, जो सत्ताधीश हैं। ये तथ्य तो सब जानते हैं, सब समझते हैं फिर इन कहानियों में नया क्या है ? नयापन है कि इसमें आज का सच, नज़दीकी परिवेश और भविष्य साफ़-साफ़ नज़र आता है। 'यहाँ हाथी रहते थे' कहानी लेखिका के इसी कहन की मिसाल है।

गीतांजलिश्री 'होलिका दहन' से सिहर जाती हैं। आज किसी को भी होलिका बनाकर समाप्त किया जा सकता है। सारा देश 'होलिका दहन' जैसा ही दिख रहा है। यह शहर के दहन में, और देश के दहन में तब्दील हो चुका है। कहानियाँ ठिठकी हुई हैं, डरी हुई हैं, आशंकित हैं।

'इति' मरते हुए रिश्ते की दास्तान है या कहें बयान है। लेखिका जीवन की कटु सच्चाइयों को कटुता से ही उघाड़ती हैं। मसलन, इस कहानी में माँ की मृत्यु को उनके सामान के बँटवारे के अवसर में तब्दील हो जाना अवसादपूर्ण और जुगुप्सा पैदा करनेवाली स्थिति उत्पन्न करती है।

कथा साहित्य, आलोचना की कई पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : एच-2, यमुना, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली 110068

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी-कभी लेखिका का 'स्थानीय' 'देसी' हो जाना सुकून देता है, जो अच्छा लगता है। 'मैंने अपने आपको भागते हुए देखा' कुछ ऐसी ही सुकून देनेवाली कहानी है। इसका बड़ा कारण है इस कहानी में अभिव्यक्त 'देसी माहौल'। पर इस 'देसी माहौल' में छिपी है एक दर्दनुमा दास्तान। इसमें सामंती ठाठ का जो समां बाँधा गया है, वह देखने लायक़ है। लेकिन इसके बाद यह कहानी 'साँप' के चक्कर में पड़कर घनचक्कर हो जाती है और एक ऐसा रहस्यात्मक वातावरण बना देती है, जिससे उबरना बड़ा मुश्किल है। कहानी अबूझ होती गई है और इसके 'पाठ' को खोलने में और भी उलझते चले जाना इस कहानी की नियति बन गई है। सामंती संस्कारों से जूझना और उसके उबरने या व्यक्तित्व में छिपी दुविधा के रूप में इस कहानी को देखा जा सकता है। कहानियों का शिल्प या कहें कहन इतना जटिल है कि उन्हें सुलझाते-सुलझाते पसीना छूट जाता है।

शहरी या कहें महानगरीय जीवन के मानस-रहस्य को खोलनेवाली कहानी 'चकरघिन्नी', जिसमें 'कथक' जो कथ्य भी है, पात्र भी और परिवेश भी—यंत्रवत् होते जा रहे मानव जीवन की अंतर्यात्रा में परिणत हो जाता है।

'तितलियाँ' में रचनाकार की भाषा मानो तितली बन जाती है। प्रकृति के रेशे-रेशे को कविता में तराशना और उसके बीच जीवन का फलसफ़ा अख़्तियार करना और फिर जीवन की सच्चाइयों से टकराना इन्हीं सब धागों से मिलकर बना है कहानी का ताना बाना।

आज का माहौल। एक ख़ास तरह की संस्कृति की माँग। कलाकारों की अभिव्यक्ति पर ताला। कहानी पढ़ते-पढ़ते मक़बूल फ़िदा हुसैन याद आ गए, जिन्हें एक तरह से, भारत से भगा दिया गया। सांस्कृतिक, सांप्रदायिकता या आतंकवाद उदारवादी, पूँजीवादी विस्तार के साथ तेज़ी से बढ़ी। कहीं इनमें गठजोड़ तो नहीं! 'इतना आसमान' इसी गुत्थी को सुलझाने में उलझी है। इस कहानी में बार-बार कहीं तसलीमा नसरीन भी झाँकती नज़र आती हैं। कलाकार आतंक के साये में जीने के लिए अभिशप्त हैं। इसके आगे की कहानी फिर वही 'बुझे तो जाने'। इस नए जादुई माहौल में एक औरत अपना रास्ता ढूँढ़ रही है या फिर अपने आप को ढूँढ़ रही है, कुछ ऐसा ही जान पड़ता है।

'लौटती आहत', 'मार्च माँ और साकुरा', 'बुलडोज़र' और 'थकान' जैसी कहानियाँ बिलकुल अलग अंदाज़ में कही गई हैं। इन कहानियों में स्त्री के नज़रिए से पूरे संसार, रिश्तों और स्त्री की ख़ुदगर्जी के अलग-अलग मायने सामने आए हैं। पति-पत्नी के संबंध हों या माँ-बेटे का, हर जगह स्त्री स्त्री होती है और पुरुष पुरुष और इसमें स्त्री के आत्मविश्वास, उलझन और अस्मिता को ख़ासतौर पर तरजीह दी गई है। स्त्री अस्मिता और विमर्श को जिस प्रकार कहानी में तब्दील किया गया है, वह ग़ौरतलब है।

गीतांजलिश्री की कहानियों को पढ़ना अनुसंधान की प्रक्रिया से गुज़रना तो है, पर इसमें जो अंतर्व्यथा समाई है, वह पाठक के रग-रग में समा जाती है। जीवन को नए कलेवर में परोसती ये कहानियाँ विशिष्ट भी हैं और नायाब भी।

समीक्षित पुस्तक :

यहाँ हाथी रहते थे (कहानी-संग्रह) : गीतांजलिश्री; राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली; 2012, पृष्ठ-196; 300 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुकेश कुमार

ख़बरों की ख़बर लेने का कौशल

दुनिया भर में इसे अब निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिया गया है कि मीडिया एक शक्तिशाली औज़ार है और वह विश्व स्तर पर अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुका है। उसका विस्तार चौंकानेवाला तो है ही, ख़ौफ़ भी पैदा कर रहा है, क्योंकि उसकी पहुँच और प्रभाव के दायरे में लगभग सब कुछ आ गया है। तकनीकी क्रांति पर सवार होकर उसने साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा निर्धारित भूमंडलीकरण की अवधारणा को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। उसने जीवन के हर क्षेत्र में घुसपैठ कर ली है और उसका प्रभाव हर तरफ़ महसूस किया जा रहा है। राजनीति से लेकर अर्थशास्त्र तक और ज्ञान-विज्ञान से लेकर जंग के मैदान तक इसकी अहमियत स्वीकार की जा रही है। अब वह बहुत सारे परिवर्तनों का गवाह भर नहीं रह गया है बल्कि उनका जन्मदाता भी बन रहा है।

ऐसा नहीं है कि मीडिया ही सबको बदल रहा है। उत्तरोत्तर शक्तिशाली तथा प्रभावशाली होने की इस प्रक्रिया में उसके ख़ुद के चरित्र में भी आमूल-चूल परिवर्तन आए हैं। इन परिवर्तनों की वजह से उसकी भूमिका एवं लक्ष्यों में भी बदलाव देखे जा रहे हैं। अब वह दो-ढाई दशक पहले वाला मीडिया नहीं रह गया है, जब सामाजिक प्रतिबद्धता को एक अनिवार्य शर्त के रूप में देखा जाता था। सामाजिक सरोकारों की जगह मुनाफ़ा केंद्रित बाज़ार के स्वार्थों ने ले ली है। अंतर्वस्तु पर चमक-दमक से भरपूर पैकेजिंग हावी हो चुकी है। ख़बरें उत्पाद बन गई हैं और पाठक-दर्शक या श्रोता उपभोक्ता। संपादकीय सामग्री की गुणवत्ता एवं विश्वसनीयता संदिग्ध हो गई है और उसमें भ्रष्टाचार की दुर्गंध फैल गई है।

ज़ाहिर है कि इसने दुनिया भर में मीडिया को लेकर नाना प्रकार की चिंताएँ भी पैदा की हैं। इन चिंताओं की वजह से मीडिया को जाँचने-परखने का सिलसिला तेज़ हुआ है। विश्व भर में मीडिया की चीरफाड़ का काम बड़ी संजीदगी से चल रहा है। तरह-तरह के शोध हो रहे हैं, जो हमें यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि मीडिया का नया अवतार क्या गुल खिला रहा है और भविष्य में वह क्या रूप अख़्तियार कर सकता है। इस मायने में भारत में बहुत कम काम हो रहा है। मीडिया को लेकर जागरूकता का अभाव इसके लिए ज़िम्मेदार है। एक तरह की मीडिया निरक्षरता हमारे चारों ओर पसरी हुई है। भारतीय समाज पर पड़नेवाले प्रभावों का अध्ययन नहीं के बराबर हुआ है और अगर कुछ हुआ भी है तो पश्चिम के प्रभाव में। मौलिकता का सर्वथा अभाव देखा जा सकता है।

अगर मीडिया की आलोचना और समीक्षा के क्षेत्र में कुछ काम हो रहा है तो वह पत्रकारिता में ही। कुछेक गंभीर पत्रकारों ने मीडिया के महत्त्व को पहचानते हुए नियमित रूप से उस पर लेखन किया है। प्रियदर्शन उनमें से एक हैं। प्रिंट और टेलीविज़न का अनुभव रखने

जन्म : 1964। कहानी, कविता, व्यंग्य लेखन। *साधो! जग बौराना* कविता-संग्रह प्रकाशित। संपर्क : सी-1302, एपेक्स ग्रीन वैली, सेक्टर-9, वैशाली, ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.); मो. 9811818858

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वाले प्रियदर्शन पिछले लगभग डेढ़ दशक से मीडिया पर निरंतर लिख रहे हैं। अपनी बौद्धिक सजगता तथा सामाजिक प्रतिबद्धता की बदौलत उन्होंने मीडिया लेखन के क्षेत्र में विशिष्ट पहचान बनाई है। सबसे ज़रूरी बात यह है कि मीडिया पर लिखने के लिए उसके चरित्र को समझने की ज़रूरत होती है और इसके लिए जो दृष्टि चाहिए, वह उनके पास भरपूर है। वे किसी भी विषय पर सतही तौर पर टिप्पणियाँ नहीं करते बल्कि उसकी तह में जाने की कोशिश करते हैं। मीडिया पर लिखे उनके लेखों का संकलन *ख़बर बेख़बर* इसका प्रमाण है।

ख़बर बेख़बर में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे उनके इक्यावन लेख संकलित हैं। इनकी सबसे ख़ास बात यह है कि उन्होंने किसी घटना के कवरेज को पत्रकारिता के दायरे में रखकर नहीं देखा, बल्कि वे उसके सामाजिक-आर्थिक पक्षों में भी गए हैं। पत्रकारों या पत्रकारिता को कठघरे में खड़ा करने के बजाय उन्होंने उन ताक़तों की शिनाख़्त भी की है, जो नकारात्मक परिवर्तनों के लिए ज़िम्मेदार हैं। विज्ञापन की अंधी दौड़ में काली पूँजी के साथ पेड न्यूज़ का कारोबार भी बेतरह फल-फूल रहा है। इसलिए उनके लेखों में टीआरपी, बाज़ार आदि शब्द बार-बार आते हैं।

हबीब तनवीर के निधन की उपेक्षा करनेवाले न्यूज़ चैनलों पर वे लिखते हैं : ''सवाल सिर्फ़ हबीब तनवीर का नहीं है, कहीं ज़्यादा बड़ा है। क्या हमारे चैनल उस भारतीय या जातीय संवेदना के वाहक हैं, जिससे सच्चे अर्थों में हमारी संस्कृति बनती है ? या जिस तरह बॉलीवुड की फ़िल्में नक़ली क़िस्सों से भरी एक नक़ली दुनिया रचती हैं, उसी तरह हमारे चैनल भी रोज़मर्रा की सतही ख़बरों और उससे भी सतही तमाशों से अपने 24 घंटे भरते हैं ?''

प्रियदर्शन की सूक्ष्म दृष्टि पत्रकारिता में मौजूद उन दुराग्रहों और पूर्वाग्रहों पर भी रहती है, जो ख़बरों के निर्माण एवं प्रस्तुति में पक्षपात बरतते हैं। वे मानते हैं कि पूर्व प्रधानमंत्री वी पी सिंह की मृत्यु को पर्याप्त कवरेज न देने के पीछे मीडिया में छाया अगड़ा वर्ग था। उनके मुताबिक़ अगड़ा वर्चस्व वी पी सिंह को कुछ असुविधा के साथ ही स्वीकार करता है। अटल बिहारी वाजपेयी की सामान्य तुकबंदियों को तत्कालीन 'ठकुर सुहाती' मीडिया ने कविता और गीत में बदल डाला, मगर उनसे कहीं ज़्यादा सूक्ष्म रचना दृष्टि वाले कवि-चित्रकार वी पी सिंह अलक्षित रह गए।

संकलन में शामिल लेखों में भरपूर विविधता है, जो कि लेखक की सोच के दायरे को परिलक्षित करता है। प्रियदर्शन उन ख़बरों में भी मीडिया की भूमिका परखते हैं, जिनकी वह उपेक्षा कर देता है या पर्याप्त महत्त्व नहीं देता। आंदोलनों और प्रतिरोधों की चिंता न करनेवाले मीडिया पर वे टिप्पणी करते हैं : ''समाज में जो बड़े पैमाने पर बेबसी है या जो प्रतिरोध है, इन दोनों की ख़बर चैनलों को नहीं है, क्योंकि धीरे-धीरे इनका जो वर्ग चरित्र बन रहा है, वह अलग क़िस्म का है। उन्हें गिरता हुआ शेयर बाज़ार अपनी तरफ़ खींचता है, बैंकों की बढ़ी हुई ब्याज़ दर बड़ी ख़बर लगती है, किसानों की आत्महत्या कम सताती है, मज़दूरों की बेबसी समझ में नहीं आती है।''

मीडिया और ख़ास तौर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भाषा के पतन को लेकर चिंताएँ जताई जा रही हैं। हमारे विज्ञापनधर्मी न्यूज़ चैनल न केवल हिंदी को लापरवाही के साथ बरत रहे हैं, बल्कि उसमें ये दलील देते हुए अंग्रेज़ी शब्दों की भरमार करते जा रहे हैं कि यही आज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की बोलचाल की भाषा है। प्रियदर्शन भाषा के साथ हो रहे इस बर्ताव का घोर विरोध करते हैं। वे लिखते हैं : ''दुनिया की सारी भाषाओं में लेन-देन दिखता है, जो शब्दों से लेकर वाक्य रचनाओं तक जाता है, लेकिन हर भाषा की अपनी एक प्रकृति होती है। उसमें जब दूसरी भाषा के शब्द आते हैं तो उनका रूप बदलता है, उनसे जुड़े उच्चारण बदलते हैं, कई बार मानी भी बदल जाते हैं...लेकिन हिंदी पत्रकारिता में अब आकर जो नई चिंताजनक प्रवृत्ति दिख रही है, वह अंग्रेज़ी के शब्दों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार और इस्तेमाल करने की है। इसमें किसी शब्द के साथ खेलने, उसे अपनी प्रकृति में ढालने, उससे मुठभेड़ की कोशिश नहीं दिखती, बल्कि एक वैचारिक शैथिल्य नज़र आता है, जिसमें अपनी आत्महीनता का एहसास शामिल है।''

ख़बर-बेख़बर पत्रकार और पत्रकारिता के संबंधों में उठ रहे सवालों को टटोलती है, उनके जवाब देने की कोशिश करती है और पाठक को भी उद्वेलित करती है कि वह इन्हें नज़रअंदाज़ न करे क्योंकि इनका सीधा संबंध उनसे है। ज़ाहिर है कि यह किताब मीडिया की दशा-दिशा बताने के साथ-साथ उसकी भूमिका को कठघरे में खड़ा करती है। इसकी एक उपयोगिता मार्गदर्शिका के रूप में भी है, ख़ासतौर पर पत्रकारों की नई पीढ़ी के लिए। प्रियदर्शन से यह आशा की जानी चाहिए कि वे मीडिया संबंधी लेखन को एक अनुशासन के तौर पर भी प्रतिष्ठित करने का प्रयास करेंगे।

समीक्षित पुस्तक :
***ख़बर-बेख़बर* (पत्रकारिता)** : प्रियदर्शन; सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली; 2013; 360 ₹

व्यास मणि त्रिपाठी

आसक्ति और अस्मिता

वत्सला की चौरासी कविताओं का संग्रह *चाहा अनचाहा इसी खिड़की से* का मुख्य विषय 'प्रेम' है—ऐसा प्रेम, जिसमें पहली छुअन की सिहरन है, अंतरंग मौन के साथ निशाचर होने की कामना है, रूमानियत को सँभाले अहसासों को पीते हुए क़दम-दर-क़दम एक नया संसार देखने की लालसा है, आत्म-विलय की आकांक्षा है, लेकिन इसमें 'देह' के लिए कोई स्थान नहीं है। पुरुष-मानसिकता में 'देह' प्रमुख है जबकि कवयित्री की तलाश उससे इतर है— *तुम खोजते/पाते रहे/देह/मैं उससे इतर/तलाशती रही।* (पृ. 28)।

'बंजारा है प्यार-1' और 'बंजारा-2' शीर्षक कविताएँ प्रेम को विस्तार देती हैं तो 'नदी के वेग को' और 'नदी बहती है सदा' कविताएँ यह अहसास जगाती हैं कि भीतर-भीतर

जन्म : 1959। सत्रह आलोचनात्मक पुस्तकें प्रकाशित। संपर्क : जे.जी. 167, टाइप-4, जंगलीघाट, पोर्टब्लेयर, अण्डमान-744103; मो. 09434286189.

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुपचुप-चुप-चुप कलकल बहती, उफ़नती, भरती, रीतती, नाचती, प्रेम-नदी के वेग को झेलने का सामर्थ्य सिर्फ़ समंदर के पास है। 'कौन है जो' ...कविता में एक दूजे के लिए दो सागरों के रीतने का क़िस्सा और यह अभिलाषा कि काश! *ख़ाली हो जाता/कोई मेरे लिए* (पृ. 60) उद्दाम प्रणय की आकांक्षा द्योतित करती है।

छत्तीस उपखंडों में पाँच-पाँच, सात-सात पंक्तियों में सृजित 'मछली की आँख : एक दुनिया' कविता स्त्री-हृदय का दर्पण है जिसमें प्रेम है, छटपटाहट है, त्रासदी है, भय है और है—अधूरेपन की मार्मिक अभिव्यक्ति। प्रेम का अधूरापन और उसकी पीड़ा का सौंदर्य पाठक मन को कहीं अधिक अभिभूत करता है। 'मुझमें बसी थी धूप', 'आज तक', 'माथे का चाँद' आदि कविताएँ प्रेम की तपन की गवाह हैं। जीवन-राग कहीं मृत्यु-आलाप न बन जाए इसलिए 'स्मृति की मकड़ी' के जाले में भविष्य टाँगने का उपक्रम दिखाई देता है। जब 'यादों का शिवलिंग' बनता है तब देह-उत्सव होना स्वाभाविक है।

देहमुक्ति, स्त्री की निजता, अस्मिता की तलाश, चयन, उन्मुक्तता, वर्जना आदि को वत्सला ने संवेदना और तर्क के धरातल पर जिस कौशल के साथ प्रस्तुत किया है, उससे स्त्री-विमर्श की परिधि को थोड़ा और विस्तार मिला है। कवयित्री का मानना है कि पुरुष एक कुशल मछुआरा है, जो प्रारंभ से ही स्त्री-रूपी मछली को फँसाने के लिए काँटा और जाल डालता रहा है, किंतु अब जलपरी जाल की माया को समझ गई है। वह पछता रही है कि क्यों पुरुष जैसा कहता रहा उसी के अनुरूप होती रही : *तुमने कहा/शरीर/वह देह हो गई/ तुमने कहा/मन/वह प्राण हो गई/ तुमने कहा/रूप/वह सँवर गई।* (पृ. 69)।

चूँकि अब स्त्री किसी बहकावे में आनेवाली नहीं है फिर भी पुरुष छल-छद्म के नए-नए हथकंडों से अनजान सुंदरियाँ अपनी अतिरेकपूर्ण महत्त्वाकांक्षाओं के कारण छली जाती हैं—इसकी पीड़ा 'विश्व सुंदरियाँ' कविता में द्रष्टव्य है : *आसमान के/जंगल में/कैक्टस/पसार रहा पाँव/सिर्फ़ एक बार/ओढ़ते हैं ये/फलों का लिबास/तितलियाँ/शायद पीड़ित थीं/मौसमी ज़ुकाम से/तभी छली गईं/हर काँटे पर/बिंध गई तितली।* (पृ. 71)।

वत्सला के विचार में जिस दिन स्त्री पहली बार सार्वजनिक हुई थी, उसी दिन वह अतीव सुंदरी बना दी गई थी और तब वह केवल संपत्ति थी : *नहीं रही/माँ, पत्नी, बहन/मर गई वह/उतर गए आभूषण/पूजा के/गिर गए थे वस्त्र/लाज के/आँख से भी/उसी दिन से।* (पृ. 73)

प्रेम की कोमल भावनाओं, अधूरेपन की पीड़ा तथा नारी-अस्मिता की अभिव्यक्ति को नवीन प्रतीकों और ताज़ा बिंबों ने अनुपम बना दिया है। अनूठे भाषिक प्रयोगों के कारण *चाहा अनचाहा इसी खिड़की से* एक पठनीय और संग्रहणीय कविता-संग्रह है।

वीणा झा की एक सौ एक कविताओं का संग्रह *महायोग की अंतर्यात्रा* अस्तित्व संबंधी जिज्ञासा और प्रश्नों का परिणाम है। 'मैं कौन हूँ', 'क्यों हूँ', 'कहाँ से आया हूँ', 'कहाँ जाना है' आदि प्रश्न तत्त्व-चिंतकों, दार्शनिकों से लेकर रचनाकारों तक को आंदोलित करते रहे हैं। इस संग्रह की शुरुआत भी 'मैं कौन हूँ' कविता से हुई है। आत्म-बोध की प्रखरता में पूर्णत्व की कामना ने 'पूर्णता' कविता को जन्म दिया है तो ईश्वर में विलीन होने की अभिलाषा 'विलय' कविता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की भावभूमि बनी है। वीणा झा यह मानती हैं कि विलीनीकरण के लिए द्वंद्वहीनता ज़रूरी है और इसी स्थिति में *'तुम' और 'मैं' के एक हो जाने पर/आनंद का महासागर मिल जाता है।* (पृ. 66) ईश्वर से एकाकार होने की लालसा वाली कई कविताओं में भक्तिकालीन विनम्रता, दीनता, हीनता, अकिंचनता, अनन्यता, प्रणति और निष्ठा द्रष्टव्य है। प्रेम और समर्पण में भी वही कशिश, वही अंदाज़ और वही त्वरा है। अटूट आस्था ऐसी कि *मैं जब कभी लड़खड़ाई/तब-तब तुमने ही थामा/मेरे लहूलुहान तन और मन को।* (पृ. 89)।

'जीवन' अव्याख्येय है लेकिन हर काल में इसकी व्याख्या के प्रयास हुए हैं। वीणा झा ने भी 'जीवन' को व्याख्यायित किया है : *जीवन तो बहता है—नदी की तरह/जीवन तो गुज़रता है—काल की तरह/जीवन तो चुकता है—शून्य की तरह/जीवन तो सुबकता है—दर्द की तरह/जीवन तो भरता है—सागर की तरह/जीवन तो कुछ कहता, कुछ सुनता है/कुछ करता है—कर्ता की तरह।* (पृ. 37)।

इसी प्रकार 'महामुद्रा' कविता में 'जीवन' को ईश्वर के स्नेह-सलिल में खिला हुआ कमल और दुर्लभ दान कहा गया है जो *धूप-सा खिलता है/सुगंध-सा महकता है/क़हक़हों-सा चहकता है/प्राणों-सा दमकता है।*

प्रश्न यह है कि इस जीवन की सार्थकता क्या है ? उपयोगिता क्या है ? इस पर विचार के क्रम में कवयित्री ने सत्य, सौंदर्य और आनंद को कई कविताओं के केंद्र में रखा है। उनकी दृष्टि में मुक्ति ही आनंद है, मुक्ति ही सौंदर्य है और मुक्ति ही सत्य का साक्षात्कार है। इसलिए अंधकार से, अज्ञान से, रूढ़ियों से, छल-छद्म से मुक्त जीवन ही मनुष्य के लिए काम्य हो सकता है।

प्रतिबंधों, दीवारों और वर्जनाओं को भेदकर ही असीम तक पहुँचा जा सकता है। इसीलिए कवयित्री ने 'इच्छा' शीर्षक अपनी दो कविताओं में से एक में सीमाओं को तोड़कर आकाश की तरह दिग्‌दिगंत में फैल जाने की कामना की है तो दूसरी में ईश्वर के रूप को बताने के लिए शब्द, उसके विस्तार को नापने के लिए पंख, उसकी थाह पाने के लिए शक्ति तथा प्रेम में फँसाने के लिए जाल की याचना की है। 'इकाइयों से' का यह संदेश भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि *अपने-आप में तुम डूबो/तो जानो कि आनंद क्या होता है ?* (पृ. 9)।

दार्शनिक और रहस्यमयी अनुभूतियों के अलावा 'उमाशंकर बहादुर', 'तिमिर गहरा गया है', 'लहू से लिख रहे इतिहास' शीर्षक कविताओं में वर्तमान जीवन की त्रासदियों को उभारकर कवयित्री ने अपने चिंतन-क्षितिज को विस्तार दिया है। भाषा, भाव और चिंतन की दृष्टि से *महायोग की अंतर्यात्रा* उन सभी के लिए एक पठनीय काव्य संग्रह है जो भाव, भक्ति और अध्यात्म में अवगाहन करना चाहते हैं।

समीक्षित पुस्तकें :

1. ***चाहा अनचाहा इसी खिड़की से*** (कविता-संग्रह) : वत्सला; बोधि प्रकाशन, करतारपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, बाईस गोदाम, जयपुर; प्रथम संस्करण-2012; 50 ₹
2. ***महायोग की अंतर्यात्रा*** (कविता-संग्रह) : वीणा झा; जानकी प्रकाशन, अशोक राजपथ, चौहट्टा, पटना; द्वितीय संस्करण - 2012; 350 ₹

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

समकालीन भारतीय साहित्य यहाँ भी उपलब्ध है

बी.सी. एक्सपोर्ट्स
16/194, गली नं. 7
फ़ैज़ रोड, करोल बाग़
नई दिल्ली

एम.एल. एंड संस (सचिन एंड संजीव)
बुक एंड मैगज़ीन होलसेल डीलर
भगतसिंह मार्ग
नियर क्लॉक टावर
नई दिल्ली 110001

डी.के. एजेंसीज़ प्रा. लि.
ए-15/17, डी.के. एवेन्यू
मोहन गार्डन, नज़फ़गढ़ रोड
नई दिल्ली 110059

बिबलिया इम्पेक्स प्रा. लि.
2/18, अंसारी रोड
नई दिल्ली 110002

रामगोपाल शर्मा एंड संस
11, शंकर मार्किट
कनॉट प्लेस,
सुपर बाज़ार के सामने
नई दिल्ली 110001

सेंट्रल न्यूज़ एजेंसी लि.
डिपार्टमेंट एल.सी.
4-ई/15, अशोका सेंटर
झंडेवालान एक्स.,
नई दिल्ली 110055

श्री इंदर कुमार
मॉडर्न बुक डिपो, दुकान नं. 32
अलबर्ट एक्का चौक,
फ़िरायालाल चौक के सामने
मेन रोड, राँची, झारखंड 834001

सर्वोदय साहित्य भंडार
रायपुर रेलवे स्टेशन, प्लेटफ़ॉर्म नं. 1
रायपुर 492009, म.प्र.

बुक शॉप
राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय
बहावलपुर हाउस, भगवान दास रोड
नई दिल्ली 110001

गीता बुक सेंटर
के.सी. मॉल, गंगा हॉस्टल के सामने,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली 110067

बुक एंड न्यूज़ मार्ट
एम.आई. रोड
जयपुर 302001, राजस्थान

मोहन न्यूज़ एजेंसीज़
रामपुरा बाज़ार
कोटा, राजस्थान 324006

लोकभारती
बुक सेलर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर
15-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद 211001

लक्ष्मी बुक कॉर्नर,
द्वारा आर.ए. दुबे न्यूज़ एजेंसी
26, एम.जी मार्ग, सिविल लाइन्स,
इलाहाबाद, उ.प्र.

चावला बुक डिपो,
होल सेलर एंड रिटेलर
194/24, दिल्ली रोड
मेरठ कैंट, मेरठ, उ.प्र.

भीम पुस्तक भंडार
एल-335, इंदिरा नगर कॉलोनी
राय बरेली 229001, उ.प्र.

मौर्या बुक डिपो
लंका, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी—221005

सर्वोदय साहित्य भंडार
रेलवे स्टेशन, प्लेटफ़ॉर्म नं. 4-5
वाराणसी, उ.प्र. 221002

इंडियन बुक डिपो
आदित्य भवन, प्रथम तल, बी.एन. वर्मा रोड,
अमीनाबाद पो.ऑ. के सामने, लखनऊ, उ.प्र. 226018

अक्षरा
114, जनता मार्किट, विश्वविद्यालय के निकट,
रेलवे बस स्टेशन रोड,
गोरखपुर, उ.प्र. 273009

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन भारतीय साहित्य

साहित्य अकादेमी की द्वैमासिक पत्रिका

1980 ई. से नियमित प्रकाशित

यह मात्र एक पत्रिका ही नहीं साहित्यिक प्रतिश्रुति है।

मूल्य प्रति अंक 25/- रुपये

भारतीय भाषाओं में लिखित रचनात्मक साहित्य—

कहानी, कविता, नाटक, आलेख, आत्मकथा, ललित निबंध,
साक्षात्कार, संवाद, साहित्य-विमर्श, यात्रा-वृत्त,
संस्मरण, रिपोर्ताज, लोककथा एवं
पुस्तक समीक्षा का विशिष्ट मंच

24 भारतीय भाषाओं की रचनाओं की हिंदी में प्रस्तुति—

पूर्वोत्तर भारत विशेषांक (अंक 164)

रामविलास शर्मा जन्मशती विशेषांक (अंक 167)

कुमारन् आशान (अंक 169), अली सरदार जाफ़री (अंक 173)

विशेष आकर्षण : सैयद मुस्तफ़ा सिराज की चुनिंदा रचनाएँ (अंक 174)

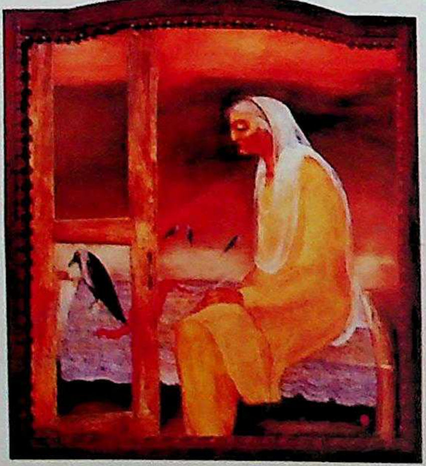

SAMAKALIN BHARATIYA SAHITYA ISSN 0970-8367/Regd. No. DELHIN/1980/1009
के. श्रीनिवास राव, सचिव द्वारा साहित्य अकादेमी के लिए प्रकाशित तथा विकास कंप्यूटर एंड प्रिंटर्स, 1/10753, सुभाष पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली 110032 से मुद्रित
अतिथि संपादक : रणजीत साहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant